...भो !

मैं जहांतक "मैं और आप" कह सकता हूँ, तहां ... आप को सगुणरूप में देखता हूँ इसके परे की गति को ...ठ आपही जानते हैं। परन्तु मैं स्वयं साकार शरीर में ...र हो आपको निराकार कहकर शून्यवादियों की ओर ...रना नहीं चाहता। परमात्मा, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् ...श्वर, इन नामों के साथ आप नामी मुझे साकार ही देख ...पड़ते हो। सो जो रूप श्रीशिवजी के मानस में वास करता है, जो भक्तों के हृदय को पवित्र करता है, जिसका ...मरण करते ही मन अपनी बक्रगति से दूर हो आप में प्रेम ...रने की लालसा करता है। जिसकी किञ्चित् छटा ही ...ा अनुभव करने से निराकारवादी आपको निराकार ...हते हैं। और जिसके न देखने ही से अनीश्वरवादी ...ास्तिक पक्ष को धारण करते हैं, अस्तु वही मधुरमूर्त्ति ...रा अभीष्ट है। उसी के गुणों का गान करना अपना परम

कर्त्तव्य समझता हूँ। अब इसको तो केवल आप ही जान सक्ते हैं कि यह रचना संसार में वाह वड़ाई पाने के निमित्त की गई है अथवा सेवक होने से निज कर्त्तव्य का पालन किया गया है।

नाथ!

जो कुछ आपने दिया, आपकी वही सब वस्तु आपको समर्पित है—लीजिये।

किङ्कर।

भूमिका ।

"समर्पण" के पढ़ने से जाना जासक्ता है कि इस पुस्तक के लिखने का प्रधान तात्पर्य क्या है । इसमें अपनी बुद्धि को महागहन गति में पहुँचाने का अवसर विद्वानों को नहीं है । इसमें कवियों को अपनी चतुराई की छाया भी देखने का संयोग नहीं है । युवा अवस्था का श्रृंगार श्रृंगाररस वर्तमान युवकों के लिए इसमें नहीं है । व्याकरण जानने वालों को पदयोजना तथा शब्द साधनका कार्य इसमें नहीं है । वर्तमान उपन्यास प्रेमियों का भी मार्ग इस होकर नहीं है । आधुनिक ऐतिहासिकों को भी यह पुरानी बात अच्छी लगनेवाली नहीं है । "इसमें कोई नई बात है ?" ऐसा कहनेवाले इसमें नई बात नहीं पासकेंगे । पद्य कविता पढ़कर केवल वाग्विलास का सुख अनुभव करनेवालों को भी यह आनन्द न देसकेगा । सांगीतशास्त्रवालों को भी यह रुचिकर न होगा । यह केवल उन्हीं सज्जनों को प्रिय होगा, जिनका मन विद्याविवाद, शब्द रचना, वृथाकथा, बहिर्भूत सुख आदि से उपराम होकर शांत हुआ है, तथा जो भगवत् के चरित ही में मग्न रहते हैं ।

वाल्मीकि जी ने रामचरित को विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। तिसपर भी अनेकोंभक्त प्रेमवश हो, उसी चरित को अपनी २ भाषा में पृथक् २ वारंबार वर्णन करते आये हैं सो इसी भाव के आधार पर मैंने भी इसे लिखा है।

"सब जानत प्रभु प्रभुता सोई,
तदपि कहे बिन रहा न कोई"

तुलसीकृत।

अब कहो कि यह रचना विद्या बुद्धि से हीन है सो इसे मानता हूं परन्तु बुद्धि विद्या से प्राकृतिक मनुष्य रीझते हैं, भगवत् तो केवल प्रेम से रीझते हैं, यदि यह पुस्तक उनके प्रेम के साथ लिखी गई है तो अवश्यही श्रम सफल है। श्रीकृष्णचन्द्रजी का चरित गद्यमें (सुखसागर, प्रेम-सागर) वर्णन किया गया है, परन्तु हमारे मर्य्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के चरित का कोई ग्रन्थ बोल-चाल की भाषा में नहीं है। अस्तु इस पुस्तक के लिखने का एक यह भी कारण है। प्रभुचरित्र के तीन काण्ड रक्खे गये हैं क्योंकि अभिषेक की तय्यारी होतेही चरित-नायक वनको चले गये थे, वाल्मीकिजी ने वनगमन अयोध्याकाण्ड में वर्णन किया है और आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लंका, ये सब काण्ड तो वनबास के समय के हैं। इसलिये इन पंचकाण्डों को पृथक् २ न रखकर विपिन-

काण्ड नाम का केवल एक काण्ड रक्खा गया है बालकाण्ड में परशुराम संवाद सूक्ष्मरूप में वर्णन किया गया है। चिपिनकाण्ड में गंगातट पर निषाद संवाद में श्रीरामचन्द्र जी की पगरज द्वारा स्वयं नौका को भय दिलाया गया है। उत्तरकाण्ड में अगस्त्य व रामचन्द्रजी के संवाद में परमार्थिकता के भिन्न भिन्न विषय वर्णन किये गये हैं।

अन्त में मैं अपने लँगोटिहा साथी बाबू रामनारायण (प्रेमकवि) तथा बुद्धिमान् पं॰ शंकरदयाल तथा मैत्रीभाव में कुशल पं॰ रामदेव मिश्र को "धन्यवाद" से कोई बढ़िया शब्द देता हूँ क्योंकि इन महाशयों ने पुस्तक लिखने के लिये मेरे उत्साह को बढ़ाया है।

छपाई सम्बन्धी भूलों से यह पुस्तक बची नहीं है, सो 'शुद्धाशुद्ध पत्र' लगा कर मैं उन भूलों से अलग नहीं होना चाहता हूं, अस्तु जहां तक हो सकेगा पुस्तक शुद्ध करकेही निकाली जायँगी।

सज्जनगण चाहें अपनी ओर से अपनी वहेतू क्षमा को मुझे दे देवें नहीं तो इसमें इतनी भूलों को करके क्या मैं क्षमा योग्य हूँ ?

बछरावां
(रायबरेली)
अवध.

शिवरत्न शुक्ल.

फाल्गुन शुक्ला १२ सं॰१९६६।

सूचीपत्र ।

बालकाण्ड ।

—

विपिन काण्ड।

विषय	पृष्ठ

विषय			पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

इति ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

प्रभुचरित्र ।

दोहा ।

गननायक करिवरबदन, करो कृपा सुखदानि ।
रघुबर चरित बखानहूं, देहु बुद्धि जनजानि ॥
जिनके गुण बर्णन करत, बीते बहु युगमात ।
गावत तिन प्रभु के चरित, मेरो जिय सकुचात ॥
करौ कृपा हे अम्ब अब, देहु बुद्धि की भीख ।
रामचरित बर्णन करौं, जाते मन लहै सीख ॥
कल्प बीति जावैं अमित, जासुनाम रटिलाय ।
तासु चरित कहिबो चहौं, श्रीमहेश मनलाय ॥

मधुमास ।

चैत्र का महीना है, कहीं २ पका अन्न खेतों में खड़ा वायु के झोकों से हिल रहा है और कहीं पर अन्न की लाँक खलिहानों में वृक्षों की छाँह में धरी है, खेतों में केवल कुसुम के फूले वृक्ष खड़े हैं, मानो सज्जन चौथेपन में विरक्त होकर ईश्वराराधन करते हैं। कहीं २ चणक के वृक्ष तालों की तरंगों में पवन के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं, किसी वृक्ष में नये अंकुर निकल आये हैं और किसी में पतझाड़ होता है, पृथ्वी पुराने पत्तों से पूर्ण होगई है, बागों में गिरे हुवे पत्तों पर मनुष्य के चलने का शब्द होता है, मानो महामदमत्त गज किसी सपंकज सरोवर में मनमानी क्रीड़ा कर रहा है, आम के बौरों से सुगन्ध छाय रही है, करौंदा, चनझेरी, जामुन, निंब, बेरी, अनार, कचनार, मालती, मागधी, कनकप्रसा, वकुल, मल्लिका, वसन्तदूती, सुरवल्लरी, गन्धोत्कट के फूले हुवे वृक्षों से सुगन्ध चारो ओर फैल रही है, पद्मिनी अपने श्वेत, नील तथा अरुण वर्णों के पुष्पों से शोभायमान हैं, जिन पर भ्रमर गण गाते हुवे बैठते तथा रस चूसकर उड़ते दूसरे पर बैठते हैं। यह मधुमास मधु तथा अन्नसंयुक्त होने से सब नर नारियों को प्रसन्न कर रहा है, बालक गण वृक्षों की छाँह में मगन खेल रहे हैं।

रामजन्म।

ऐसे मनभावन सुहावन मास चैत्र शुक्ल नवमी को अवध नरेश श्री दशरथ महाराज के यहाँ प्रभु अखिल भुवनेश्वर प्रकट हुए। माता कौशल्या को अपना पूर्ण परिचय देकर बोले अम्ब मैं आप का पुत्र होने आया हूँ, कौशल्याजी प्रेमसंयुक्त स्तुति कर बोलीं, "त्रिभुवननाथ, अब शिशुरूप होने में क्या विलम्ब है" तब कोटि ब्रह्माण्डनायक मुसका कर शिशु हो रोने लगे, जैसे उदर के बीच गर्भ में होते हुए भी स्त्रियों को पुत्र से प्रीति नहीं होती और जैसे ही वह उत्पन्न होता है, तो उसके साथ प्रीति से पूर्ण होजाती हैं। जब कौशल्या ने भगवान् को शिशु रूप में देखा तब उनके सब प्रथम के भाव पुत्र प्रीति में परिणत होगये।

अयोध्या में उत्सव।

अपनी आयु की अन्तिम अवस्था में पुत्रजन्म सुनकर दशरथजी ने अपने जन्म को सफल समझा और प्रसन्न मन हो गुरु वशिष्ठजी की सम्मति से देवता, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, चारण, लोकपाल, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, पण्डित, धनी, राजा, कवि, नाटक, नर्तक, विदूषक आदि को पुत्रजन्मोत्सव में निमन्त्रण दिया, और उन सब से अयोध्यापुरी भर

गई, कहीं अप्सरा नृत्य करती हैं, कहीं गन्धर्व गा रहे हैं, कहीं श्रोत्रिय लोग साम का गान कर रहे हैं, कहीं पण्डित लोग मधुर स्वरों में राजपुत्र के हेतु ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं, कहीं २ पर सुरगण नन्दन वन के पुष्पों से मार्गों में पांवड़े डाल रहे हैं, कहीं पर साहित्य प्रेमी सुगीत रच रहे हैं, कहीं पर नृत्य होरहा है, कहीं बाजि गण होड़ बदकर दौड़ाये जा रहे हैं, कहीं हाथियों की अवली शृंगार सहित आरही हैं, कहीं मृदंग, वेणु, मुरचंग, शंख, भेरि, सहनाई आदि बजरही हैं, कोई फाग खेलता है, कोई बधाई कहकर अपरिचित मनुष्य पर पिचकारी छोड़ता है, ललना गण गारही हैं। इस प्रकार लोक अपर लोक वासियों से अयोध्या में चारों ओर आनन्द छाय रहा है। जिसके जन्मोत्सव को शेष, शारदा, आदि कवि गाकर पार नहीं जासके, उसको यह "किंकर" कैसे बर्णन कर सक्ता है। जिसको परमात्मा सुख देता है उसको उपसुख भी देता है, सो कैकेई जी के एक पुत्र और सुमित्रा जी के दो पुत्र उत्पन्न हुए वशिष्ठजीने चारों पुत्रों का नांदी मुख श्राद्ध आदि संस्कार कर के उन का नामकरण किया। जो कौशल्या की गोद में विराजमान है उस पुत्र का नाम राम है, कैकेई के आनन्द बढ़ाने वाले पुत्र का नाम भरत है, सूर्य्य चन्द्र समान सुमित्रा जी के पुत्रों के नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न हैं।

महेश के अंक में राम।

एकदिन वशिष्ठजी कौशल्याजी के मन्दिर में गये और बोले– हे देवि! एक श्वेतांग योगी राजपवँर पर खड़ा बालक को देखना चाहता है, उसकी दृष्टि पड़ने पर बालक का कल्याण होगा। तब कौशल्याजीने महादेवजी का स्वागत् कर पूजन किया, और रामलल्ला को महेश की गोद में दे दिया। सदाशिवजी जगतपति को अपनी गोद में देखकर प्रेम के आँसुओं से युक्त नेत्रों की टकटकी बांधे बड़ी देर तक देखते रहे, और धरकर बोले, हे नाथ! जो ध्यान में नहीं आता जिसके लिये ऋषि मुनियों ने अपने शरीर को बलि देदिया है, तिस परभी उसका दर्शन नहीं पाया, जिसे वेद अजन्मा, अविनाशी, निर्गुण आदि नामों से पुकारते हैं, सोई प्रभु आज मेरी गोदमें बैठे आकाश की ओर अबूझ की नाईं निहार रहे हैं, सत्य है कि यदि वेद आपके भेद को पाजावैं, तो आप अनंत, अगम न कहे जावो, आप ऐसे मौन व्रत में लीन हो कि मानो कुछ जानते ही नहीं, अब जब आप बाल लीला करोगे तो फिर आकर दर्शन करूँगा— इतने में भक्तवत्सल प्रभु ने मंद मुसकाय तथा पलक भांज करके शंकर जी को प्रणाम किया। जन को बड़ाई देनेहारी ऐसी कृपा को देख महादेवजी नाचने लगे, और जयजयकार करते अन्तर्धान होगये।

बाल लीला ।

कुछदिन में चारों भाई वइयाँ वइयाँ चलने लगे जो पक्षी आंगनमें दाना चुगते हैं उनको पकड़ने के लिये हवकि हवकि दौड़ते हैं, जब वे एक स्थान से दूसरे स्थान को उड़जाते हैं तब उदास हो माताओं की ओर निहार पक्षिओं की ओर संकेत कर, मुख से ऊँ ऊँ शब्द उनके पकड़ने के लिये करते हैं, तब मातायें पक्षी को पकड़ाय किसी एक बालक के हाथ में हँसती हुई देती हैं, तब वह भयकर पिछड़ता है, फिर सब बालक माता के हाथ में पक्षी को देखते हैं, जब मातायें किसी बालक को उसे देने को होती हैं तो वह चिल्लाता है, तब वे हँसती हैं, इस प्रकार चारों भाई अनेक प्रकार की बाल लीला प्रतिदिन किया करते थे—कुछ काल में चारों कुँवर बड़े हुये और छोटे २ अश्वों पर चढ़ कर पुर घूमने निकलने लगे, तिनको देख पुरवासी अपने नेत्रों को सफल समझते थे, और अवध में वसने का बड़ा अभिमान करते थे ।

आखेट में राम एक सिंह के सन्मुख ।

एक दिन भाइयों तथा सखाओं को साथ लेकर रामचन्द्र जी सरयू के उत्तर वाले वनमें आखेट को निकले, जब सघन वन में पहुँचे, तो देखते क्या हैं कि एक सिंह मन्दगति से झूमता चला आ रहा है, जिसको देख हाथी तथा घोड़े

कान उठार कर खड़े होगये, और हांकने पर भी आगे नहीं बढ़ते, तब रामचन्द्रजी ने गज पर चढ़ धनुष को टँकोरा— उसको सुनते ही उस महाबलवान सिंहने अपनी उदंद गर-जन से वन को कंपा दिया, और उछलकर रामचन्द्र के गज पर आ कूदा। अहेर कुशल गज ने बड़ी लाघवता से घूमकर अतिबली सिंह को अपनी सूँड़ में लपेट कर दबाना चाहा, परन्तु वह बल करके निकल गया, और फिर झपट्टा मारकर गजपर आक्रमण किया। परन्तु बीचही में रामचन्द्रजी ने अपने पैने बाणों से रोक दिया, और गज फुफकार मचाता सिंह की ओर झपटा, इतने में सिंह गज के पिछले पृष्ठ भाग को पंजोंसे विदीर्णकरने लगा—तब घूमकर श्रीकौशलकिशोर ने सिंह के एक ऐसा खड्ग मारा कि उसका शिर धड़ से अलग होगया, और धड़ जो पंजों से हाथी को घायल कर रहा था, उसको बांण की नोक से गिरा दिया। उस सिंह के शरीर से एक षोड़श वर्ष का सुन्दर पुरुष प्रकट हुआ। रामचन्द्रजी ने पूँछा कि हे सौम्य पुरुष! आप कौन हैं, तब वह बोला, कि महाराज मैं सुमलिंद नाम गंधर्व हूँ, एक समय चैत्ररथ वन में मैं मदमत्त हो घूमंता था, इन्द्र के यहां से आते हुये अगस्त्यजी उसी मनोरम वनमें निकले, तिनको देख मैंने दंडवत् न किया वरन् गरजने लगा, मुनिजी ने इस अपमान को न सह सककर मुझको शाप दिया, "मुझको

देख तू गरज कर अपना गौरव प्रकट करता तथा मेरा अपमान करता है, सो तू सपदिही मृगराज के शरीर को प्राप्त हो, जो मैं शाप द्वारा तुझको दमन न करूँ तो संसार में तेरे ऐसे जीव बहुत होकर अन्य जीवोंको कष्ट देंगे" तब मैं विनय करने लगा कि हे मुनिसत्तम ! हम तुच्छ थोड़े अधिकार में मदमत्त हो उन्मत्त होजाते हैं दया करके शाप का उद्धार बताइये, तब सरल वृत्तिधारी माहात्मा बोले, हे गन्धर्व ! तुम अयोध्या के उत्तर सघन वन में बड़े बलवान सिंह होवोगे, और जब अखिल भुवनेश्वर राजा दशरथ के यहां अवतार लेंगे तब उनके हाथ से उस अधम शरीर से मुक्त होगे— उनके हाथ से मारेजाने के कारण फिर कभी तुम्हारी अधम बुद्धि न होगी । सो आप आर्तिहरण ने मुझको पापमय योनि से छुटाया ! फिर वह वारम्वार नमस्कार करके स्वर्ग को चला गया–और राम ने उस सिंह के शव को उठाने के लिये गज से संकेत किया । तब वह अपने दीर्घ दंतों पर उसे रख कर चला और राम अपनी अहेरी समाज में आकर मिले ।

अजगर की श्वास मध्य में अहेरी राजकुमार ।

सिंह को मार कर अनेक प्रकार के मृगादिक मारते एक महा सघन वन में घुसे, सब राजकुमार अश्वों तथा गजों पर, और पैदल चले जाते थे, कि एकाएक अपनेको

सहित वाहनोंके किसी द्वारा खिंचे जाते हुए देख, सब लोग त्राहि २ कर चिल्लाने लगे, हे राम रक्षा करो, हम लोगोंको कोई बड़ा बलवान् पवन द्वारा खींच रहा है, इतने में रामचन्द्र जी की दृष्टि उस ओर पड़ी, जिस ओर सब अहेरी बल करते हुए भी खिंचे जाते थे, देखते हैं कि एक बड़ा भारी अजगर पर्वत समान पड़ा है, और वह अपनी श्वास द्वारा सब को खींच रहा है, तब रामचन्द्र ने वायव्यास्त्र छोड़ उस की खींची हुई श्वास को छिन्न भिन्न कर दिया, और दूसरा अग्नि वाण उसके मुख में मारा जो धधाता मुखमें घुस उस को मार डाला, तब सब लोग अपने को मृत्यु के मुख से बचा हुआ देख रामचन्द्र की प्रशंसा करने लगे। उस सर्प के शरीर से एक दिव्य पुरुष निकल कर हाथ जोड़ बोला, दीनबन्धु, पूर्व जन्ममें मैं दुर्मुख नाम राक्षस समुद्रके किनारे रहता था, मुनि, ऋषि, बनबासी जो समुद्र के तटपर रहते थे, उनको मारकर अपना कालक्षेप करता था—

एक दिन कुम्भज जी उसी बनमें आ निकले, मैं नेप लगाये उनपर आक्रमण करने ही को था, मुनि ने मेरे दुष्कर्म को देख लिया, और बोले, "हे राक्षस, अब तू ऐसी ही नेप लगाये बैठा रह, फिर एक प्रहर पश्चात् मरकर अजगर हो, जिस योनि में तुझ को आहार बड़ी कठिनता से मिलै, मुनियों तथा ऋषियों का मांस खाकर तथा रुधिर पीकर

बहुत मोटा हुआ है अब मिट्टी खाकर जीवन निर्वाह करना । मैं आदि काव्य का पाठ कर रहा था, इससे तू अयोध्या के निकट महा विकराल अजगर सर्प होगा, और दशरथ जी के पुत्र श्री रामचन्द्रजी के हाथ से मर कर योनि से छूटेगा" हे पतित पावन, आप को धन्य है, कि जिसको संसार घृणा करता है उसको आप अपनाते हो, हाथ जोड़ यही वरदान माँगता हूँ कि अब मेरी मति कभी वैसी मलिन न हो–रामचन्द्र जी बोले, हे स्वर्गीय ! सूर्य्य के समक्ष तिमिर नहीं रह सका, वैसेही मेरे सन्मुख होने पर कर्मों की लवण कंकड़ी मेरी दृष्टि जल में गलजाती है, अब तुम जाकर स्वर्ग में विहार करो, तब वह नमस्कार करके स्वर्ग को चला गया ।

नदतट पर सखाओं सहित रामचन्द्र ।

फिर रामचन्द्र जी आगे बढ़े और जाकर एक नद के तटपर सब का खोज करने को ठहरे, उस नद के काछा में अनेकों गौवें चर रही हैं, जिसका जल निर्मल फटिक सदृश है, वह दक्षिण की ओर को बहता सरयू में मिलता है जैसे परदेश से आया हुआ पुत्र माता से मिले । जब सब लोग एकत्रित होगये तब निश्चय हुआ कि इसी स्थान पर रात्रि व्यतीत की जाय, सौवीर नाम सखा बोला हां मित्र, इसी नद के तट पर विश्राम करना चाहिये, देखो सूर्य्य नारायण

के अस्ताचल पहुंचने से पश्चिम में आकाश नारंगी के फल के समान देख पड़ता है, उन ऊँचे वृक्षों की फुनगी में पीतवर्ण का प्रकाश दिखाई पड़ता है, ऐसा कह अश्व तथा गजादिकों को यथा स्थानों पर बँधवा दिया-और तिमिर ने धीरे २ आगमन कर अपना स्वत्व चारों ओर करलिया-अब नील वस्त्र के समान आकाश दिखाई पड़ने लगा-तिसपर नक्षत्र स्वर्ण के बूटे के समान झलक रहे हैं, मानो रजनी बिचित्र नीलाम्बर ओढ़े हुए है; मन्द २ पवन चल रहा है उसकी झकोरें सघन वृक्षों में लगने से एक प्रकार का उनसे शब्द होता है, मानो वे रामचन्द्र की पहुनई करते विनय करते हैं, नद में जलचर ऊपर उछलते हैं, मानो लज्जावान् स्त्री द्वार पर आकर फिर भीतर चली जाती हैं ।

पपीहा अपनी विरही टेर से वन को गुंजायमान कर रहा है, कोकिला होड़ वद कर बोलती बटोहियों के चित्तों को चुरा रही हैं, मयूर अपना समय न देख बोलने में हिचकते हैं, मानो गुणवानों को उपदेश देते हैं कि असमय में अपने गुण को न प्रकट करो ।

थोड़ी देर में चन्द्रमा उदय हुआ, तिसके प्रकाश से पृथ्वी प्रकाशित हो उठी, मानो रजनी अपने सुहृद को प्राप्त हो हँस रही है । ऐसी सुहावन रात्रि में वन के बीच अहेरी रामचन्द्रजी ने सखाओं समेत विश्राम किया; प्रभात

होतेही वाहनों पर चढ़ २ कर सब लोग वन में अहेर के लिये घूमने लगे।

जब अनेक प्रकार का आखेट कर चुके तब नगर को लैाट आये। इस प्रकार सखाओं सहित रामचन्द्र जी सदा अहेर खेला करते थे।

परीक्षास्थल में रामचन्द्र तथा अन्य विद्यार्थी।

एक दिन वशिष्ठजी ने अपने विद्यार्थियों की परीक्षा लेना प्रारम्भ किया।

वशिष्ठ—वह कौन पदार्थ है जो घर और वन को एक समान देखता है?

राम—वैराग्य।

वशिष्ठ—वह कैान वस्तु है जो वज्र को भी गला देतीहै?

राम—दया।

वशिष्ठ—वैताल कौन है और वह क्या करता है?

लक्ष्मण—क्रोध वैताल है, जहाँ वह रहता है उसको नष्ट कर डालता है।

वशिष्ठ—शत्रु कौनहै, और वह कैसे जीता जासका है?

शत्रुघ्न—विषय की ओर प्रवृत होने से मन शत्रु है, और वह वैराग्य द्वारा जीता जासका है।

वशिष्ट—त्रिभ्राता कौन हैं और उन में से किसके द्वारा कार्य सिद्ध होता है ?

सौवीर—सत, रज, तम, ये तीन भ्राता हैं, सतोगुण हमारे मार्ग में सहायक है ।

वशिष्ट—गढ़ कौन है, और उसके भेदिहा कौन हैं ?

प्रवीर—शरीर गढ़ में इन्द्रिय गण भेदिया हैं ।

वशिष्ट-नगर कौन है और उसके भेद देने वाले दूत कौन हैं ?

सुवीर्यक—नेत्र और कर्ण संसार नगर के दूत हैं ।

वशिष्ट—वह कौन बीहड़ स्थान है जिसमें दुराग्रही चोर रहते हैं ?

राम—स्त्री बीहड़ स्थान है उसमें नेत्र, कुच, यौवन, सुन्दरता, हावभाव, चोर हैं ।

वशिष्ट—वह कौन पदार्थ है; जिसको मनुष्य दिन रात देखने पर भी सदा भूला रहता है ?

राम—मृत्यु ।

वशिष्ट—वह सरिता कौन है, जिसमें दो मनुष्य पैरते हैं, उसमें से एक पार उतर जाता है, और दूसरा बूड़ जाता है ?

राम—संसार सरिता में एक शास्त्र विहित कार्य करने वाला और दूसरा वाममार्गी है, प्रथम पार हो जाता है, और पिछला बूड़ जाता है ।

वशिष्ठ—कहाँ परतन्त्र और कहाँ स्वतन्त्र रहना चाहिये?

राम—शास्त्रों में परतन्त्र और रण में स्वतन्त्र।

वशिष्ठ—वह कौन है जो बारम्बार दुतकारने पर भी हमारे पास आता है और उसके दूर करने का क्या उपाय है?

राम—मोह अनेक यत्न करने पर भी हमारा पिंड नहीं छोड़ता, वह सत्संग से रोका जाता है।

वशिष्ठ—वह स्थान कौन और कहाँ है जहाँ पर सदा अमृत बरसता है और उसके पीनेवाले सदा पीते हुए भी नहीं अघाते?

राम—सन्त देश मे सत्संग स्थान है, वहाँ पर ईश्वर भजन अमृत बरसता है और मुमुक्षु गण उसको पीकर तृप्त नहीं होते।

वशिष्ठ—वृक्ष फल संयुक्त हैं, परन्तु हम को यत्न करने पर भी फल क्यों नहीं प्राप्त होते?

राम—संसार वृक्ष में सुख रूपी फल लगे हैं, दान न करने वाले को नहीं प्राप्त होते।

वशिष्ठ—श्वान अपनी जाति वालों से क्यों अपमानित होता है?

राम—पूर्व जन्म में अपने द्वार पर आये हुए अतिथि का सत्कार न करने से।

वशिष्ट—स्वर्ग क्या है और उसमें बसने वाले कौन हैं ?

राम—आत्मविलास स्वर्ग है, और सन्त जन उसमें बसने वाले हैं।

वशिष्ट—संसार में सुख और दुःख क्या है ?

राम—संसार में आने से दुःख और * वहाँ से चले जाने में सुख है।

वशिष्ट—क्या कोई भेद निर्गुण और सगुण में है, यदि नहीं है तो कैसे ?

राम—सरिता रूपी आत्मचिंतवन का एक तट निर्गुण और दूसरा सगुण है, दोनों किनारों से परमात्मा रूपी जल मिल सक्ता है इससे कोई भेद नहीं है।

वशिष्ट—आत्मा कौन, कहाँ और किसरूप का है ?

राम—"आत्मा कौन" यह कहनेवालाही आत्मा है भ्रम उसका मण्डप में बोलने के सदृश है आकाश समान सर्व व्यापक है दृष्टि में जितने पदार्थ हैं उसके रूप के अंश हैं उनके नाश होने पर जो रूप रहता है वही उसका रूप है।

वशिष्ट—ब्रह्माण्ड की रचना किससे, और क्यों होती है और वह कब नाश को प्राप्त होती है ?

नोट-*जन्ममरण से मुक्त होने का तात्पर्य्य है।

राम—आधारभूत आत्मा द्वारा यह रचना आपही आप सृजित हुई है, कारण आत्मा का प्रकाश है जैसे दिन का कारण सूर्य्य है । यह रचना किसी रूप में नाश को नहीं प्राप्त होती, जैसे वृक्ष के कट जाने से वृक्ष का नाश नहीं होता वरन् वह फल में वर्तमान रहता है ।

वशिष्ठ—मनुष्य टहलुआ किसका है और उनसे क्या लाभ है ?

राम—मनुष्य पुत्रों का टहलुवा है, और उनके मरजाने पर बियोग लाभ है ।

वशिष्ठ—वह कौन पदार्थ है जिसपर वज्र भी गिरकर चकनाचूर हो जाता है ?

राम—क्षमा ।

वशिष्ठ—वह कौन पदार्थ है जिसकी वार्ता केवल स्मरण तथा श्रवण में आने ही से मनुष्य उन्मादित हो जाता है ?

राम—काम ।

वशिष्ठ—क्या कोई ऐसा पदार्थ है जिसके नीचे मनुष्य की बुद्धि दबी रहती है ?

राम—हां ! अभिमान ।

वशिष्ठ—वह कौन वस्तु है जो प्रचंड जलधारा में भी काई करदेती है।

राम—छल, सज्जन पुरुषों में भी कुवासना उत्पन्न कर देता है।

वशिष्ट—क्या कोई किसी का साथी है, और कहाँ तक।

राम—अपने कर्म साथी हैं, जहाँतक प्राणी उनको अपना साथी समझता है, फिर आगे वह स्वयं अपना साथी है।

वशिष्ठ—शास्त्रों ने जीव की रक्षा क्यों कही है।

राम—यह बात अपने जीवही से पूंछना चाहिये कि वह क्यों अपनी रक्षा करता है।

वशिष्ठ—मत क्या हैं और अनेक कैसे हुए।

राम—मत परमात्मा के मिलने के मार्ग हैं, मनुष्यों में ऐक्यता न होने से वे अनेक होगये।

वशिष्ट—मनुष्य मरकर कहाँ जाता है।

राम—अपनी वासना के दिखाये हुए स्थान को।

वशिष्ट—मनुष्यों को कायिक पीड़ा क्यों होती है।

राम—वे दूसरों को ऐसी पीड़ा देचुके हैं अथवा ऐसा ही कोई कायिक पाप करचुके हैं कि उनको दंड उसी रूप में दिया गया है।

वशिष्ठ—यह क्या बात है कि मनुष्य किंचित् मात्र पाप करता है, परन्तु फल अधिक भोगना पड़ता है।

राम—खेत में एक बीज बोया जाता है और वही बहुत बीज उत्पन्न करता है।

वशिष्ठ—कुछ मनुष्य पाप करना नहीं चाहते हैं-परन्तु उनसे पाप कर्म हो जाते हैं।

राम—वास्तव में उनका ऐसा भाव निर्मूल नहीं है, परन्तु वे निर्मूल समझते हैं।

वशिष्ठ-श्रेष्ठ कौन हैं, दाता कौन हैं, स्थिर कौन हैं, अविचल कौन हैं, स्वतेज से प्रकाशित कौन हैं।

राम—बुद्धि को अधिक प्रखर रखने वाले श्रेष्ठ हैं, सुसम्मति देने वाले दाता हैं, धैर्यवान स्थिर हैं, संकल्प दृढ़ रखने वाले अविचल हैं, सत्यवक्ता स्वतेज से प्रकाशित हैं।

वशिष्ठ-क्या मनुष्य उन दुःखों से जिनसे पीड़ित होकर उसने आत्मघात कर लिया है, मरण के पश्चात् छूट जाता है।

राम—वे सकल दुःख उसके साथ सदा रहते हैं, शास्त्रों ने ऐसे प्राणी की गति नहीं कही है।

वशिष्ठ—कहाँ पर छल कपट करना उचित है।

राम—युद्ध तथा चंचल स्त्रियों में छल कपट करना अयोग्य नहीं है।

वशिष्ठ—सदा कौन दुःखित रहता है।

राम—पुत्र वियोगी पिता, सुभार्य्या वियोगी पति, पति वियोगी स्त्री, दूसरे के द्वार पर जीविका रखने वाला मनुष्य, स्त्री वर्तमान होने पर वीर्य्य हीन पुरुष, कुटुम्ब के भार से लदा हुआ दरिद्री कुटुम्बी, सदा दुःखी रहते हैं।

इस प्रकार से वशिष्ठजी ने धर्म तथा नीति शास्त्रों में अनेक प्रकार के प्रश्न किये और राम आदि विद्यार्थियों ने उनके यथोचित उत्तर दिये। इसके पश्चात् परीक्षा समाप्त हुई।

अवधपुर में विश्वामित्र।

जब तपोधन विश्वामित्रजी सिद्धाश्रम में राक्षसों से बहुत दुःखित किये गये, तब महा दीन हो जगत्पति भगवान् से विनय करने लगे, कि हे नाथ! मेरे यज्ञादि व्रतों में विघ्न करनेवाले राक्षस शांत हों। इसका उत्तर उनके मन ने ऐसा पाया कि "अयोध्या में महाराज दशरथ के यहाँ आर्तिहरण, दुष्ट-दमनकारी भगवान् ने अवतार लिया है, उनकी सहायता पाकर यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होजायगा" तब विश्वामित्रजी अयोध्या को चले, मार्ग में कई रात्रि बसते

रघुवंशियों से पाली हुई पुरी के निकट पहुँचे, देखते हैं कि सरयूजी हिलोरें ले रही हैं, तब गाधिनन्दन उसमें स्नान करने लगे । सरयू ने अपनी सहयोगिनी कौशिकी के भ्राता को आया जान, अपनी बड़ी २ लहरों से विश्वामित्रजी को घेर लिया, मानो कोई स्त्री अपने भ्राता को भुज पसारि मिलती हो । जब स्नान करचुके तो पुर में प्रवेश किया । वहाँ देखते हैं, कि जगह २ वाटिका लगी हैं जिनमें भ्रमर गण पुष्पों के रस लेते घूम रहे हैं, वृक्षों में चातक, कोकिला मयूर, आदि पक्षी वैठे मनोहर बोली बोल रहे हैं, मनों पथिकों को मधुर वचनों से बुलाने के लिये प्रतीहार नियत किये गये हैं, माली गाते हुए वृक्षों को सींच रहे हैं, मानों उपदेश देते हैं कि कष्ट करके धनोपार्जन कर, प्रसन्नता पूर्वक कुटुम्ब पालन करो, चारों ओर से प्राकार द्वारा नगर रक्षित है, पूर्व दिशा के द्वार पर असंख्य सेनानाशिनी बृहज्ञालिकायें धरी हैं दूसरी ओर राजा के आनन्द को सूचित करती नौवत वज रही है, मार्ग स्वच्छ और चौड़ा बना हुआ है जिसके दोनों ओर सुन्दर * पण्य बनी हैं जिसमें अनेक प्रकार की वस्तुयें भरी हैं ।

पण्यों के ऊपरी भागों में एक ऐसा यन्त्र लगा है कि ग्रीष्म में मार्ग के ऊपर मंडप समान छाया रहता है जिससे

* दूकान ।

पथिकों को ऊष्णता का दुःख नहीं उठाना पड़ता-ऐसी भरी पुरी, पुरी को देखते गाधिनंदन राजपवंरि पर पहुँचे, तब द्वारपाल से बोले कि "महाराज से जाकर कहो कि विश्वामित्र द्वार पर खड़े हैं आपको देखा चाहते हैं"।

जब सार्वभौम-भूपाल दशरथजी ने विश्वामित्रजी को द्वार पर आया हुआ सुना-तो समाज सहित द्वार पर आकर प्रणाम कर विधिवत् पूजन किया, और लेजाकर योग्य आसन पर बैठाया-फिर विश्वामित्र और वशिष्ठजी दोनों मुनि परस्पर सानुराग मिले।

विश्वामित्र का राजा की कुशल पूँछना।

तदनंतर विश्वामित्रजी राजा दशरथ से उनकी कुशल पूँछने लगे—

हे भूपालमणि! तुम्हारे पुत्र कुशल से हैं—सब रानियां कुशली भूत हैं, भला आपके राज्य में कहीं अकाल तो नहीं है, भला साधु संतों का अपमान तो नहीं होता, और जो कोई करता है तो उसको दंड देते हो।

भला अपने शत्रुओं के भेद जानने के लिये उनके निकट अपने चतुर गुप्तचर रखते हो कि नहीं।

भला शत्रु की ओर से आये हुए मनुष्य को अपना ऐश्वर्य्य भली प्रकार से दिखाते हो।

भला प्रजा पर पुत्रभाव रखते हो, और वह तुमसे छल तो नहीं करती।

भला राज्य के कर्मचारीगणों की जाँच उत्तम तथा विश्वासनीय अधिकारियों द्वारा कराते हो।

जब एक मंत्री के साथ विचार करते हो तो उसको अन्य मंत्रीगण तो नहीं जान लेते।

भला देवमंदिरों के जीर्णोद्धार के लिये वार्षिक सूची तुम्हारे सन्मुख उपस्थित होती है और उसपर उचित विचार करते हो।

भला चारों वर्णों के कर्मों की देख रेख के लिये एक विश्वासपात्र मनुष्य प्रति ग्राम में नियत है कि नहीं, भला प्रजा को शिक्षित बनाने के लिये उचित प्रबन्ध करते हो।

भला कोई दीन मनुष्य अपना क्लेश तुमसे मार्ग में कहता है तो उसको सुनते हो और फिर उसपर उचित विचार करते हो कि नहीं।

भला आय का चौथाई भाग कोष में संचित करते हो। पण्डित, कवि, गुणवानों का भली भांति सत्कार करते हो, क्योंकि ये लोग यश अपयश देने में स्वतन्त्र हैं।

अपने मित्र राजों के साथ परस्पर प्रीति बढ़ाने वाली बातें करते हो और समय पर उनकी सहायता करते हो।

भला प्रजा के स्वास्थ्य का विचार तुम्हारे अधिकारी गण रखते हैं ।

धर्म विषय में तुम्हारा भाव जिन मनुष्यों से नहीं मिलता है उनका अनादर तो नहीं करते, क्योंकि धर्म की गति अति सूक्ष्म है ।

भला मंत्रीगण मंत्र करते समय तुमको भय तो नहीं करते ।

भला थोड़े अपराध में अधिक दंड अथवा बड़े अपराध में थोड़ा दंड तो नहीं देते हो ।

भला जिसको जो वचन दे चुकते हो, उस (प्रतिज्ञा) को पूर्ण करते हो ।

भला एकांत में बैठकर प्रजा के हितका चिंतवन करते हो ।

भला सेना को तुम स्वयं देखने जाते हो, और प्रसन्न होकर उसको पुरस्कार देते हो ।

विश्वामित्रजी की आज्ञा के लिये हाथ जोड़े दशरथ जी ।

इस प्रकार से विश्वामित्रजी ने धर्म तथा नीति के अनेक प्रश्न राजा दशरथ से किये-उनका उत्तर राजा ने यथोचित दिया-तब हाथ जोड़कर दशरथजी बोले-कि आज हमारे बड़े भाग्य हैं जो आप तपोधन को मैं यहाँ

देख रहा हूँ क्या वह कार्य्य जिसके लिये महाराज यहाँ पधारे हैं मुझ पर प्रकट किया जायगा, उसके पालन करने के लिये मैं सहुलास तत्पर हूँ। विश्वामित्रजी बोले इक्ष्वाकु से लेकर जितने राजा सूर्य्यवंश में हुए हैं वे एक से एक शुर, नीतिज्ञ तथा धर्मवान् होते आये हैं । तिसमें आप विशेष हैं, कि हम वनवासी जो किसी से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, सो भिक्षुक समान तुम्हारे द्वार पर आये हैं, समाचार यह है कि हम सिद्धाश्रम में यज्ञ करते थे सो ताड़का नाम राक्षसी और उसके पुत्रादि राक्षस आकर यज्ञ भंग कर देते हैं ।

हम शाप देकर उनका नाश करसक्ते हैं, परन्तु इससे व्रत भंग होता है, क्योंकि शाप का आह्वान विना क्रोध के नहीं होता—और जहाँ क्रोध आया तो जैसे अग्नि जिस स्थान पर रक्खी जाती है, प्रथम उसीको जलाती है, उस प्रकार क्रोध भी मनुष्य को नष्ट करदेता है इससे शाप देन अनुचित समझा ।

विश्वामित्र का राम को मांगना ।

अब हम आपके पास सहायता माँगने आये हैं कि चार दिन के लिये अपने जेठे पुत्र रामचन्द्र को मेरी यज्ञरक्षा करने को माँगे दीजिये—वह मेरे प्रताप द्वारा रक्षित रहेंगे ।

राजा ऐसी बात को सुन लाजवंती क्षुप के समान मुरझा गये । फिर धीर धरकर बोले, कि अभी राम युद्धविद्या की शिक्षा पारहे हैं, उनको किसी युद्ध में जाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ । फिर प्रबल शत्रुओं के साथ युद्ध करने में कैसे विजय प्राप्त करेंगे । वे छलकारी माया व्यूहों को रचकर जब लड़ेंगे तो सुरेश को भगादेंगे, तब उनके साथ राम कैसे युद्ध कर सकेंगे । हाँ यह बात होसक्ती है कि वचनबद्ध होने से और आपको दुःखित देखकर मैं अपनी उस वाहिनी के साथ जिसने पुरंदर को दैत्यों से विजय दिलाया है, चलकर आपकी यज्ञरक्षा करूंगा-परन्तु राम अभी बालक होने से ऐसे युद्धादिक के कामों के योग्य नहीं हैं ।

तब विश्वामित्र जी वशिष्ठजी से बोले कि राजा स्नेह वश राम के देने में हिचकते हैं, आप उनको समझा दीजिये, कुछ हम राम को अपने कार्य्य के निमित्त ही नहीं लिये जाते । वशिष्ठजी राजा दशरथ से बोले, राजन् ! राम को विश्वामित्रजी के साथ भेजने में आपके यश और रघुवंश की वृद्धि होगी ।

विश्वामित्र जी चाहैं तो सूर्य्य के कड़े प्रकाश को लोप करदें, चाहैं तो पृथ्वी को जल में बतासा की नाईं पिघलादें, चाहैं राक्षसों को मूल समेत पलमात्र में नाश करदें, हे

कौशलेश ! वह जो कुछ चाहैं सब कर सक्ते हैं, इनके साथ राम को भेजने में किसी प्रकार का भय नहीं है, साधुओं के द्वारा अपकार न होकर उपकार ही होता है, इससे प्रफुल्ल चित्त हो राम को दीजिये ।

विश्वामित्र का राम लक्ष्मण को पाना ।

राजा दशरथ निकट खड़े हुए रामचन्द्र से बोले, पुत्र, गुरु के सहमत से इन विश्वामित्रजी के साथ तुम वनको भेजे जाते हो, जो भाव, जो भय, जो संकोच मुझमें रखते थे वही २ भाव इन मुनिजी में रखना ।

फिर दशरथजी नेत्रों में आंसू भर विश्वामित्रजी से बोले, मैं राम को आपको सौंपता हूं, अब इनके माता पिता आपही हैं । ऐसा कहकर रामचन्द्र का हाथ विश्वामित्रजी को पकड़ा दिया, तब देवतों ने पुष्प बरषाये, और साधु २ शब्द से आकाश गुञ्जायमान होगया, हे दशरथजी आपके बराबर धर्मधुरीण, परोपकाररते कोई नहीं है, जो राम ऐसे प्राणाधार पुत्र को एक ब्राह्मण के हेतु राक्षसों के साथ युद्ध करने भेज रहे हो । इतने में लक्ष्मणजी आये और पिता से दुलराते बोले, कि मैं भी रामचन्द्रजी के साथ जाऊँगा । उनके परस्पर के स्नेह को देख राजा ने लक्ष्मण को भी साथ जाने की आज्ञा दी । तब दोनों राज-

कुमार माताओं से विदा हो पिता तथा वशिष्ठादिक गुरुजनों को अभिवन्दन कर महातपोधन विश्वामित्र के साथ वन को चले—

वन में राम।

दोनों राजकुमारों के साथ विश्वामित्रजी मग्न मार्ग में चले जाते हैं, वृक्ष, गुल्म, लता, वेलि, क्षुप, वनस्पति, पुष्पादिकों के नाम तथा गुण दोनों भाई पूँछते हैं, और विश्वामित्र जी वारम्वार विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं, इतने में सन्ध्या हुई, तब विश्वामित्र जी बोले, हे राम! आज यहाँ सरयू के तट पर विश्राम करो। रात्रि में जब दोनों भाई शयन करने लगे, तब विश्वामित्रजी ने जगत्पति की रक्षा अनेक भाँति से की—जब प्रातःकाल हुआ तो विश्वामित्र जी दोनों भाइयों को जगाने लगे-हे रघुकुल कमलदिवाकर, उठो भोर हुआ है, देखो ये पक्षीगण परस्पर आनन्दसूचक शब्द कर रहे हैं मानों उपदेश देते हैं कि ऐक्यता में आनन्द-वास करता है। मुनिगण अपने कमंडलुओं को लिये हुए सरयू में स्नान करने जाते हैं, समीर पवन चल रहा है। तब दोनों भाइयों ने उठकर गुरु को प्रणामकर स्नान किया और सन्ध्यादिक नित्यकर्म से निवृत्त हुए।

ताडका वध ।

फिर मार्ग चलने लगे । इसतरह चलते २ कई दिन के पश्चात् मलद् करुश देश मिला जहाँ पर ताडका राक्षसी रहती थी । वह स्थान निर्जन पशु पक्षी से शून्य था, और वृक्षों में पत्रादिक भी नहीं थे, ताडका के चलने के वेग से आकाश में सदा धुन्धी छाई रहती थी । ऐसा घोर वन देख रामचन्द्रजी ने विश्वामित्र से पूँछा यह कौन वन है कि जो वन जीवों से हीन है । विश्वामित्रजी बोले, पूर्वकाल में यह वन बड़ा मनोहर था, परंतु जबसे ताडका राक्षसी, यहां रहने लगी तबसे उसने इसको नष्ट करदिया-हे राम ! आज इस महावन के अंचल पर ठहरो, मैं तुम दोनों भाइयों को बला अतिबला दो विद्या देता हूं, यद्यपि तुम सर्वज्ञाता हो तथापि जगत् हितार्थ स्वीकार करो और बहुत अस्त्र शस्त्र भी देता हूँ उनको भी स्वीकार करो । जब सब विद्या व अस्त्र शस्त्र देचुके तब विश्वामित्रजी बोले कि अब चलकर सुष्टिलाशिनी ताडका को मारिये जैसे शुक्र की माता को विष्णु ने मारा था ।

रामचन्द्रजी युद्ध करने चले तब विश्वामित्र स्वस्त्ययन पाठ करने लगे, मन्त्रों को पढ़ते हुए कुशों द्वारा मार्जन करने लगे, चलकर आगे देखते हैं कि गेरू के पर्वत के समान वह यक्षिणी पड़ी है जिसकी श्वास के वेग से अनेकों वृक्ष

सदा कम्पायमान रहते हैं-विश्वामित्रजी बोले, बस, राम अब ठहर जावो, और युद्ध करने में उद्यत होओ। गुरू की आज्ञा पातेही रामचन्द्रजी ने धनुष को टंकोरा, उसको सुनकर उस यक्षिणी ने हकबकाय चारों ओर देखकर इन सुन्दर राजकुमारों की ओर देखा। तब वह मोहित हो ठगीसी जहाँ की तहाँ बैठ रही, फिर देखा कि विश्वामित्र राम को उसके मारने में त्वरा करा रहे हैं, तब वह बड़े वेग से आकाश को चली गई और वहाँ से राजकुमारों पर माया रचकर पवि अग्नि बरसाने लगी। इधर रामचन्द्रजी मंद मुसकाते बाण वर्षा करने लगे और वह भी बहुत देर तक माया युद्ध करती रही। जब आकाश में बाणों ने उसको ठहरने न दिया तब वह दोनों हाथ फैलाय राम पर दौड़ी। रणकुशल राम ने दोनों बाहों को काट डाला और दरीसमान मुख में इतने बाण मारे कि वह पृथ्वी में गिरकर मृतक होगई-जब वह मरगई तब विश्वामित्रजी अपने स्थान सिद्धाश्रम में आकर यज्ञ करने लगे। माता का मरण सुनि मारीच सुबाहु आदि बड़ी घनी राक्षसी सेना लेकर मख विध्वंस करने आये-परन्तु राम ने कौतुक की भाँति मारीच को वायव्यास्त्र से उड़ादिया और शेष सेना को मारडाला, तब देवतों ने पुष्प बरसाकर अपना हर्ष प्रकट किया और मुनि मंडली दोनों भाइयों को आशीर्वाद देने लगी।

जनकपुर गमन ।

निर्विघ्न यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् कंकायन, देवल, काम्य, कात्यायन, कुशिक, बादरायण, शाकुनेय, कौण्डिन्य, हारीत, असित, शरलोमा, गोभिल वैखानस आदि मुनियों के संग विश्वामित्रजी बैठे थे, इतने में एक ऋषि आकर बोले कि महाराजा जनकजी के यहाँ उनकी कन्या का स्वयम्बर है बड़ी बड़ी दूर से राजा लोग आरहे हैं; हम लोगों को उचित है कि अपने मित्र विदेहजी के यहाँ इस समय चलें । तब सब लोगों ने चलना निश्चय किया ।

शापमुक्त अहिल्या ।

मार्ग में मुनिमंडली के साथ रामलक्ष्मण चले जाते हैं । नगरवासी उनको देख टकटकी बाँधे देखते हैं और आपस में कहते हैं कि इन दोनों कुमारों की शोभा अकथनीय है, जिनके पीछे मुनि लोग भी ध्यान योग मखादि कर्म छोड़ घूम रहे हैं । इस प्रकार चलते २ मार्ग में एक शून्य स्थान दिखाई पड़ा, रामचन्द्रजी बोले, गुरुजी जैसे मनुष्य के शिर में रोग होने से केश नहीं जमते वैसे ही यह स्थान महा शून्य क्यों है, कृपा करके कारण बतलाइये ।

विश्वामित्रजी बोले आवो उस शिला के निकट से इसका रहस्य दिखावें । रामचन्द्र शिला के निकट पहुँचे हैं

कि रामचन्द्र की पगरज वायु द्वारा उड़कर शिला पर पड़ी, जैसे वह रज उसपर पड़ी कि एक शब्द शिला से हुआ और वह बीच से फट गई, फिर उसमें से एक महा सुन्दरी जिसको रति देखकर दासी बनना स्वयं स्वीकार कर सक्ती है, निकलकर—रामचन्द्र के चरणों में बारम्बार पड़ने लगी मानों उससे यह ध्वनि निकलती है कि जिनकी रज में शिला से स्त्री बनाने की सामर्थ्य है तो न जाने उनके स्पर्श में क्या गुण हों, उस समय यह अहिल्या का कार्य्य स्वर्ण से मृगांक बनाने के समान हुआ—फिर हाथ जोड़ नेत्रों में प्रेम के आँसू भरेहुए स्तुति करने लगी।

"मैं जड़ केवल अन्तःकरण मात्र रक्खे हुए शिला हो अपने पापों से तप रही थी। सो प्रभु ने मेरी अधम प्रवृत्ति की ओर न दृष्टि कर अपनी आर्त्तिहरण बानि की ओर देख मुझ पापिनी अबला को शोक-सागर से उबारा है, सो मेरे पापपुंजों को और इस आप की कृपा को वर्णन करनेवाला ब्रह्मा सृष्टि में नहीं है, जब वे अपने चारों मुखों से वेदों द्वारा स्तुति करते हुए पार नहीं पाते तो अल्प अल्पज्ञ जीव कैसे वर्णन कर सक्ता है फिर इस रूप के दर्शन, जो मुझ को हो रहे हैं इसके लिये मनुष्य सदा धर्म मार्ग ही पर आरूढ़ रह कर शम दम करते हुए शरीर को दग्ध कर डालते हैं परन्तु तिसपर भी इस घनश्याम रूप के दर्शन नहीं पाते । आज

मेरे समान कोई नहीं है, यदि इस रूप के दर्शन होने से महेश की बराबरी का विचार मेरे हृदय में हो तो क्या आश्चर्य है" इस प्रकार वह मुनिवधू अनेक प्रकार से स्तुति करती रही—

इतने में गौतमजी आये, और रामचन्द्र से मिलकर अपनी स्त्री को धन्य माना—तब रामचन्द्रजी बोले हे मुनि सत्तम, अब आप इस अहिल्या को स्वीकार करें। गौतमजी बोले जिसको आपने स्वीकार किया है उसको त्रिभुवन में कौन दुराय सक्ता है, फिर दम्पति, रामचन्द्र तथा विश्वामित्र आदि ऋषियों से मिलकर अपने स्थान को चले गये।

जनकपुर।

जब दोनों स्त्री पुरुष उस स्थान से चले गये तब विश्वामित्रजी सबको साथ लिये हुए आगे चले। थोड़ी दूर चलकर जनकपुरके स्वर्ण गृहोंके कँगूरे देख पड़ने लगे—जो सूर्य्य की किरणों से परम प्रकाशित हैं, पुर के दो चार कोस आगे ही से मार्ग व वृक्षादिकों का ऐसा बनाव है कि, पथिक बिना बताये ही जान लेवें कि आगे को मनोहर नगर बसा है—ऐसे सुहावन जनकपुर में विश्वामित्रजी पहुँचे, देखते हैं कि अगणित राजों के वितानादि खड़े हैं, कहीं गजों की अवली तड़ागों से स्नान कराई हुई आरहीं हैं

कहीं बाजिगण बँधे शब्द कर रहे हैं, अनेक प्रकार के बाजा जगह २ बज रहे हैं, राजों के अधिकारीगण सुन्दर वस्त्र पहिरे इधर उधर जा रहे हैं, राजा लोग रथ पर चढ़े अपने मित्र राजों के यहाँ मिलने जा रहे हैं, कोई राजा धूरि को आकाश में उड़ाता, डङ्का बजाता जनकपुर आरहा है और राजा जनक के कर्मचारी सविनय सब आगत मनुष्यों का स्वागत करते हैं तथा उनके निकट इच्छित पदार्थों को पहुँचा रहे हैं ।

ऐसी बड़ी भारी भीड़ को देख विश्वामित्रजी एक मुनियों के रहने योग्य स्थान पर उतरे । यद्यपि जनसमूह का वारापार न था, तथापि राजों तथा ऋषि मुनियों में ऐसा कोई न था जिसके आने की सूचना महाराज जनक को न हुई हो । जनकजी ने यह सुना कि विश्वामित्रजी आये हैं तब हर्षित हो मन में कहने लगे कि अब मेरे प्रण के पूर्ण होने में कोई शंका नहीं है, जिसने चंडाल त्रिशंकु को सशरीर स्वर्ग पहुँचाया, ऐसे असम्भव को सम्भव करने हारे तपोधन के आने में मेरा भविष्य कल्याण सूचित है ।

जनक और विश्वामित्र की भेंट ।

फिर जनकजी विश्वामित्रजी से भेंट करने चले । पहुँचकर साष्टांग दण्डवत् की, फिर राम लक्ष्मण की ओर

दृष्टि कर ब्रह्मर्षि से बोले-ये दोनों कुमार किसके हैं जिनमें एक तो अपने वर्ण से आकाशवत् आत्मा का परिचय देता है दूसरा गौर वर्ण जगत् का कल्याणकर्त्ता दिखाई पड़ता है जिन नेत्रों ने अपनी दृष्टि में जगत् के किसी पदार्थ को सत्य नहीं ठहराया-वेही आज बिना पलक भांजे इन कुमारों को देखते अपने को धन्य मान रहे हैं। मैं दृढ़ अनुमान करता हूँ कि यह दृश्य ब्रह्मा की सृष्टि के बाहर ही है।

विश्वामित्रजी बोले, हे मिथिलेश ! आप कर्म व कुल दोनों से विदेह हैं आप ब्रह्म को उचित समझते हैं, बड़े २ ज्ञानी अपने ज्ञान का परिचय आपको देने आते हैं। जो कुछ आप साधारणतः कहेंगे वह विवेक पूर्ण होगा, फिर आपने जिस बात को विचार सहित प्रकट किया है, वह कैसे अन्यथा होसक्ती है सुनिये, ये प्रकट में महाराज दशरथ के पुत्र हैं इन जेठे सुत का नाम तो रामचन्द्र है और दूसरे का नाम लक्ष्मण है। अपने यज्ञकी रक्षा के निमित्त इनको महाराज से माँग लाया था-और इन्हों ने आकर विघ्नकारी ताड़का, सुबाहु आदि राक्षसों का नाश करदिया-

इसी बीच में सुना कि आपके यहाँ राजकन्या का स्वयम्वर है सो ये भी मेरे साथ देखने चले आये। स्वयम्वर का नाम सुनकर अपने प्रणको स्मरण कर व रामचन्द्रको देख जनकजी के नेत्र सजल होगये। जनकजी बोले की मुनिजी !

सूर्य्य अस्ताचल को प्राप्त होरहे हैं अब आज्ञा हो तो चलकर वहाँ का प्रबन्ध देखूँ। विश्वामित्रजी कुछ दूर चल राजा को विदा कर लौटे आये-

नगर में दोनों राजकुमार।

जब प्रातःकाल हुआ तो सब लोग नित्य कर्म से निवृत्त होकर व मन इच्छित पदार्थ खा पीकर इतिहासादि कथायें कहने लगे-सहित संकोच के रामचन्द्रजी विश्वामित्र के हाथ जोड़कर सन्मुख खड़े होकर बोले, गुरो! लक्ष्मण नगर देखना चाहते हैं यदि आज्ञा हो तो दिखालाऊं-

विश्वामित्रजी बोले, हे राम! तुम्हारा नगर देखना कल्याणवर्धक हो-जाव, अमरावती सदृश बसा जनकजी का नगर देख आओ। नगर देखने के समय रामचन्द्रजी पीताम्बर की धोती पहिरे हुए हैं वह घुटनों के नीचे आई हुई है मानो चरणों को लपकती है। उत्तरीय वस्त्र जो वायु झोंको से उड़ता है मानो राघव के अंगस्पर्श के कारण अपने भाग्य की सराहना कर रहा है, कंधे पर लटका हुआ धनुष रघुनन्दन को धनुर्विद्या का सुझाता जता रहा है, कानों में कुंडल हिल रहे हैं मानों जनकपुर की नारियों से परिहास करते हैं, कि अब न बचोगी, तरुण कमल के समान प्रफुल्ल वदन शील, दया, क्षमा, गंभीरता, सरलता, मनोहरता का

पूर्ण परिचय दे रहा है, नेत्रों में मधुर दृष्टि भरी है जिससे नरनारी गणों का मन पीछे लगा फिरता है—

जब नगर में पहुँचे तो देखते हैं कि मंदिरों के धौरहर ऊर्ध्वमुखधारी तापसों के समान आकाश की ओर देख रहे हैं, जिन भवनों की स्वच्छता के कारण एक दूसरे की छाया भित्तियों पर पड़ती है। मार्ग के दोनों ओरों के मंदिरों के धौरहर मेघ समान सूर्य्य को मूंदे रहते हैं। जल के छिड़काव से पृथ्वी सदा गीली बनी रहने से वर्षाकाल का अनुभव होता है।

दूकानों में अनेक प्रकार की वस्तुएँ धरी हैं, रथों के आने जाने से मार्गों पर घरघराहट का शब्द गूंज रहा है, राजमंदिर की ओर का मार्ग बड़ा बिशाल बना हुआ है जिसके दोनों ओर उपबन शोभा दे रहे हैं-स्त्रियां गलियों थलियों में सीतास्वयम्बर गारही हैं, पुरवासी निज २ द्वारों पर बंदनवार बाँध रहे हैं, दोनों राज कुमारों को देख नरनारी अपने कामों को भूलकर जहाँ के तहाँ खड़े होकर देखने लगते हैं, दूकानदार पदार्थों को हाथ में लियेहुए उनके नाम व गुण दोनों भाइयों से वर्णन कर रहे हैं, दोनों भाई अपनी चितवन से उनके मन को मोल ले लेते हैं। वृद्ध चतुर स्त्रियां पूछती हैं कि लाल तुम्हारा आगमन किस देश से हुआ है और तुम किसके पुत्र हो आओ बैठकर

भ्रमरहित हो लो। उनके स्नेह को देखकर दोनों भाई बैठ जाते हैं और उनको देख स्त्रियों के हृदय में एक प्रकार की आनन्द की चाल होती है।

बालकगण दोनों भाइयों को अपने सदा के स्वामी के समान समझ, बड़ी सरलता से बात चीत करते हैं। फिर दोनों भाई उनके साथ रंगभूमि तथा नगर देखकर तथा पुरवासियों के मन अपने साथ लेकर, विश्वामित्रजी के निकट आये। कौशिकजी ने पूँछा कि लक्ष्मण नगर देख आये। इन वचनों को सुन रामचन्द्र मुसकाते हुए लक्ष्मण की ओर देखने लगे और लक्ष्मण लज्जा के वश नीचे मुख कियेहुए बोले, "महाराज यह नगर हमारे अवधपुर के सदृश सुन्दर है" विश्वामित्रजी हँसते हुए बोले यहाँ की सब वस्तुएँ तुम्हारे सदृश हैं।

वाटिका में राम लक्ष्मण।

जब प्रातःकाल हुआ तब राम तथा लक्ष्मण विश्वामित्र जी के लिये पुष्प लेने जनकवाटिका को चले— यह वाटिका नन्दन वन के समान शोभायमान हो रही थी—जिसके द्वार पर अनेकों माली गण बैठे पुष्पों के अधिक उपजने की बातें परस्पर कर रहे थे। मालियों से पूँछ कर दोनों भाइयों ने वाटिका में प्रवेश किया जैसे सूर्य

को देखकर कमल वन फूल उठता है वैसे ही सब पुष्पों के वृक्ष रामचन्द्र जी को देख फूल उठे, जिनमें कली थीं वे फूल होगये जिनमें कली न थीं, वे वृक्ष तत्क्षण कली रूप में होकर पुष्प धारण कर रामचन्द्र की भेंट देने के लिये तत्पर हुए। पवन पुष्पों का सहायक बनकर उनकी सुगंध दोनों भाइयों के निकट पहुँचाने लगा, बड़ी २ बेलि वृत्तों में चढ़ी हैं उनके बौड़े लटकते पवन के झोकों से हिल रहे हैं मानो रामचन्द्र जी के चरणों में पड़ने के लिये अकुलाते हैं। जो वृक्ष बड़े हैं वे अपने पत्तों की घनी छाया से सूर्य्य की उष्णता को रोके हुए हैं। जो पुष्प रामचन्द्र जी के दोने में आगये हैं वे आपस में कह रहे हैं कि आज जड़ सृष्टि धन्य है जिसमें प्राप्त होकर हम भुवनेश्वर के हाथ में विराजते हैं, दूसरे पुष्पों को दोने में प्रभु के करों द्वारा आते देख सिकुड़ते स्थान देते हैं, मानों उनसे उपदेश मिलता है कि जो कोई सुख अपने को प्राप्त हो उसमें दूसरों को भी सम्मिलित करना चाहिये। क्यारियां जो शीघ्रही जल से भरी गई हैं-रामचन्द्रजी के चरण कमल भीजने के भय से सूख जाती हैं।

गुलाबों के वृक्षों में जो कांटे लगे हैं उनको वृक्षों ने नवाय दिया है, जिसमें वे पुष्प तोड़ते समय सुकुमार कर-कमलों में लग न जाँय—

चमेली एकही में छिड़मिड़ाई हुई है और उसके पुष्प भीतर फूले हुए हैं वह उनको बौड़ों सहित बाहर निकाल कर उमंगमें भरी सुन्दर नायिकाके समान खड़ी रामचन्द्रजी के मन को आकर्षित कर रही है। चम्पा वृक्ष बड़ा होने से पवन के झोंकों से हिलता नीचे को नवता रामचन्द्रजी को सविनय प्रणाम करता बुलाता है। निवारी राघव के कर-कमलों को अति सुकुमार जानकर स्पर्श करते ही हाथों को अपने पुष्पों से भर देती है। गेंदा के हजारा पुष्प फूले हुए रघुनाथजी के पीताम्बर में लगते हैं मानो प्रभु से कहते हैं कि मेरे वर्णके वस्त्रको आपने धारण किया है सो मुझको भी लीजिये। वेलाकी घनी कियारी फूली हुई हैं। मधुमक्षिकायें बैठी उड़ २ कर रस लेती फिरती हैं। गुलमेंहदी अपनी शाखाओं को चारों ओर फैलाये हुए और उनपर बिचित्र पुष्प धारण किये हुए है मानों अठिलाती कौशलकिशोर का मार्ग रोके हुए कहती है कि मैं क्षुप जाति छोटी हूँ छोटे जीवों को अपनाते हो सो मुझको और आप भी अपनाइये। मल्लिका अपने सुघर हरे पत्तों के बीच सूक्ष्म पुष्प व गोलाकार फल धारण किये हुए पृथ्वी की ओर झुकी हुई है मानो रघुनंदन को अपना सर्वस्व समर्पण करती हुई प्रणाम करती है।

दुपहरिया अपने पुष्पों को अवधबिहारी की ओर किये हुए कहती है कि मैं सूर्य्य को मध्यान्ह काल में जबकि

उनका प्रकाश यहाँ पृथ्वी पर अधिक पड़ता है देखकर प्रसन्न होती हूँ, आप उन्ही के वंश में उत्पन्न मनमोहन कुँवर हो, आपके पूर्वजों में प्रीति लगाये हूँ मुझको अवश्य ग्रहण कीजिये ।

कर्णिकार पुष्पों के गुच्छा धारण किये हुए मानो रामचन्द्रजी के पुष्प तोड़ने के परिश्रम को देख अपने पुष्प एकत्र किये हुए पुष्पांजलि देरहा है ।

सवैया ।

सेवति सोहत साथ सने नट[१] केतक[२] हेमप्रभा[३] पियरो ।
मारुत[४] मौलसिरी गणिका[५] मुतिया मुनिकुंद[६] घने सिगरो ॥
माधवि मालति[७] सूरप्रिया[८] कनिकार[९] जपा[१०] सुखसों वगरो ।
"किंकर" देखु भ्रमैं अलिपुंज विदेह अराम वसंत खरो ।

जूहि चमेलि निवारि घनी गुलमेंहदि गेंद कियारि वनो ।
डोलि झकोरि समीर चलै झरि पुष्प गिरैं मकरंद सनो ॥
पांवड़ डारि दिये ऋतुराज बनो प्रतिरूप विदेह जनो ।
किंकर स्वागत भृंग करैं लखि कै रघुनाथ सुआगमनो ॥

---

१ अशोक, २ केवड़ा, ३ पीलीजूही, ४ मरुवा, ५ सफेदजूही, ६ देवना, ७ चमेली, ८ दुपहरी, ९ कनेर, १० गुड़हल

मनोरम[11] मागधि[12] औ मुचकुंद करंटक[13] मौलसिरी जु सुहायो।
कुजा गुलमेंहदि कान्त[14] घने ललना[15]प्रिय सारज[16] भानु लुभायो॥
सजे ऋतुपांच भले सब साज करैं निजपारिख लाज बरायो।
मनो ऋतुराजजु, जांचनकाज विदेह अराम ऋतून बुलायो॥
कदंब अशोक मधूक[17] शमी लवली[18] कदली अमिली वट भायो।
पटीर[19] लसोढ़ करीर पलास कठूमर कैथ अक्षोट[20] सुहायो॥
जु चंप चिरौंजि अनार सुतूत बदाम अकूतघने जुटि छायो।
लखो रघुनन्दन ओर चहूं सजि साथ खड़े मिथिलेश लगायो॥

वाटिका में सखियों के सहित सीताजी।

इस प्रकार के पुष्प वृक्षादिकों से सेवित वाटिका में दोनों राजकुमार विचर रहे थे, इतने में एक स्त्रियों का बड़ा भारी दल आ पहुँचा और उन ललनागणों के बीच जगत् जननी सीताजी तड़ाग की ओर जाती देखपड़ीं। रामचन्द्र जी बोले हे लक्ष्मण, देखो यदि यही जनकराज की कन्या है, जो रूप वपु ऐश्वर्य आदिक से अपना परिचय देरही है तो जनक का ऐसा कठिन प्रण इस राजकुमारी के देखते सहज

---

११ कुंद, १२ जुही, १३ कटसरैया, १४ निवारी, १५ कदब, १६ कमल, १७ महुवा, १८ सुपारी, १९ चंदन, २० अखरोट।

ज्ञात होता है। दोनों भाई आपस में ऐसी बातें बतल रहे थे कि उनका शब्द सुनकर एक सखी ने जाकर उन दोनों नवलनागरों को देखा, फिर विरह आतप से तपित बहुत कष्ट सहती लौटी, सांस लेकर धीरे २ अंगुली से संकेत करती बोली, कि यहां से थोड़ी दूर पर श्याम व गौर दो कुमार वाटिका में खड़े हैं, उन्होंने अपनी चितवनरूपी आकर्षण शक्ति से मेरे चित्त को हर लिया है। ऐसे वचन उस सखी के मुख से सुनते ही सीताजी को नारदजी के आशीर्वादा का स्मरण हो आया और पूर्व स्नेह हृदय में उदित हो उठा—तब पुष्पोंपर दृष्टि फेंकती उनके नामों व गुणों को पूँछती चलीं, परन्तु विशेष ध्यान प्रभु की ओर लगाये उनको इधर उधर देख रही थीं। इतने में सीताजी का दृष्टिरूपी भृंग राघव के चरण कमलों पर पड़ने को था; परन्तु बीचही में कौशलकिशोर के नेत्र-कमल जो सीता जी की ओर देखते अपने दल फुलाये हुए थे, उनमें अरुझकर वहीं ठहर गया और उन कमलों ने सम्पुटित हो सीता के दृष्टि रूपी भृङ्ग को बन्द कर लिया और राम का दृष्टि रूपी भृङ्ग सीता के नेत्र-कमल में प्रविष्ट हुआ। दोनों परस्पर अपने २ कमलों पर बैठे मग्न थे। वह सुख तुच्छ किंकर द्वारा वर्णन नहीं होसक्ता जैसे पंखरहित पक्षी आकाश में नहीं उड़ सका। फिर सखियां जानकीजी को गौरी के

मन्दिर में ले गईं वहां पहुँचकर सीताजी यों पार्वती की स्तुति करने लगीं। हे जगदम्ब, स्त्री के सुखों में प्रधान सुख अनुकूल पति का पाना है। प्रातःकाल मेरा स्वयम्बर होगा-सो जिस श्याम किशोर ने वाटिका में मेरा मनह रलिया है वही मेरे पति हों। अनेक स्त्रियों ने आपही की कृपा द्वारा मनभावन पति पाये हैं—मुझ पिता प्रण रूपी शिला से दबी हुई पर दया करके सहायता कीजिये। तब मण्डप में हर्ष सूचित करती हुई वाणी हुई। हे सीते, जिन जल से भरे मेघ के सदृश राम को तुमने देखा है वही तुम्हारे पति होंगे, हम रंगभूमि के मध्य राम के निकट तुमको उनकी भार्य्या बनी देखेंगी। ऐसी हर्ष भरी वाणी को सुन सीता जी सखियों सहित गृह को लौट आईं और उस ओर दोनों भाई भी पुष्पों सहित विश्वामित्र के पास लौट गये।

रंगभूमि में विश्वामित्र।

जब प्रातःकाल हुआ तो सब राजा लोग बन ठन कर रंगभूमि में आये, उनको जनक के चतुर अधिकारी यथा योग्य आसनों पर बैठाने लगे, वह बड़ा भारी रंगभूमि का मण्डप राजा लोगों से भर गया, जिसमें एक रम्य उच्च विशाल आसन विश्वामित्र व राम लक्ष्मण के लिये निश्चित किया गया, जनकजी ने अपने पुत्र लक्ष्मीनिधि को विश्वा-

मित्र के बुलाने को भेजा, लक्ष्मीनिधि कई एक स्यन्दन विश्वामित्रादि मुनियों के लिये व दो सुन्दर अश्व दोनों भाइयों के लिये साथ लेकर पहुँचे और प्रणाम कर विनम्र हो, करजोरे विश्वामित्र जी से बोले, हे ब्रह्मर्षि जी पिताजी ने आप व मुनिमण्डली सहित दोनों राजकुमारों को मुझे बुलाने भेजा है, वे स्यन्दन तथा घोड़े खड़े हैं, चढ़ कर चलिये रंगभूमि में कार्य प्रारम्भ करने के लिये केवल आपही का मार्ग देखा जारहा है।

विश्वामित्र जी मुनि मंडली तथा राम लक्ष्मण को साथ लेकर चले-तब फिर लक्ष्मीनिधि ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—कि आप सब लोग वाहनों पर चलिये। तब कौशिक जी बोले, हम कुछ समय तक वाहनों पर न चढ़ेंगे और ये राजकुमार जब से हमारे संग हैं सो ये भी हमारे सदृश नियम किये हुए हैं। हां यदि रंगभूमि में ये किसी कारणवश थक जांयगे तो वाहनों पर यहां पहुंचा जाना।

जैसे विश्वामित्र जी रंगभूमि में पहुंचे वैसेही सब बालक नरनारियों ने उनको प्रणाम किया—

तब वह उच्च मंच पर राम लक्ष्मण को आगे बैठा कर मुनियों सहित बैठे—

उस रंगभूमि को बड़े चतुर शिल्पकारों ने बनाया था एक ओर स्त्रियों के लिये स्थान बने हैं, एक ओर प्रजा समूह के लिये सुन्दर मंच निर्मित हैं एक ओर स्वयम्बर में आये हुए राजा लोगों के लिये बड़ी सुघरता से आसन रचे गये हैं और उसके सन्मुख की दिशा में धनुष धरा है जिसके ऊपर पुष्प मालायें पड़ी हैं। ऐसी भरी समाज में सुमति तथा विमति नाम दो जनक जी के बंदीजन अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाये हुए अलग २ बोले—

"यह रंगभूमि जनकराज की सीता नाम कन्या के स्वयम्बर के हेतु रची गई है, बात उसमें यह है कि जो इस धनुष को तोड़ डालै, उसके साथ कन्या का पाणिग्रहण होगा-जिसका बाहुबल उसको धनुष तोड़ने का विश्वास दिलाता हो वह जाकर इस धनुष को देखे" इतना कहकर बंदीजन चुप होगयें।

राजों का धनुष तोड़ने को उठना।

तब प्रथम काम्बोज देश का राजा धनुष तोड़ने उठा, यह शिव भक्त सिंहों के साथ अस्त्र शस्त्र रहित युद्ध करने में विख्यात था। उसको धनुष के निकट महादेव जी के अतिरिक्त पिनाक न देख पड़ा तब लौटकर अपने आसन पर बैठ गया और बोला कि वहां तो धनुष ही नहीं है तब

सब सभा हँसने लगी । फिर वाल्हीक देश का राजा जो मल्ल युद्ध में बड़ा चतुर था—धनुष के पासगया-वह मंजूषा जिसमें धनुष धरा था उसको खोलने लगा कि इतनेही में उसके दोनों हाथ फंस गये-अपना सब बल हाथ छुड़ाने में व्यय कर स्वेद से भरा हांफते २ बैठ गया ।

तब मगध देश का राजा हँसता हुआ झपाटे के साथ धनुष के निकट पहुंचा और बोला-हे धनुष तूने बड़े २ वीरों के मान का मर्दन किया है सो आज तेरे इतने भाग करूंगा कि तू 'सिटकी' के समान पृथ्वी में पड़ा देख पड़ैगा । इतना कहकर धनुष को मंजूषा से बाहर निकालने का यत्न करने लगा परन्तु वह न निकला । तब वह राजा मंजूषा सहित उठाने लगा परन्तु मंजूषा ने उसको मूर्च्छित कर दिया । फिर विदर्भ देश का राजा जो बड़ा यशस्वी, उदार और हरि भक्त था—अपने आसन से उठ कर चला ।

उसने जाकर बड़ा बल किया और जब थक गया तो अपने इष्टदेव नारायण को सहाय करने के लिये स्मरण करने लगा—देखता क्या है कि धनुष के दंड पर लिखा है कि "न साहस करो" तब वह लौट कर बीच सभा में खड़ा होकर बोला—भाई यह पिनाक रूपी शत्रु प्राकृतिक मनुष्यों से अजेय है ।

इस प्रकार अनेकों राजा क्रमशः उठते हैं और धनुष के निकट जाकर संग्राम से भगे हुए कादर के समान लौट आते हैं। जब कोई राजा उठता है तो नर नारी धनुष की ओर ताकते हैं मानों अपनी २ दृष्टि द्वारा उसको अधिक भार युक्त करते हैं जब सभा में ऐसा कोई राजा न देखपड़ा कि जिसने धनुष के उठाने में यत्न न किया हो और पराजित मल्ल की नाईं शिर लटकाये न बैठा हो तब जनक जी बड़े शोक को प्राप्त हुए, और उनकी दशा वैसीही हुई जैसे पके अन्न के खेतों के स्वामी की पत्थर गिरने पर होती है।

जनक जी बड़े दुःखपूर्ण तथा क्रोध से भरे वचन बोले। यदि यह मुझे ज्ञात होता कि यह वसुंधरा बीर पालित नहीं है तो मैं ऐसी प्रतिज्ञा न करता जब एक शस्त्र ही न उठा तो वे युद्ध कैसे करेंगे, मान लेना पड़ता है कि वीर कहलाने वाले मनुष्य व्यसनी हैं। ऐसा कहकर जनक जी चुप होगये। ऐसे अनादर भरे वचनों को सुनकर अग्नि पर दूध से उफनते हुए घड़े के समान लक्ष्मण क्रोध को प्राप्त हो मंचही पर खड़े होकर बोले।

लक्ष्मण का रोष।

गुरो, जनक जी के वाक्यों ने रघुवंश का बड़ा भारी अपमान किया—हम लोगों को सभा मे विद्यमान जानते

तथा धनुष के निकट न गये हुए भी जानकर मिथिलेश ने ऐसे निंद्य शब्द कहे हैं, जिनको हम लोग नहीं सुन सके ।

हम धनुष को मृणाल की तरह तोड़ सके हैं, हे गुरो आज्ञा हो तो मैं बालक इन अपने वचनों का पालन करूं—

ऐसे अभिमान भरे वचन सुन कर पुरवासी लक्ष्मण की ओर देख कर अपने हताश मन को शांति देने लगे ।

विश्वामित्र जी खड़े होकर ऊँचे स्वर से बोले कि जिस किसी व्यक्ति को धनुषतोड़न की इच्छा हो, वह अभी जाकर उसको तोड़ने का यत्न करे क्योंकि अब महाराजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी धनुष को देखना चाहते हैं, फिर रामचन्द्र की ओर हेर कर बोले लाल उठो और जनक जी के प्रण को पूर्ण करो ।

धनुष भंग ।

जब रामचन्द्र उठकर चले तो दर्शकवृंद देखने के निमित्त एक दूसरे के ऊपर गिरे पड़ते थे ।

रामचन्द्र धनुष के निकट पहुँचे हैं इतना तो सब लोगों ने देखा परन्तु लोगों ने धनुष को उठाते तथा तोड़ते पलकों को न मारते हुए भी न देख पाया एकाएक हाहाकार शब्द हो उठा सभा के सब लोग एक दूसरे पर गिर पड़े, और वह शब्द आकाश में पहुंच बड़ी देर तक घोर

रव करता रहा-परन्तु उस शब्द को सुनकर परशुरामजी आये-और रामचन्द्र को पाकर शांत हो लौट गये।

राम के गले में जयमाला।

चारों ओर से स्त्रियाँ गीत गाने लगीं, गंधर्व गाने लगे, अप्सरा नाचने लगीं, जलबिंदु के समान आकाश से फूलों की वर्षा होने से पृथ्वी पुष्पमय होगई, मानो वह रामचन्द्र को पुष्पांजलि देरही है।

तब विश्वामित्रजी की आज्ञा प्राप्तकर जनकजी ने सहस्त्रों सखियों के साथ सीताजी को रामचन्द्र को जय-माल पहिराने भेजा-सीताजी राघव के चरणों ही को निरखती रहीं--मानो चरणों से कहती हैं कि मैं आपकी दासी होने आई हूँ-तब विश्वामित्रजी बोले-'पुत्रि, रामचन्द्र के गले में जयमाला पहिनावो'। उस सुख को जबकि माता जी दोनों हाथों को पसारि रामचन्द्रजी के गले में सकुचती हुई माला पहिराने लगी हैं और जगत्पिता रघुनन्दनजी ने पहिराने में सहज होने के लिये शिर झुका दिया है, वह सुख शेष शारदा द्वारा वर्णन नहीं होसक्ता-तब यदि किंकर की लेखनी उसको प्रकट नहीं करसकी तो कोई आश्चर्य्य नहीं है।

पवन मंद २ चलने लगा–मेघ आकाश को अपनी घन घटाओं से घेर कर धीरे २ गरजते व सूक्ष्म जलविंदु गिराते अपना आनन्द प्रकट करने लगे, अप्सरा नाचने लगीं, गंधर्व गाने लगे, देवगण पुष्प बरसाने लगे, इस प्रकार से चौदह भुवनों में आनन्द छागया ।

एक सखी किशोरीजी से बोली—"लली प्रणाम करो" तब जानकीजी ने दोनों हाथों को भूमि में रख चरणों की रज में मस्तक धर दिया—इस दीनतासूचक सुख को हमारे स्वामी ही जानें, कविता भावगत है, जहाँ भावसे पर पदार्थ है वह वर्णन कैसे किया जासका है । फिर विश्वामित्र की आज्ञा पाकर सखियों सहित सीताजी रनिवास को लौट गईं । घर २ ब्याह उछाह की चरचा होरही है—स्त्रियाँ गली थली में जाती मंगल गीत गारही हैं ।

जनकपुर–अयोध्या का मार्ग ।

जनकजी विश्वामित्र के पास आकर बोले—कि महाराज अब जो जो कार्य्य करने हों उनके लिये आज्ञा दीजिये ।

हे प्रणतपाल ! जैसे शुनःशेफ को यज्ञ बलि से बचाया, त्रिशंकु की रक्षा की वैसेही आज मेरी लाज राखी है । विश्वामित्रजी बोले कि राजन् यह आपके सुकृत का फल है

कार्य्य के निश्चय करने में यह तो जानो होहीचुका कि स्वय म्बरशाला में कन्या ने वरको वरा, अब पुत्र के विवाह का सुख देखने के लिये राजा दशरथ को शीघ्रही बुलाना चाहिये ।

तब जनकजी ने दो चतुर चर अयोध्या को भेजे-और शिल्पकारों से बोले कि यहाँ से अवध तक शीघ्र मार्ग की रचना करो । उन चतुर शिल्पकारों ने चार प्रकार के मार्ग बनाये तिनके बीच २ में हरित दूर्वा तथा पुष्प लगाये कहीं पर पक्के घाट सहित पुष्करिणी बनाईं जिनमें फटिक सदृश निर्मल जल भरा है-तथा कहीं रम्य विश्राम स्थान बनाये ।

चारों मार्गों को पृथक् कर इस प्रकार रचा कि एक पर पैदल, दूसरे में रथ, तीसरे में अश्व और चौथे में गजों की अवली चलें ।

अयोध्या में जनकदूत ।

जब वे दोनों दूत अयोध्या में पहुँचे, तब प्रतीहार ने जाकर निवेदन किया कि मिथिलेश के दो दूत द्वार पर खड़े प्रणाम करते हैं । राजा ने सभा में बुलाया और पूँछा कि तुम्हारा आना कल्याण हो-भला हमारे मित्र जनकजी कुशल से हैं ? दूतों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि हाँ महाराज सब कुशल है-फिर जनकजी का पत्र दशरथजी को दिया ।

मित्रका पत्र जानकर स्वयं पढ़ने लगे-पढ़ते समय नरेश के बदन पर अनेक भाव प्रकट हुए-फिर वही पत्र वशिष्ठजी को दिया-वह पढ़कर महा हर्षित हुए और सुमंत से बोले कि यह जनकजी का पत्र सभा को सुना दो तब वह सभा सुनकर एक सन्मुख खड़े हुए नवीन सुख को देखने लगी।

रानियों का परिहास।

फिर राजा हाथ में पत्र लिये हुए रनिवास में कौशल्याजी के यहाँ गये और सब कैकेयी आदि रानियों को बुलाया और भरत को पत्र पढ़ने को दिया।

जब रानियाँ पत्र सुन चुकीं, तो सबकी सब चिबुक पर अँगुली धरे मुसकाती आश्चर्य्य करती बोलीं कि भला राम ने ऐसे आश्चर्य्य जनक-कार्य्य को कैसे कर पाया? सुमित्रा जी बोलीं कि विश्वामित्रजी की कृपा ने हमारे लाल को यश दिया है।

फिर पूँछने लगी कि भला बरात साजकर ब्याहने कब जावगे? भार्य्याओं से चारों ओर घिरे हुए राजा दशरथ बैठे थे तब कैकेयी हँसती हुई बोलीं कि हमारी ओर से दोनों लालों को पकवान लेते जाइयेगा और कहियेगा कि जो कुछ सुनयनाजी दें वह आकर हमही को दें। राजा

बोले तुम बड़ी चतुरा हो अल्पमूल्य देकर बहु मूल्य वस्तु लेना चाहती हो । सुमित्राजी बोलीं कि राम के यह यन्त्र बाँध दीजियेगा - जिसमें लाल के जनकपुर की चंचल स्त्रियों की दृष्टि न लगे। कौशल्याजी से राजा बोले, प्रिये तुम भी कुछ राम लक्ष्मण के लिये कहोगी-कौशल्याजी बोलीं कि मेरी ओर से दोनों बच्चों का मुख चुम्बन करियेगा। शिर सूंघियेगा और कहियेगा कि तुम्हारी माता तुमको शीघ्रही देखना चाहती है। भरत शत्रुघ्न दोनों भाई राजा के गले में हाथ डाले दुलार से ठुनकते बोले कि पिता हमभी जनक पुर चलेंगे-तब राजा दोनों पुत्रों को अंक में बैठा कर बोले कि तुम दोनों जने सहिबाला बनोगे ।

रानियों के बीच वशिष्ठजी ।

अब बरात की तय्यारी होने लगी, लोग अपने २ वाहनों के साजने का प्रबंध करने लगे। रानियाँ लौकिक तथा वैदिक रीति के अनुसार सब मंगल कार्य्य कर रही हैं, और वशिष्टजी बैठे करा रहे हैं। बाहर लोग ऊबकर कहते हैं कि यात्रा के मुहूर्त्त का समय बीता जाता है। राजा का मंदिर स्त्रियों से भरा है-वे कोकिलबयनी सुंदर मंगल गीत गारही हैं। इतने में राजा दशरथजी जाकर वशिष्ठजी से बोले, गुरो ! मुहूर्त्त बीता जाता है-वशिष्ठजी ने कहा

कि अव देर नहीं है । मुहूर्त्त अव विना राम वरात का उछाह देखे कहाँ जाता है ।

फिर रानियाँ वशिष्ठजी से कहने लगीं, गुरो ! यह कंकण लाल के हाथ में बांध दीजियेगा—यह अञ्जन की डिबिया धरे देती हूँ, यह जामा, पाग, व परिकर शुभ मुहूर्त्त में पहिराय दीजियेगा— यह मौर लाल के शिर पर अपने हाथ से धरियेगा ।

इस प्रकार पुत्र-प्रेम में मग्न रानियाँ ब्रह्मवेत्ता वशिष्ठजी से निवेदन कर रही हैं ।

बरात गमन ।

बराती राजद्वार पर निज वाहनों सहित खड़े चलने की प्रतीक्षा कर रहे हैं इतने में राजा को साथ लिये हुए वशिष्ठजी ने द्वार पर आकर प्रथम वाजावालों के एक दल को आज्ञा दी कि वह वरात के आगे वाजा बजाता चले— और तिसके पीछे गजों की अवली चलैं तिसके पीछे वाजि-गण चलैं फिर तिसके पीछे रथ और तिनके पीछे पैदल और तिनके पीछे भारवरदार लोग चलैं फिर दूसरा दल वाजवानों का चलै । बरात को इस प्रकार चलने की आज्ञा देकर वशिष्ठजी मंगलोच्चारण करने लगे फिर विनायक श्रीगणेशजी का नाम लेकर बरात चली तव अनेकों प्रकार

के बाजा बजने लगे जिनकी ध्वनि को लेकर देवतागण आकाश में बाजा बजाते चले।

नख से शिख पर्य्यन्त वाहन सजे हुए हैं तिनपर अमरगण समान रघुवंशी आदि बराती बैठे हुए हैं। हाथी अपनी झूमती चाल से चलते राम बरात के सुख की गहन मुद्रा में मग्न हैं और महा चपल अश्व अपने तथा सवार के सुख के भार को न सम्हार सकने के कारण टापों से पृथ्वी को खोदते चलते हैं। रथों की घरघराहट से मेघों के मन्दर गरजने का ऐसा शब्द होरहा है। मनुष्य एक दूसरे से हास्य परिहास करते चले जा रहे हैं।

मार्ग बड़ा सुदृढ़ बनाया गया था, परन्तु अवधनरेश की बरात से वह नदी के किनारे के रेत के समान होगया। ठौर २ जनकजी के मनुष्य टिके हैं। वे विनम्र हो बरात का स्वागत करते हैं-विविध प्रकार की पकवान आदि वस्तुएँ हाथ में लिये हुए, भोजन करने का आग्रह कररहे हैं।

अवधवासी जनकजी के मनुष्यों के शील, स्वभाव की बड़ाई करते हैं। कोई कहता है कि भाई राजों की रहनि उनके निकटवर्त्ती मनुष्यों से मिल जाती है-राजा जनक बड़े योग्य हैं कि जिनके कर्मचारी ऐसे सभ्य हैं। इस प्रकार परस्पर बातचीत करते चले जाते हैं।

मार्ग में कई रात्रि वास करने के पश्चात् जनकपुर निकट आया—तब बरात एक स्थान पर बहुर कर एकत्रित हुई और फिर मंद मंद जनकपुर की ओर चली इतने में सूर्य्य अस्ताचल को प्राप्त हुए ।

उस ओर जनक जी ने सुना कि अवधनरेश आगये हैं तब मंत्रिगण, पुरवासी तथा अन्य राजा लोग जो निमंत्रण में आये थे उनको साथ लेकर महाराज दशरथ की अगवानी करने चले—

दोनों दल सन्मुख खड़े होगये । तब अपने २ अश्वों पर चढ़े रघुवंशी राजकुमार वाजिकलाकुशलता दिखाने लगे—

अगवानी ।

कोई राजकुमार घोड़े पर एक पग से खड़ा दोनों हाथ उठाये उसको निपट दौड़ा रहा है । कोई अश्व की पीठ से नीचे पेट में चिपटा है और वह घोड़ा अपने पूर्ण वेग से दौड़ाजारहा है ।

कोई अश्व से उतर कर पृथ्वी पर खड़े ही खड़े संकेत द्वारा अश्व से मनमाना काम लेरहा है-इस प्रकार अनेकों प्रकार की वाजिकलायें रघुवंशी कुँवर कर रहे हैं तिनको देख जनकपुरवासी वारम्वार प्रकट प्रशंसा करते विस्मित होरहे हैं-इसके पीछे दोनों ओर से परस्पर मिलन हुआ ।

जनकजी ने महाराज दशरथ को प्रणाम किया उन्होंने हृदय में लगाय कुशल पूंछी-इस प्रकार अवधवासी व जनकपुरवासी परस्पर मिले-तदनंतर बरात जनवासे में टिकाई गई।

राजा दशरथ और दोनों कुमारों सहित विश्वामित्र जी।

इस ओर रामचन्द्रजी ने सुना कि पिताजी आये हैं तो दर्शन करने को दोनो भाई छटपटाने लगे—रघुनाथजी बोले लक्ष्मण यह हमारा अश्व हिनहिनाय रहा है मानो हमको ढूंढ़ता पुकारता है-देखो पर्वत की शिला फटने के समान हमारा शत्रुंजय नाम हाथी चिघड़ रहा है देखो हमारे पिता के आगमन में हर्ष सूचक जनकजी के यहाँ नौबत बज रही है और सम्मानार्थ वृहन्नालिकायें (बंदूकें, तोपें) दग रही हैं।

लक्ष्मण! आकाश की ओर देखो तो हमारे हास्य कुशल सौभीर सखा ने बहुत ऊँचे आकाश में एक यन्त्र लटकाया है जिसका प्रकाश चारों ओर छा रहा है-यह हमारे सूचनार्थ उन्होंने किया है-इतने में लक्ष्मणजी बोले भ्राता आज्ञा हो तो चमत्कृत नाम बाण चलाकर उनके यन्त्र

के पास पहुँचा देवें जिसमें सौमीर भी जान लेवें कि हम लोगों को भी उनके आगमन के समाचार ज्ञात होगये हैं ।

रामचन्द्रजी बोले वह बड़ा चंचल है सपदिही पिता जी से कह देगा तो वह इस कार्य्य को हम लोगों की ढिठाई समझैंगे—फिर विश्वामित्र के पास जाकर हाथ जोड़े शिर झुकाये हुए रामचन्द्रजी बोले—"सुनता हूँ कि पिताजी आगये हैं यदि आज्ञा हो तो दर्शन कर आवें"—विश्वामित्र जी रामचन्द्र के शील संकोची स्वभाव को देख कर मनही मन उनकी प्रशंसा करने लगे फिर प्रकट में बोले लाल तुम दोनों जनों को साथ लेकर हम इसी समय चलते हैं ।

ऐसा कह गाधिनंदन दोनों भाइयों को साथ लेकर चले—जब दशरथजी ने विश्वामित्रजी को राम लक्ष्मण के सहित आते सुना तो समाज सहित उठकर मिलने चले । विश्वामित्रजी को सन्मुख आते देख दशरथजी पृथ्वी में गिर कर वारम्वार प्रणाम करने लगे—और तब महा तपोधन विश्वामित्र ने लपक कर राजा को उठाया और हृदय में लगा लिया फिर कौशिकजी इन वचनों में बोले मैं जिन आप के प्राण प्रिय पुत्रों को माँग लाया था—अब उनको सौंपता हूँ लीजिये । फिर हँसते हुए विश्वामित्रजी बोले अपने पुत्रों को देख लीजिये कि मेरे लाने के दिन से अब वे हृष्ट पुष्ट हैं । राजा ने हँसकर उत्तर दिया कि दी हुई

वस्तु में मेरा कोई स्वत्त्व नहीं है-इस प्रकार आनन्द भरी बातें करते राजा तथा विश्वामित्रजी आसनों पर जाकर विराजमान हुए ।

सखा समाज में रामचन्द्र ।

फिर पिता के पास वैठेही वैठे रामचन्द्रजी ने सुमन्त जी से धीरे से पूंछा कि भला हमारे सौभीर सखा और अन्य सखा गण आये हैं? तव सुमन्तजी ने अँगुली उठाकर वताया कि वे सौभीर आदि सव सखा आपके वैठे हैं, तव रामचन्द्रजी सौभीर आदि मित्रों से जाकर मिले और यथायोग्य कुशल पूँछी-इतने में सौभीरजी बोले कि भला तुमने कुछ आकाश में रात्रि को देखा था-

रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया कि तुम्हारी चपलता की गति यन्त्र द्वारा आकाश को छुये लेती थी ।

सौभीर-तव उसी रूप में उत्तर क्यों नहीं दिया-हाँ अवतो वड़ी वड़ी करतूतें कर "दम्पति" शब्द कहलाने के भागी हुए, अव तुम को गंभीरता शोभा देती है ।

रामचन्द्रजी वोले, हे सखा! केवल पिता के भय से उत्तर नहीं दिया गया मेरे अपराध को आप क्षमा करें ।

प्रवीरजी वोले, हम केवल इतनाही जानते थे कि तुम नीति व युद्ध के गूढ़ विचारों में कुशल हो परन्तु यहाँ,

आकर सुना कि जनकपुर की अवलाओं के वश करने में तुमने जय पाई है।

फिर एक सखा लक्ष्मण से बोला कि तुम सब समाचार जो २ रामचन्द्र ने किये हैं वर्णन करो। लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर संकेत किया कि भाई इनके सामने छेड़ छाड़ न करो।

इसी प्रकार सब सखा रामचन्द्रजी के साथ परिहास कर रहे हैं और रामचन्द्र सबके स्नेह पवन प्रेरित हास्य वचन की बौछारें सह रहे हैं।

राम-बिवाह।

महाराज अवध नरेश को जनकपुर में कई दिन बीत चुकने के पश्चात् राम-विवाह का दिन आया। उस दिन प्रातःकाल वशिष्ठजी राजा जनक के पास प्रहुँच कर बोले—राजन् आज रामचन्द्र सीता का पाणिग्रहण करेंगे सो हमको यह आपसे कहना है कि शुभ अवसर सदा नहीं मिला करते हैं, अस्तु जानकी की छोटी भगिनी का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दीजिये। वशिष्ठजी के वचन सुन जनकजी प्रसन्न होकर बोले कि ऊर्मिला नाम कन्या जो सीता से छोटी है उसका विवाह लक्ष्मण के साथ, और मेरे भ्राता कुशध्वज के दो कन्या हैं उनका भी विवाह भरत

तथा शत्रुघ्न नाम दोनों कुमारों के साथ करूँगा । इसी लग्न में चारों दुहिताओं को उनके योग्य वरों को देकर जीवन के बीच एक बड़े भारी काम से निवृत्त हूँगा—क्योंकि कन्या ज्यों २ पिता के गृह में बड़ी होती है त्यों २ पिता उसके योग्य वर के ढूँढ़ने के विचारों में चिन्ता के कारण छोटा होता जाता है । इस ओर वशिष्ठ जी आकर राजा दशरथ से बोले कि महाराज जनकजी को आपका सम्बन्ध इतना प्रिय है कि वे आपके चारों कुमारों का विवाह अपनी तथा अपने भ्राता की कन्याओं के साथ एकही लग्न में करेंगे । यह सुनकर दशरथजी हाथ जोड़ बोले कि इन नयनों ने अपने को दर्शक और आप महाप्राज्ञ को सुख दिखाने वाला सूत्रधार ठहराया है-घरसे एक पुत्रके विवाह के उछाह में उछलता आया था-यहाँ आकर चारों के उछाह में मग्न होगया । सत्य है गुरु सब करा सक्ते हैं—जो शारीरिक दुःख सुख से अपने मन को पृथक् रखता है वह शक्तिमान् पुरुष दूसरे को सुःख देसक्ता है । थोड़ी देर में सन्ध्या हुई । जनवासे से बरात बुलाई गई-तब सहित वशिष्ठजी के चारों कुमार मण्डप में लाये गये । युवति-गणों से मण्डप भरा था, विशेष करके सीता की सखियाँ पाणिग्रहण संस्कार देखने के निमित्त आगे बैठी थीं । इस ओर अन्तः भवन में माता सुनयनाजी ने

रत्नों से जानकीजी की तथा अन्य कन्याओं की अञ्जली भराकर अनेक दासियों के साथ मण्डप को भेजा, उस समय कोकिलबयनियों के गान से हृदय से आनन्द उमड़ कर नेत्र मार्ग द्वारा बाहर निकल वह भी राम विवाह देखने लगा। शतानन्द व वशिष्ठजी की आज्ञा से सीता रामचन्द्र के सन्मुख, ऊर्मिला लक्ष्मण के सन्मुख, माण्डवी भरत के सन्मुख और श्रुतिकीर्ति शत्रुघ्न के सन्मुख बैठाई गई–तब दोनों मुनिवर विवाह संस्कार कराने लगे।

गुरुजनों की दृष्टि बचाये हुए रघुनाथजी किशोरीजी को देखते हैं और किशोरीजी रघुबंशमणि के चरणों को अवलोकि रही हैं। जिस प्रकार बालक एक दूसरे के हाथों की अँगुलियों में अपनी अँगुली फँसाय अपनी २ ओर तिरछे होकर नाचते हैं और एक दूसरे के बल पर रहकर नाचा करते हैं उसी प्रकार जगत्पिता और जगज्जननी की प्रेम दशा थी। अब भाँवरी फेरने का समय आया तब जानकीजी को पकड़े हुए दासी ने आगे मन्द २ चलाया और पीछे से रामचन्द्रजी सीताजी के कन्धे पर हाथ धरे हुए चले मानों विश्वास दिलाते हैं कि तुमको प्राण समान जानेंगे–जब सब संस्कार होगये तो कुमारों को कुहर में लेजाकर एक स्त्री बोली कि लाल, बातियों को मेखो अर्थात् दो बातियों को एक में मिला दो–सरल स्वभाव वाले

रामचन्द्रने जब बाती मिलादी तब एक प्रमदा बोली कि इन बातियों की भाँति तुम्हारी मातायें कामपीड़ा से जलतीरही होंगी और काम-पूर्ण पुरुष को पाय उससे मिल गई होंगी।

फिर स्वर्ण थार में लहकौरि डारकर स्त्री समाज जानकीजी को सिखाने लगीं कि लली! जब यह लहकौरि थाली में गिरै तो उसके लूटने में बड़ी चतुरता करना जिसमें लाल जीतने न पावैं। जब लहकौरि थार में गिराई गई तब जानकीजी मन में विचारने लगीं कि "मैं स्वामी के साथ बराबरी कैसे करूँ फिर कोमल से कोमल प्रभु की अँगुलियों में मेरे हाथ की चोट न लगजाय" ऐसा विचार कर शिथिलता से हाथ थार में धरे—मानो कहती हैं कि मैं अबला असमर्थ हूँ।

भोजन ।

जब सब लौकिक तथा वैदिक बिवाह संस्कार पूर्ण होगये तब चारों कुँवर जनवासे को लौट आये-बिवाह के साज संयुक्त राजा ने अपने चारों कुँवरों को देख परम हर्षित हो कोटि गौवें और बहुत धन ब्राह्मणों को दिया—फिर सब रघुवंशी आदि बराती भोजन करने गये। जिस घर में लक्ष्मी उमा आदि देवियों की स्वामिनी वर्तमान हैं उस घर के भोजन बिधान का वर्णन करनेमें किंकर असमर्थ है।

राम कलेवा।

जब सब बराती आदि भोजन करके जनवासे को लौट आये तब थोड़े समय के पश्चात् लक्ष्मीनिधि आकर दशरथजी को प्रणाम कर हाथ जोड़े हुए बोले कि माता जी ने चारों कुँवरों को कलेऊ करने बुलाया है। तब हँसते हुए दशरथजी बोले कि भला तुम्हारी माता ने अपने स्नेही हमको क्यों नहीं बुलाया। ऐसा कहकर चारों कुँवरों को कलेऊ करने के लिये आज्ञा दी।

जनक-भवन में पहुँच कर चारों भाइयों ने भोजन किया—फिर रत्न जटित आसनों पर जाकर बैठे—दूलह देखने के लिये स्त्रियाँ भरी हैं—तिन में लक्ष्मीनिधि की स्त्री सिद्धि आगे बढ़कर पान इत्यादिक सुगन्धित पदार्थ देकर हँसती हुई बोली, कुँवरजी! जो प्रकृति से अबला हैं—उनको अपने कटाक्ष बाणों से क्यों घायल करते हो।

यह सुनकर रामचन्द्रजी ने सिद्धि की ओर मुसकान छटा से दृष्टिपात किया तो उक्तप्रमदा नैनवाण की घायल होगई।

फिर दूसरी सखी बोली—

अब ये योद्धाओं के संग न युद्धकर हम अबलाओं के संग लड़ने आये हैं।

लक्ष्मण—भला जिन स्त्रियों ने ब्रह्मा विष्णु महादेव तथा तपस्वी आदि कठिन व्रतधारियों को जीत लिया है वे कैसे अपने को अवला कहती हैं-तुम अपनेही को देखो कि सकल रघुवंशियों को जीतकर यहाँ बुलालिया है।

अन्य सखी वोली तो यही कारण है कि तुम्हारी भगिनी ने शृंगीऋषि को अपने कटाक्ष से परास्त कर दिया है।

फिर दूसरी सखी वोली—

सुनती हूं कि जैसा स्वभाव पड़ जाता है वह नहीं छूटता सो यह तुम्हारी चितवन जिसने मिथिलापुर को घायल कर दिया है—क्या यह अवधपुर की नारियों पर विशेष भगिनी पर न पड़ती होगी? तब वे हमारा ऐसा भाव आप में अवश्य रखती होंगी।

रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—

हे चतुर ललने—नेत्र तो भाव के आधीन हैं जैसा भाव इनमें रक्खो वही रूप ये अपने में दिखाते हैं-परन्तु तुम्हारे यहाँ की रीति वंश परम्परा से है कि सृष्टि के प्रतिकूल ही जन्म हो-कोई तो मथने से निकले और कोई जोतने से जन्म ले-ये सब काम मानव सृष्टि के वाहर ही हैं-यदि तुम प्रमदा अपने भ्राताओं के साथ पति भाव रखती हो तो आश्चर्य्य क्या है।

एक वृद्धा स्त्री बोली–

लाल स्यात् तुमको न ज्ञात हो कि–तुम्हारी माताओं की गति स्वर्ग तक है वे तुम्हारे वृद्ध पिता के साथ देवतों से मिलने जाती हैं–यही कारण तुम्हारी अनुपम सुन्दरता का है।

दूसरी वृद्धा बोली–

सगर जी की माता पति के मरने के उपरांत बहुत समय तक एक मुनि जी के संग रही थीं–सखी–कितनाही कठोर नवनीत हो, अग्नि को पाय अवश्य गल जाता है।

इसके पश्चात् एक नवयौवना कुछ कह कर मुख मोड़ मुसकाने लगी।

भरत जी बोले–

यह सृष्टि का नियम है कि स्त्री पुरुष दोनों के संयोग से संतान उत्पन्न होती है परंतु निमिवंश की रीति ही न्यारी है केवल पुरुषही स्त्री तथा पुरुष दोनों का काम देता है कि जिसके मथने से संतान उत्पन्न होती है–उनकी स्त्रियाँ काम से भरी यदि अन्य पुरुषों की ओर ताकें तो क्या संशय है क्योंकि उनके पतियों में बहुत अंश स्त्रीवर्ग का है।

एक वृद्धा का वचन–

मैंने सुना कि राजा दशरथ साधारण वेश्या के पेट से उत्पन्न हुए हैं और ये हमारे चारों लाल उनके पुत्र हैं–ऐसा कह दाँत रहित मुख को वस्त्र से मूंद मुसकाने लगी।

सिद्धि का वचन—

शास्त्रों ने स्त्रियों को रूप का अधिकारी बताया है तो क्या उसका कुछ अंश आपमें है, जो इतने रूपवान् हो।

राम का उत्तर—

पिता माता के अनुहार संतान उत्पन्न होती है और जगत् में गुण के अनुसार ही नाम धरा जाता है, तो तुम्हारे नागर (लक्ष्मीनिधि) निज नामानुसार स्त्री जाति के गुणों से पूर्ण हैं वह तुम महा प्रमदा की तरुण ज्वाला को कैसे शांत कर पाते होंगे।

एक सखी बोल उठी—

भला यह तुम्हारी सुन्दरता जो हमारे मन को चुराये लेती है तुमको क्यों नहीं मोह लेती—इसीसे जान पड़ता है कि सर्प की मणि में विष नहीं व्याप्त होता।

दूसरी सखी बोली—

कि विरह में संयोग होने से दुःख कट जाता है परंतु हम तो संयोग में इनकी चितवन तथा मधुर रसभरी बातों रूपी घृत से विरह अग्नि में जर रही हैं—कोई सुख भी दुःख साने होते हैं।

तीसरी सखी बोली—

पूर्व जन्म में हम लोगों ने बहुतों के मन को हरलिया है—सोई कारण इनके द्वारा हमारे चित्त के चुराये जाने का

है-हम आश्चर्य्य करती हैं कि "चोर की वस्तु चुरा जावै" फिर मानना पड़ता है कि "कर्म का भोग सत्य है" ।

चौथी सखी बोली-

आपकी चितवन ने बाज के समान हमारी चितवन रूपी लवा को पकड़ लिया है तिससे हम खींची हुई वांस के मेरुवा के समान आपकी ओर देख रही हैं । भला हमारी दृष्टि वस्तु तो लौटा दो ।

रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया-

हे प्रिये जो जल समुद्र में पहुंच जाता है वह लौट कर नदियों में नहीं आता अस्तु दीहुई वस्तु को कैसे माँगती हो और वह कैसे दी जा सक्ती है ।

एक नवला हँसती हुई बोली—

कुंवर जी इस अपनी सुन्दरता के साथ हमारे ऐसे वस्त्र व आभूषण भी धारण करो तो लक्ष्मीनिधि इन (सिद्धि) से अधिक तुम्हारी प्रीति करैं-तव यह सुन्दरता भी काम में आवे ।

लक्ष्मण जी का उत्तर-

हे मदनोन्मत्त ललने; जैसे गहिरे तड़ागों में कूप खोदा जावै तो थोड़ी दूर ही में जल निकलता है वैसेही लक्ष्मी-निधि जिनका नाम प्रथमही से स्त्री वाचक रक्खा गया है, उनको श्रेष्ठ नायिका वनाकर सब प्रमदा गण हमारे निकट आओ-तव हम पूर्ण विलास को प्राप्त हों ।

एक वृद्धा स्त्री बोली-

लाल सुनती हैं कि वृद्धावस्था की संतान निर्बल होती है, परंतु तुम बलवान् हो, तब क्या इसमें कौशल्या जी की चतुरता नहीं है।

एक परिहासकुशल सखी बोली—

शास्त्रकारों ने हम नारियों को चातुरी तथा छल कपट का चपल यन्त्र कहा है परंतु तुम्हारी चितवन से हमारे अंग २ शिथिल होगये हैं क्या दूसरों को पीड़ा पहुँचाने ही के लिये यह मनोहर दृष्टि धारण किये हो? कुंवर जी हम परवश को अधिक घायल न करो नहीं तो यही संक्रामक रोग तुम्हारी भगिनी को पहुंचाया जायगा।

रामचन्द्रजी बोले-

आदि शक्ति संसार के रचने में प्रधान है उसीनें अपने (स्त्री) वर्ग को प्रबल बनाया है इस कारण ये सब पीनपयोधरी वाक्य रचना तथा अन्य कार्य्यों में कुशल हैं।

सिद्धि जी ने उत्तर दिया-

जो शादि से रहित, अन्त से शून्य पुरुष किसी कारण वश आदि अन्त संयुक्त कहलाकर संसार मण्डल में प्रकट होता है, तो हे रघुनन्दनजी—वह आदि शक्ति को अपनी सहचरी बनाये रहता है तब हम निस्सन्देह उसके वश में हैं—

फिर बोली कि कवियों ने हृदय के दो भाव रक्खे हैं एक तो पवि से भी कठोर, दूसरा नवनीत से भी कोमल, तिन दोनों भावों की प्रधानता स्त्री जाति में पाई जाती है, जिसको हम स्त्री अपने कोमल हृदय में धारण कर लेती हैं, उसके संग पंक में फंसी हथिनी के समान मन को फँसाये रखती हैं—और अपनी सुन्दरता से जग को मोह लेने की शक्ति रखते हुए भी उस अपने प्रियतम की मन वच कर्म से सेवा करती एक साधारण सेवकिनी का भाव रक्खे रहती हैं—ऐसी अबलाओं को जो तुम न अपनाओ तो हमारे हृदय में ऐसा भाव टिकाने में विधाता ने निष्फल ही परिश्रम किया। ऐसा कह सिद्धि के नेत्रों से ओस कण के समान प्रेमाश्रु कपोलों पर गिरने लगे।

तब रामचन्द्र जी बोले, हे प्रिये! तुम सबके शुद्धान्तः करण आकाश में जो प्रेम चन्द्र उदय हुआ है—उसके अवलोकने में मेरी मति चकोर थकित होगई है—मुझे केवल सच्चा प्रेमही प्रिय है, जिसमें यह है उसपर मेरी अविचल दृष्टि उसको रक्षा करने में रहती है।

ज्ञान, योग और भक्ति तीन मार्ग मेरे मिलने के हैं सो इनके अंग मनुष्य में न वर्त्तमान हों परन्तु अचल प्रेम है जिसका हृदय भादों की नदी के समान उमड़ता हो उसे है.

पदार्थ जो ध्यान योग से नहीं मिल सके सहजही प्रेम द्वारा प्राप्त होते हैं ।

वह कभी मेरे चरित्रों को स्मरण कर हँसता है और कभी रोता है, कभी मुझपर क्रोध प्रकट करता है और कभी मुझसे रूठ जाता है ।

उसके सुख को बड़े २ धीर योगी जन भी नहीं पाते उसके हृदय में सर्वत्र मेराही रूप दृष्टि आता है, वृक्ष, बेलि, पर्वत, पृथ्वी, नर, नारी, पशु, पक्षी में मेराही रूप देखता है और इन पदार्थों से मेरे प्रति बोलता है कि यहाँ तुम इस रूप में हो, फिर आगे चलकर किसी जड़ पदार्थ को देखता है तो कहता है कि मौनता क्यों धारण किये हो, अपने ऊपर किसी को रोप करते देखता है तो कहता है कि आज तुम्हारी बारी क्रोध करने की है अच्छा हमको कुछ मान नहीं है । स्त्री को देख कहता है कि ऐसा छल कपट रच करके ठगना चाहती हो, मित्र को देखकर बोलता है कि आज बड़े अनुराग से मिले हो, पिता माता को देख कहता है कि इस कर्मभूमि में आपने बड़ा पालन पोषण किया है, गुरु को देख कहता है कि आज आप उपदेश देने आये हो । इसी तरह परमहंस की तरह अपनेको संसार में उन्मादित दिखाता किन्तु वास्तव में संसार को उन्मादित देखता मेरे

स्मरण में सदा मग्न रहता है वह जैसा २ जहाँ २ मुझको देखता है शुद्ध संकल्पानुसार मुझको वैसाही होना पड़ता है।

यदि कोई प्राणी मेरे दास को छोटा जानकर आँख दिखाता है तो मैं अपने प्रियदास को इतना बड़ा बनाता हूं कि सुरेश भी माथ नवाते हैं।

मैं उनके सुखसे सुखी और उनके दुःख से दुःखी रहता हूँ वे जब कष्ट को प्राप्त हो मेरा स्मरण करते हैं तो उनको दुःख से उबारने में यदि किंचित्‌मात्र भी विलम्ब हुआ तो मैं उनके दुःख से अधिक दुःखी होता हूं।

किसी कार्य्य में जिसमें मैं उनका हित गुप्त रीति से सम्पादन कर रहा हूँ, वे प्रकट के कार्य को अपने प्रतिकूल देख मन में कहते हैं कि "स्वामी ने भी न सहायता की" तब मैं उनकी मनगून्धन का सुन हँसने लगता हूं।

कभी २ मैं परिहास के लिये उनको खिझाता हूं। ऐसा करने में मैं उनको चाहै जितना ऊँचा नीचा दिखाऊं वे मुझमें अचल प्रेम प्रीति रखते हैं।

यद्यपि मैं उनको प्रत्यक्ष में देख भी नहीं पड़ता–तथापि उनके दृढ़ सत्य-संकल्प के कारण मुझे उनके भाव के अनुसार होना पड़ता है।

कभी २ अपने संगियों के साथ ऐसी मेरी चर्चा करते हैं कि मानों मैं उनके साथ और संगियों की भाँति रहता हूं।

कोई २ अपनी मति के सूत में मनमाने भाव से मेरे गुणों की माला पिरोते हैं तब मैं उनकी चतुर बुद्धि को देख बड़ा प्रसन्न होकर उनको बलवती बना देता हूँ—वे सदैव अनेक भाँति से आत्मविलास किया करते हैं।

मेरे नाम को दूसरे के मुख से सुन बड़े प्रसन्न हो उस पर सौहार्द प्रकट करते हैं।

दो चार अपने साथियों के साथ परस्पर अपना २ प्रेमरस पिलाते हैं उससे वे भव की सुधि भूलि मुझमें मग्न होजाते हैं-उनकी वाणी को मधुर तथा सरस बनाने के लिये मेघरूपी चतुर शारदा सदैव उद्यत रहती है।

दुर्वासा सरीखे मेरे जन प्रकट में क्रोध करते हैं और ऐसा करने में उनका सिद्धांत संसार से बिलग रहता है।

बहुत ऐसे धीर मेरे जन हैं कि अपनी शील भरी वाणी से जगत् को उपदेश देकर मेरे सन्मुख करते हैं। कुछ मेरे जन ऐसे भी हैं जो केवल संसारी सुखों के लिये आते हैं मैं उनकी वासना के अनुसार उनके मनोरथ को पूर्ण कर देता हूँ, फिर वे भी निष्काम हो मुझको भजते हैं।

उन भक्तों से मैं सदैव लज्जित रहता हूँ जो मुझ ऐसे अखिल ब्रह्मांडमंडलाधिपति से किसी प्रकार की पाने की इच्छा न कर, मेरे चरणों में नित्य नवीन प्रीति किये रहते हैं। हे प्रिये! तुम लोगों के तथा मेरे बीच हृदय में सहज

स्नेह का सूत्र लगा है, मैं तुमसे कभी विलग नहीं हूँ । इस प्रकार की आनन्द वार्ता करके रामचन्द्रजी भाइयों सहित जनवासे को चले गये ।

बरात की बिदा की बातें ।

जब जनकपुर में दशरथजी को बहुत दिन बीत गये तो एक दिन वशिष्ठजी शतानन्दजी से बोले कि जनक जी को समझाइये कि लौटने के लिये अयोध्या से प्रतिदिन रानियों के पत्र आते हैं और अब दिन भी बहुत होगये हैं । शतानन्दजी ने जाकर सब समाचार जनकजी से वर्णन किया और इस ओर दशरथजी ने महाराज सीरध्वज जनक को बुलाया और विनम्र हो सकुचते शील भरे वचनों में बोले—

मैं तो ऐसाही चाहता हूँ कि यावत् जीवन यहीं निवास करूँ परन्तु कर्तव्य कार्य्य वश हो अवधपुर जाने की आज्ञा चाहता हूँ ।

जनकजी ने स्नेह भरे वचनों में उत्तर दिया कि मान-सरोवर की शोभा हँसों के वहाँ रहने से है वैसेही मेरी शोभा आपके साथ सम्बन्ध होने से हुई, मेरा कर्तव्य यही है कि आपकी आज्ञा का पालन करूँ। ऐसा कहकर जनकजी गृह को चले आये और बरात विदा करने का प्रबन्ध करने लगे । एक लाख अश्व, दस हजार हाथी, पचीस हजार

सजे हुए रथ, अमूल्य वस्तुओं से भरे अगणित शकट आदि दिये । अनेकों महिषी तथा धेनु जनकजी ने दिये, हाटक हीरा मणि मोती आदि से लदीहुई अनेकों गाड़ियाँ भारवश दबी प्रबल वाहनों द्वारा भी धीरे २ चलती थीं, भाँति २ के रेशमी वस्त्र पृथक् २ ऋतुओं के पहिरने के योग्य महाराज जनकजी ने दिये ।

जानकीजी के साथ के लिये चतुर तथा गम्भीर सहस्र दासियां दीं, ऐसी कोई सुन्दर वस्तु संसार में न थी जो महाराज सीरध्वज ने दशरथ को दहेज में न दी हो—

राम बिदा ।

बरात बिदा होने की बात धीरे २ नगर भर में फैल गई यह सुन सब नरनारी राजकन्याओं की बिदा देखने आये—

इस ओर वशिष्ठ जी रामचन्द्र जी से बोले तुम चारों भाई अपनी सासुओं से बिदा हो आवो । आज्ञानुसार भाइयों सहित रामचन्द्र जी जनक भवन में आकर हाथ जोड़ कर सुनयनाजी से बोले ।

"अब, पिता जी अवध को पयान करना चाहते है इस हेतु हमको बिदा होने के लिये यहां भेजा है जो भाव लक्ष्मी-निधि में रखती हो वही भाव हम में भी रखना" इस प्रकार

हाथ जोड़े हुए रामचन्द्रजी ने सुनयनाजी से निवेदनकिया। मधुर रसभरे बचनों को सुनकर सुनयना जी चन्द्र मुख की ओर देख कर बोलीं यह सुनकर कि 'हम विदा होने आये हैं' हृदय विदीर्ण हुआ जाता है-हा ! शोक,-अब कौन कलेऊ करने आवेगा और इन नारियों के संग कौन उपहास कर चित्त को सुख देगा-अब किसके आगे पकवान आदि पदार्थ परोसूँगी और कौन भोजन करते हुए मुझसे बातें करेगा क्या ऐसा होगा कि यह सुकुमार स्वरूप जो आज मुझको सुलभ है सो कुछ समय के पश्चात् दुर्लभ होजायगा। हे दैव तू सुख दिखाय दुःख देता है यह तेरी न्यायपरायणता नहीं वरन् कपट है। जनक महिषी के नेत्रों से झरना के समान जल गिरने लगा और गद्गद् कंठ होने से वह बोल न सकीं, तब सिद्धि रामचन्द्र के चरणों में पड़ कर प्रेमयुक्त हो रोने लगीं। उसकी यह गति देख सब स्त्रियां रोने लगीं-फिर रामचन्द्र जी ने सिद्धि को उठा कर उस के आंसुओं से भरे नेत्र अपने हाथ से पोंछे।

परन्तु उसके आंसुओं की धारा कमल पुष्पों पर पड़ने के समान कपोलों पर लगातार बहती रही, फिर गद्गद कंठ होकर वह बोली, "हम परवश अबला के हृदय में विरह वियोग के ताप के अतिरिक्त अब और कौन वस्तु रहसक्ती है कि जिनके सुखदायक आज विदा होने आये हैं

अब हम इस रूप को न देख पावैंगी, यह मन में आश्चर्य होता है जो हास परिहास आदि हम में वास किये थे वे आज से चले जांयगे–जिनके देखने से हम अपनेको गौरव-पूर्ण देखती थीं, सो उनके न रहने से वन में मारी मारी फिरती हुई घोड़ी के समान वियोग दुःख उठावैंगी–जो मन तुम सुकुमार सांवल किशोर का साथ कर स्वयं सुकुमार होगया था हाय अब वह कैसे दुःख का साथ करैगा—

जो मधुप बनकर चरण कमलों में रत रहता था वही आज आपके वियोग समाचार सुनकर शोक की गूँजैं मचा रहा है।

जो नेत्र शरीर ग्राम में अन्य इन्द्रियगणों के समक्ष अपनेको बड़ भागी समझ अभिमान करते थे वे आज पनाधा के सदृश दुःखमय जल छोड़ रहे हैं, जिन कानों ने मधुर शब्द सुने हैं वे आज स्तब्ध हो जड़वत् पड़े हैं, जब आपके दर्शनों से रोमांच होता था मानों नवल नागरियाँ एँड़ी उठाये अपने पतियों की बाट देखती हैं सो वे रोम वियोग विरह को सुन स्वेदयुक्त हो मुरझाये पड़े हैं।

फिर सिद्धि गद्गद कण्ठ होने से अधिक न बोल सकी तब रामचन्द्रजी ने अपने करकमलों से सरहज के आंसू पोंछे और अनेक प्रकार से उन्हें समझाया।

फिर हाथ जोड़े हुए सिद्धि बोली कि मेरी लली (जानकी) निपट बालक है, यद्यपि आप सेवक सुखदायक हो परन्तु मेरा स्नेह विवश करता है कि मैं उसको सुख संयुक्त रखने के लिये आपसे विनय करूँ ।

इतने में सुनयना जी रामचन्द्र के निकट आईं उनका मुख रोते २ महा अरुण कमल के समान होगया है-रामचन्द्र से बोलीं कि मेरी प्यारी लली जिसके आंख ओट होने से हृदय को उग्र पीड़ा होती थी, जिसके दूब की छड़ी भी नहीं छुवाई गई, जिसके मुख को देख प्रसन्न रहती थी, जिसका वियोग स्वप्न में भी होकर बहुत दिन तक क्लेश देता था सो वही मेरी प्राणसम प्यारी दुलारी लली, लाल सेवा करने के लिये तुम्हारे साथ जाती है इसको क्लेश न होने पावै-अभी तक हम लोगों के बीच दुलार में रही है-यदि इससे कोई अपराध होजाय तो इस मेरी विनय पर ध्यान धर क्षमा कीजियेगा । इसी प्रकार अन्य जामातों से सुनयनाजी ने निवेदन किया फिर सासु सुनयना, महाराज कुशध्वज की धर्म पत्नी व सिद्धि आदि स्त्रियों से विदा हो चारों भाई जनवासे को लौट आये ।

जानकी विदा ।

इस ओर चारों पुत्रियों के शृंगार रचने में चतुर स्त्रियां लगी हैं । उस ओर वशिष्ट जी की आज्ञा से चार पालकी जनकजी के यहां भेजी गईं । जब शृंगार आभूषणादिकों को सीता जी व अन्य राजकुमारी धारण कर चुकीं और विदा करने का समय निकट आया इतने में जानकी जी माता सुनयना को छपटाय महा रोदन करने लगीं और सुनयना जी पुत्रि स्नेह को न सम्हार सकीं, तब करुणस्वर युक्त हो गौ के बिछुरते वत्स के समान सीता को दोनों हाथों से छाती में लगाये रोदन करने लगीं ।

उनकी ऐसी दशा देख सब स्त्रियां महा रोदन करने लगीं । उस समय करुणा भी अपनी दशा में न रहकर कारुणीक होगई-जो जगत् में प्राणियों को अपने वश कर सदा शोकित करती है वही आज जानकी की विदा में स्वयम् शोकित हुई ।

फिर सीता जी सिद्धि को धाय लपटाय रोने लगीं । जानकी जी के रोदन करते हिचकी बंध गई—बोलने की सामर्थ्य न रह गई—इतने में लक्ष्मीनिधि भगिनी की विदा का समय देख भीतर आये । देखते ही जानकी दीन भाव भरे वदन युक्त भ्राता को पकड़ कर रोने लगीं और लक्ष्मी-

निधि भी रोने लगे—इन दोनों भगिनी भ्राताओं की करुणा को देख देवगण रोदन करने लगे।

जब जनक जी ने देखा कि लक्ष्मीनिधि भी भीतर ही रह गये—और विदा का मुहूर्त आने चाहता है तो वह स्वयं अन्तः भवन में गये। दृष्टि पड़ते ही सस्वर शब्द कर के सीताजी पिता को लपटाय महा रोदन करने लगीं।

जिसकी करुणा सरिता में भूप के विरागमय हृदय के कगार ढहकर गिर पड़े। और वह बड़े ऊँचे स्वर से रोदन करते २ बिदा करना भूल गये। रोती हुई जानकी जी बोलीं—पिता जिसको सदा अपने साथ बैठा कर भोजन कराते थे, जो यज्ञकुण्ड के निकट तुम्हारे पास बैठी रहती थी। जिसको बाहर से आकर घरमें न देख तत्क्षण सेवकों को भेज बुला कर अनेक पदार्थ देकर अपने सामने खवाते थे। जो छिपट कर किसी वस्तु के लिये ठुनकती थी तो उसको शीघ्र मँगा देते थे सो आज उस अपनी पुत्री को कहां भेज रहे हो हम आपके बिना कैसे जीवैंगी इतना कह कर फिर रोने लगीं।

जनक जी के नेत्र रोते २ फूल आये गद्गद कण्ठ हो कहने लगे कि हे विधाता कन्यारत्न को उत्पन्न कर उसके पीछे इतना दुःख न लगाना था आज हमारी लली अवध के मार्ग में हम लोगों से दूर हो अकेली क्या विचार करैगी

हा–आज यह घर सूना हो जायगा देखो स्फटिक मणि के खंभे झलक रहे हैं मानो लली के वियोग से हमारे समान आंसू भरे शोकित हैं–क्यों न शोकित हों इनको पकड़ कर हमारी दुलारी पुत्री खेलती थी । इसी प्रकार करुणा में मग्न जनकजी रोरोकर वचन उच्चारण कर रहे हैं । तब शतानन्दजी आकर जनकजी को समझाने लगे कि ऐसे कल्याण समय में इतने विचारवान होकर आप करुणा करते हो–कन्या की शोभा पतिगृह में रहने ही में है । जिसकी थाती आप के पास इस समय तक थी–आज वह उसको लेता है इसमें शोच किस बात का करते हो–फिर पुत्री पिता के घर आया जाया करती है थोड़े दिन में लक्ष्मीनिधि विदा करा लावैंगे । ऐसा कह कर जनकजी को बाहर ले आये फिर गणेशजी का नाम लेकर चारों पुत्रियों को पालकी में बैठाकर जनवासे को भेजा, तिनके पीछे स्त्रियें की अवली रोदन करती चली ।

जब राजा दशरथ ने देखा कि चारों प्रकार की मुक्ति रूपी बहुओं की पालकी आगई हैं तब प्रस्थान करने की सूचना सब बरातियों को दी । वे सब अपने २ बाहनों को सज कर चलने को उद्यत हुए, बाजिगण हिनहिनाते टापों से पृथ्वी को खोदने लगे—मत्तगजों के झुंड अपनी सूँड़ों को ऊपर उठाने में प्रसन्नता प्रकट करने लगे, सेवकगण

वस्तुओं का सँभार करने लगे–तब राजा ने वशिष्ठ जी तथा शतानन्द की आज्ञा प्राप्त कर बरातको चलने को आज्ञादी। तब अनेकों बाजा बजने लगे, देवगण पुष्प बरषाने लगे। चारों पालकियों को बीच में किये हुए पांच हजार रामचन्द्र जी के सखा व्यूह रचना कर अश्वों पर चढ़ कर रक्षा करते हुए चले।

फिर दशरथ जी जनकपुर वासियों से अभिवादन तथा शतानन्दजी का आशीर्वाद ग्रहण कर वशिष्ठजी के साथ चले और उनके पहुँचाने के लिये जनकजी चले। पीछे से रामचन्द्रजी भाइयों सहित जनकपुर के बालकों से और अन्य लोगों से जिनके साथ परिचय होगया था बिदा मांग कर चले। लक्ष्मीनिधि हाथ जोड़ कर बोले कि मैं आपको अपने बहनोई रूप में देखने से बड़ा अभिमान करता हूँ कि जिसका ध्यान ब्रह्मादिक करते हुए भी पार नहीं पाते वह मुझ क्षुद्र जीव का बहनोई हो। विनय यही है कि यह चरण कमलों की प्रीति मेरे हृदय में अचल रहे। रामचन्द्रजी बोले—बन्धु आज तक हम चार भ्राता थे परन्तु अब पांच भ्राता होगये प्रीति पद में आप को भरत के समान जानता हूं। फिर सब भाइयों से अभिवन्दित हो लक्ष्मीनिधि लौट गये।

इस ओर महाराज दशरथ के साथ बातें करते हुए जनकजी बहुत दूर निकल आये तब दशरथजी ने रथ को खड़ा किया व उससे उतर कर हाथ जोड़े हुए बोले-अब आप लौटिये-तब जनकजी जलकणों को नेत्रों में भरे हुए बोले-मैं दीन किसी योग्य नहीं हूं—मेरी चूकों को अपनी ओर निहार क्षमा कीजियेगा । फिर बारम्बार दशरथजी से बड़ाई पाकर विदेहजी लौटे ।

पिता समान श्वसुर को आते देख चारों भाई सहित रामचन्द्रजी वाहनों से उतर कर पृथ्वी पर खड़े होगये । तब जनकजी रामचन्द्र से बोले-आपके इस ललित रहस्य से मुझको जो सुख मिला है वह ब्रह्मसुख के समान अवर्णनीय है अब यही इच्छा है कि जैसे यह सुकुमार घनश्याम रूप शिवजी के मानस में वास करता है उसी प्रकार इस हृदय को भी आदर देवै। फिर इसके पश्चात् चारों जामातों से अभिवंदित हो जनकजी लौट आये । राजा जनक परिवार वर्ग के बीच में बैठे बातें कररहे हैं कि देखो जैसे शरीर के अवयव ठीक बने रहते हुए भी प्राण निकल जाने पर शरीर निश्चेत पड़ा रहता है बिना जानकी के आज वही हाल इस पुर तथा गृह का है ।

अयोध्या में बरात ।

उस ओर जब बरात अयोध्या के निकट पहुँची तब राजा ने चार दूतों को आगे भेजकर पुरवासियों तथा रानियों को सूचना दे दी कि बरात आ रही है । ऐसे हर्ष उपजावन समाचार को सुनकर पुरवासी अपने २ गृहों को बन्दनवार, कदली तथा पताकाओं से शोभित करने लगे और सब बारम्बार पूरब की ओर देखने लगे । इतने में आकाशमें धूल उड़ती हुई देख पड़ने लगी फिर मेघ घटाओं से बाहर निकले सूर्य्य भगवान् सदृश चक्रवर्ती महाराजा दशरथ की बरात देख पड़ी ।

पुरी में प्रवेश करते समय स्त्रियोंने चंदन, दधि, दूर्वा, लावा आदि पदार्थ बरात पर फेंक कर हर्ष प्रकट किया— फिर बरात राजपवंरि पर पहुँची इसके पश्चात् रानियां परछन करके बहुओं को भीतर लेगईं—और लौकिक वैदिक रीति करके बिवाह कृत्य को समाप्त किया ।

अयोध्या में आनन्द ।

कौशल्याजी जिस प्रकार रामचन्द्र के भोजन का प्रबन्ध रखती थीं उसी प्रकार जानकीजी को आग्रह करके भोजन खिलाती थीं और इसीतरह अन्य पुत्र बधुओं के

साथ वर्ताव करती थीं। इतने प्रेम तथा लाड़ से जानकी आदि जनक पुत्रियों को कौशल्या आदि रानियाँ रखनेलगीं कि वे सब सुनयनाजी के समान उनको जानने लगीं और दशरथजी का भी व्यवहार पुत्र बधुओं के साथ प्रशंसनीय रहता था।

एक दिन राजा कौशल्या के मंदिर में बैठे थे इतने में इन्द्र का भेजा हुआ एक मधुर फल पवन देव ने आकर राजा को दिया। राजा ने उसके आठ भाग किये-उसके भाग बांटने लगे और चारों भाइयों को चार भाग दे दिये अवशिष्ट भागों को देख कर शत्रुघ्नजी लरिकाईं बश बोले पिता आज किसके लिये इतना रख छोड़ा है। दशरथ जी बोले अब मेरे चार पुत्री अधिक हैं, यह सुन कर शत्रुघ्न जी शिर नीचे को करके मौन होगये। इतना कह कर कैकेयी के हाथ में बचे हुये चारों भागों को देकर बोले कि पुत्र बधुओं को देदो।

अवधपुर में नित्य एक नवीन उत्सव हुआ करता था-प्रजा बड़ी प्रसन्न रहती थी-किसी को किसी प्रकार की न थी। मनुष्य सदा प्रसन्न रहते थे। राजा वशिष्ठ आदि श्रेष्ठ जनों के साथ जनकजी के शील स्वभाव की प्रशंसा किया करते थे-और बिवाह के सुख का स्मरण कर हर्षित होते थे।

रामचन्द्रजी सखाओं सहित अहेर खेलने जाते थे और कनक भवन में आकर विश्राम करते थे । किंकर सेवक है बस, आगे बढ़ने में असमर्थ है ।

दो०—श्री रघुनन्दन चरित को, जो पढ़िहैं मन लाय ।
मंगल काज विवाह में, पैहैं सुख मन भाय ॥

इति बालकाण्डं समाप्तम् ।

—:o:—

विपिन काण्ड ।

युवराजत्व ।

अब रामचन्द्रजी का बहुत समय राज काज में व्यतीत होने लगा, जो कार्य्य रामचन्द्र करते थे, उनकी सराहना राजा तथा मंत्रिमंडल करता था-एक दिन राजाने विचारा कि मेरी आयु बहुत हो चुकी है, ऐसी दशा में राजा को उचित है कि राज्य का भार पुत्र को सौंप कर ईश्वराधन करै। ऐसा मन में निश्चय कर वशिष्ठादि मन्त्रियों को तथा श्रेष्ठ पुरबासियों को बुलाकर एक बृहत् सभा की और उसमें अपना मनतव्य प्रकट कर कहा, कि मैं वृद्ध हुआ हूं, अब यह सिंहासन मुझको नहीं चाहता, जैसे वृद्ध पति को बाला स्त्री नहीं चाहती सो यदि आप लोगों की सम्मति हो तो रामचन्द्र, जो सब प्रकार से धर्म तथा नीति शास्त्रों के ज्ञाता हैं उनको युवराज बनाऊँ। यह सुन कर सबों ने जय घोष किया और बोले हे राजन् ! हम लोग आपस में यही चर्चा किया करते थे, कि रामचन्द्र युवराज बनाये जावें, परन्तु प्रकट में आपका चित्त न पाकर अपना

भाव नहीं प्रकट कर सके, हे रघुवंश मणि! अब इस कार्य्य में देरी न करना चाहिये, क्योंकि वृद्धों से सुनते आये हैं कि अच्छे कामों में विघ्न करनेवाले ऐसे प्राणी होते हैं कि जिनका कार्य्य से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। फिर सभा विसर्जन हुई और रामचन्द्र के युवराज होने के समाचार नगर भर में फैल गये। पुरवासी गीत वाद्य कर रहे हैं और परस्पर बातें करते हैं कि जिस रघुवंश वट वृक्ष की छाया में रह कर हम लोग आनन्द करते हैं, वही अब अधिक सु-पल्लवित होगा। हमारा भाग्य धन्य है कि सब के प्रिय-रामचन्द्र को सिंहासन पर बैठे मुनिगणों से तथा मण्डले-श्वरों से तथा सब लोगों से अभिपेखित हुए देखेंगे—उनके मस्तक पर रोचना नील कमल पर अरुण रंग के समान शोभा को प्राप्त होगा। सभा में अधिक भीड़ होने से मनुष्यों को भीतर जाने में कठिनता होगी। और अग्नि-होत्री ब्राह्मण अपने वेद नाद से आकाश को गूँजित करेंगे। सभा विसर्जन होने के पश्चात् जब युवराज होकर राम-चन्द्र शत्रुंजय हाथी पर चढ़कर अपनी प्रजा को नगर में देखने निकलेंगे; उस ऐरावत समान गज पर श्वेत राजछत्र लगा रहेगा तथा पग से शिर तक विचित्र मणियों तथा पाटाम्बरों से आभूषित किया जायगा। नगर की स्त्रियां अपने द्वारों को ध्वजा तथा वन्दनवारादिक मांगलिक

वस्तुओं से सजाये लावा अक्षत हाथ में लिये अपने नूतन युवराज पर फेकने के हेतु प्रतीक्षा करेंगी। उस दिन राजा की सब सेना, सेवकगण तथा मण्डलेश्वरादि राजा लोग रामचन्द्र के पीछे चल कर अपने को युवराज के वशवर्ती प्रकट करेंगे। रामचन्द्र के गज के पीछे श्री दशरथजी का गज चलेगा मानों महाराजा, मनुष्यों से यह कहेंगे कि भाई अब यह रामचन्द्र तुम्हारे राजा हुए हैं ऐसे सुख को देख हम अपने को कृतकृत्य समझेंगे। ऐसी आनन्द भरी बार्ता से अयोध्या नगरी गर्भिणी स्त्री के समान शोभा को प्राप्त हो रही है। इस ओर राजा ने रामचन्द्र को बुलाकर कहा, हे पुत्र! जब मैं वृद्ध न हुआ था तब इस कोशल राज्य का प्रबन्ध जो भादों की नदी के समान बहुत दूर तक चारों ओर फैली है, बड़ी कठिनता से कर पाता था, अब मुझ वृद्ध से यह भार नहीं चलता, अब तुमको इस राज्य का भार देकर गाड़ी से छूटे हुए थके बैल के समान बैठकर विश्राम करूँगा-प्रातःकाल पुष्य नक्षत्र होगा, उसी दिन तुम्हारा अभिषेक करके बड़े भारी काम से पार होऊँगा आज तुम अपनी भार्य्या सहित व्रत करो, ऐसा कहकर राजा चले गये।

इस ओर कौशल्याजी ने सुनाकि प्रातःकाल रामचन्द्र को युवराज पदवी मिलैगी, तब वह उसके मंगलार्थ भगवान्

की पूजा करने लगीं। इतने में सन्ध्या हुई, और सूर्य्य भगवान् पश्चिम के बड़े पर्वतों से छिप गये, मानों अपने कुल के हेतु वह भविष्य वाणी कहते हैं कि इसी प्रकार कुछ दिन के लिये सूर्य्य वंश प्रकाश रहित होजायगा।

मंद मंथरा।

मंथरा नाम दासी जो कैकेयी के साथ उनके पिता के यहां से आई थी,–वह ऊंचे धौरहर पर चढ़कर देखती है कि चारों ओर मार्गों में छिड़काव हो रहा है दीपवृक्ष जगह जगह पर लगाये जा रहे हैं, नर नारी गण जो मार्गों में निकलते हैं, वे यही कहते चलते हैं कि कैसे यह रात्रि व्यतीत हो और रामचन्द्र को सिंहासनारूढ़ देखैं। यह मंथरा को सुख न दे सका, जैसे पावस की वर्षा मदार के वृक्षों को। मंथरा नीचे उतर कर मनमें यह कहने लगी कि अब रामकी धात्री बड़ी भाग्यवान् गिनी जायगी–कैकेयी के साथ राजा का अधिक प्रेम होने से वह अधिकतर यहां रहते थे उससे मेरा बड़ा गौरव था, अब एक तो वह वृद्ध हुए दूसरे राज्य से च्युत होंगे, तब सब प्रकार से हमारा मानमर्दन होगा।

अपने को तुच्छ समझते हुए सुखके पीछे दुष्टजन बड़े बड़े कामों को नष्ट कर डालते हैं। ऐसा उपाय विचारते हैं कि कैसे इस कार्य्य में विघ्न पड़े। तब उस मंथरा के

मन में यह आया, कैकेयी को राजा से रुठाय, राम को वनवास और भरत को राज्य दिलाऊँ। ऐसा निश्चय कर मर्कटी के समान मुंह लटकाये कैकेयी के निकट जाकर खड़ी हुई। कैकेयी जिसने कभी उसको ऐसी दशा में देखा न था, आश्चर्य्य करती वचन बोली—भद्रे, आज क्यों दुःखिता हो क्या रुजग्रस्त हो, अथवा किसी ने कटु वचन कहे हैं या केकय देश की सुधिकर इतनी म्लानचित्त होगई हो। वह छल कपट से भरी सुनी को अनसुनी कर वैसेही खड़ी रही। तब विशेष आग्रह करके रानी ने पूंछा कि भला बताओ तो क्या ऐसा कारण उपस्थित हुआ जो तुम मंदहासिनी को इतना क्लेश दे रहा है? तब वह नीचे को मुख किये तथा बात करने के समय ग्रीवा आगे को बढ़ाकर बोली "न हम रुजग्रस्त हैं न किसी ने कटु वाक्य ही कहे हैं और न केकय देश की सुधि आने से यह हमारी दशा हुई है, जोकुछ हर्ष तथा शोक होता है वह तुम्हारेही लिये होता है, अभी मैं धौरहर पर चढ़कर सुन आई हूं कि प्रातःकाल रामचन्द्र का अभिषेक होगा और अब वह युवराज होंगे—

मंथरा की कुटिलता।

पहले तो उनके स्वभाव की ओर देख मुझको भी बड़ी सन्नता हुई परंतु जब मैंने बिचारा तो यह निश्चय हुआ

कि, नहीं प्रभुता पाकर योग्य मनुष्य भी अपने कर्तव्य कर्मों को भूल जाते हैं देखो जिन ब्राह्मणों की कृपा से राजा नृग सुरेश हुआ उन्हीं ब्राह्मणों से अपनी पालकी उठवाई, और राजा कंस ने अपने पिता को कारागार में डाल दिया ।

अनेकों ऐसे होगये हैं कि जो प्रभुता के घटाटोप की ओट होने में सुपथ से फिसल पड़े हैं । सो हम तुमको सावधान करती हैं यह न समझना कि रामचन्द्र अभी प्रातः काल प्रथम तुम्हारे दर्शन करके फिर अपनी माता के यहां जाते हैं और बिनम्र हो सदा हाथ जोड़े खड़े रहकर तुम्हारी आज्ञा के लिये तुम्हारी भौहैं निहारा करते हैं अव वह चक्रवर्ती सार्वभौम महाराजा कहलावैंगे बड़े२ महाराजा उनको सभय प्रणाम करैंगे, वशिष्ठादिक सकुचते धर्म कार्य्य करावैंगे ये सुमंत आदि बड़े२ चतुर मंत्री वाणी को दवाये हुए बातैं करैंगे, उनसे यदि तुम वर्तमान समय के समान अपना सत्कार चाहो तो तुम्हारी भूल के अतिरिक्त हम क्या कहैं" । कैकेयी बोली कि क्या यह बात सत्य है कि प्रभातही राम का अभिषेक होगा, जो ऐसा है तो हे वाक्य-रचना में चतुर मंथरे तुझको सहस्र दासियों की स्वामिनी करके पश्चिम की ओर का गृह दूंगी, और यह जो माला इन्द्र ने देवासुर संग्राम में राजा को दी थी सो ग्रहण कर । ऐसा कहकर रानी ने गले से माला उतार धूर्तता से पूर्ण

मंथरा को अपने हाथों से पहिना दी और बोली कि जिन२ वस्तुओं की तुझे आवश्यकता हो मांगले, मैं ऐसी प्रमोद वार्ता को सुनकर हर्षित हो देने पर तत्पर हूं । ऐसा कह एक बड़े मूल्य का पट्टाम्बर लाकर उसको दिया-तब वह मंथरा जो विलार के समान घात लगाये मूषिका कैकेयी के नाश करने में लगी थी, बोली, कि यह माला और ये पट्टाम्बर जो तुमको आज कुछ भी नहीं समझ पड़ते यहां धरे हुए हैं-कभी तुम्हारे काम आवैंगे-मैं उस स्त्री के संग नहीं रहना चाहती जो प्रामाणिक बातों को भी अपनी मूर्खता से विचार न सके मनुष्य उसी को हित अनहित का ज्ञान देता है जिसके सुख दुःख में उसका हृदय उल्लासित तथा कुंठित होता है । अब मैं अपने देश को चली जाऊँगी, जिसको इसी तुम्हारे डील के सुख के निमित्त बहुत दिन हुए छोड़ दिया था । उस ओर रामाभिषेक होगा और इस ओर मेरा पयान होगा—ऐसा करने में मैं तुमको दासी के समान परतन्त्र तथा विना पति के समान अनाथा स्त्री तो न देखूंगी । हां, इतना तो स्मरण आया करैगा कि जिसको हम स्वामिनी कहती थीं वह विचारी आज एक साधारण त्यक्त स्त्री के समान किसी भांति अपने दिन काटती होगी । हे सारिकागण अब प्रभात होते ही हम चली जायँगी-मैना, तुम्हारे भी दुर्दिन आये हैं, यह मंदिर

जो शची के मंदिर के समान है हाय, इसमें अब न रहने पाओगी, अब इसमें कौशल्या आकर रहेंगी अभी मनुष्य अंगुली उठाकर जिसको महारानी कैकेयी जी का कहते थे, हा, शोक उसी को कुछ दिन में कौशल्या का कहेंगे।

ऐसा कह कर मंथरा दुर्नीति से अपनी दशा सत्य दिखाने के निमित्त आंसू गिराने लगी। तब, कैकेयी बोली अरी, क्या ये बातें सत्य होने वाली हैं? सब बातें खोल कर कह मेरा चित्त उद्विग्नता को प्राप्त हो रहा है। तब कुबरी बोली कि जब रामचन्द्र राज्य के अधिकारी हो जांयगे, तब राजा उनके दबाव के वश हो कौशल्या पर अधिक प्रेम रक्खैंगे--और जो प्रजा सांझ सवेरे द्वार पर आकर तुम दम्पति का जय घोष करती है, वह कौशल्या का करैगी, जिस पुत्र के लिये स्त्रियों ने शरीर को गला डाला, सो वह तुम्हारा पुत्र भरत या तो द्वार पर पड़े हुए पंगुल के समान तुम्हारे पिता ही के यहां जीवन व्यतीत करैगा-कदाचित् यहां आया तो राम नीच सेवा करावैंगे-और उसमें किंचित मात्र अपराध देख पावैंगे तो यावज्जीवन तुम्हारे लाल को बन्दीगृह में छोड़ तुमको अनेक दुःख देंगे--मेरा जो कुछ कर्तव्य था मैंने कहा--अब तुमको जो रुचै सो करो।

कैकेयी बोली-तब मुझ दुखिया को कोई ऐसा यत्न बता जिससे सन्मुख आई हुई इस महा विपत्ति से पार होऊं। तब दुर्मति मंथरा मन में प्रसन्न होकर बोली हां, जब हम सब प्रकार से तुम्हारे सुख सम्पादन में लगी हैं तो यत्न क्यों न बतावेंगी, सुनो, जब तुम राजा के साथ देवासुर संग्राम में गई थीं और राजा के रथ का पहिया गिरने ही को था-इतने में तुम अपनी अंगुली को धुरे के बीच में डालकर पहिया को रोके रहीं जब संग्राम का अंत हुआ और राजा ने फिरकर तुम्हारी ओर देखा कि धुरे में अंगुली लगाये हुए हो और उस अंगुली से रक्त बह रहा है तब वह बोले प्राणाधारे, इस कार्य्य को तुमने वैसाही किया है जैसा कि वीरों की स्त्रियां करती हैं हम प्रसन्न हैं वर मांग लो। तब तुम बोलीं कि हमारी धरोहर रखे रहो सो आज उसके उपभोग करने का समय आया है, एक तो यह मांगो कि रामचन्द्र चौदह वर्ष के लिये वन को जांय। दूसरे भरत राजा हों। भरत चतुर हैं, चौदह वर्ष के भीतर प्रजा तथा अन्य राजों को अपने वश करलेंगे तब भरत ही राजा बने रहेंगे-इस समय जो विचार कौशल्या के हृदय में तुम्हारे लिये हो रहे हैं तब वे उलटे उन्हीं पर पड़ेंगे--

कोपभवन में कैकेयी।

मन्थरा की ऐसी बातों के सुनने के पश्चात् कैकेयी ने अपने विशाल मंदिर की विचित्र वस्तुओं को जहां तहां फेंक दिया और उस प्रकाशित गृह को झरोखों तथा द्वारों के बन्द करने से तिमिरमय कर दिया—साथही अपने हृदय को भी अन्धकारमय बना लिया—अन्य दिनों की भांति जब राजा रात्रि को कैकेयी के मंदिर में आये तो देखते हैं कि आंगन में इधर उधर वस्तुएँ पड़ी हैं और वहां बुलाने पर भी कोई नहीं बोलता, अन्तःभवन का केवल एक द्वार कैकेयी बधिकिनी ने दशरथ पक्षीराज के आने के लिये रख छोड़ा है। जब राजा उस द्वार होकर भीतर गये तो अन्धकार के अतिरिक्त अन्य कुछ न दिखाई पड़ा जब दो चार बार राजा के बुलाने परभी श्मशान भूमिके समान उस स्थान पर किसी का शब्द न सुन पड़ा, तब मन्दमति कैकेयी राजा के जताने के लिये पृथ्वी में पड़ी हुई घोड़ी के समान पांव पटकती तथा बल्मीक में बैठी हुई सर्पिणी के समान ऊर्ध्वश्वास छोड़ने लगी। तब राजा निकट जाकर देखते हैं कि उन की पटरानी जिसका सहज स्वभाव था और जो मृदुल भाषिणी थी तथा जो राजा की सेवा विपुल सेवकगणों के रहते हुए भी अपने ही हाथों से करती थी,

जिसको कभी किसी प्रकार का सौतिया डाह नहीं हुआ वरन् कौशल्या तथा सुमित्रा आदि के साथ सच्चा स्नेह रखती थी, उसको राजा देखते हैं कि एक मलिन वस्त्र पहिरे है जो कठिनता से अंग के उत्तरीय भाग को ढकसक्ता है, केश विथरे हुए हैं और नेत्रों को रो रो कर अरुण किये हुए है, भूमि में हाथ पैर पटकती मुख नीचे भूमि में रक्खे हुए रो रही है।

कैकेयी के यहां राजा दशरथ।

तब राजा विस्मित होकर पूंछने लगे कि तुम्हारी ऐसी विकराल दशा होने का क्या कारण है। फिर कैकेयी के हाथ को पकड़ कर राजा उठाने लगे, परन्तु हित अनहित के विचार करने में पंगु बुद्धि रखने वाली कैकेयी राजा के हाथ को झिटक कर भूमि में लोटती रही। फिर राजा रानी को इस प्रकार मनाने लगे। प्रिये, हम जानते हैं कि आज हमारा आना मध्यीन्ह में नहीं हुआ इसी से तुम रुष्ट होगई हो अच्छा, हम क्षमा मांगते हैं-उठो, हम तुम्हारे प्रिय भुजा पकड़े हुए मना रहे हैं हमारे आने की आहट जब तुम सुनती थीं तो अन्तःभवन से आगे होकर हमारे चरणों में अपना मस्तक धरकर हँसती हुई हमारा हाथ पकड़े हुए लेजाकर आसन पर बैठाल खड़ी रहती थीं, सो देखो आज

तुम पड़ी हो, हम तुम्हारे पगों के पास बैठे मना रहे हैं, उठो, हे प्रिये उठो हम जानते हैं कि तुम मनमें हँसती होगी- कभी यह कौतुक तुमने नहीं किया था, चलो आज यह भी होचुका अब तुम्हारे रोप की सीमा को भी जान चुके हम स्वतः कभी तुम पर क्रोध नहीं कर सके हैं तुम्हारा वदन रूपी कमल जो जलका निवासी है इस पर हमारी क्रोधाग्नि पहुँच ही नहीं सकी, हे ममचित्तचोर ललने, उठो। इसी प्रकार राजा कैकेयी को बड़ी देर तक मनाते रहे-तब उस अशुभ वेषधारिणी कैकेयी नें यों विप भरे वाक्य उगलना आरम्भ किया।

वरदान प्राप्त कैकेयी ।

हे राजन्! मनुष्य का चित्त दुःख सुख दो खम्भों में वानर के समान चढ़ा उतरा करता है जिस दुःख को हमने सुनने के अतिरिक्त आज तक देखा न था वह आज विकट रूप में हो हम पर आक्रमण करता है, सत्य है कि जो प्राणी बहुत काल तक सुख भोग करता है वह एक दिन बड़े दुःख में जिसके चारों ओर कष्ट ही है जाकर गिरता है। राजा बोले भला बताओ वह कौन कारण है जो तुम्हारे मनको उग्र पीड़ा पहुँचा रहा है इस तुम्हारे शोक के दूर करने के निमित्त तुमको वरदान मांगने का अधिकार देते हैं मांगलो।

यह सुनकर नीचे को मुख किये हुए कैकेयी बोली "तुम सदा इसी प्रकार कहा करते हो जो दो वरदान तुमने देवासुर संग्राम में हमको दिये थे वे अभी पड़े हैं, भला वेही देदो" । राजा बोले हमको दोष व्यर्थ देती हो, तुमने धरोहर कहकर नहीं लिया, अस्तु उस धरोहर के देने के लिये हम आज भी तत्पर हैं फिर ऐसे समय में जबकि प्रभात हो तुम्हारे प्राणप्रिय राम का अभिषेक होगा—

पिछला वाक्य सुनकर कैकेयी ऐसी दुखित हुई जैसे मछली पहले मांस को खाकर फिर कटिया से बेधी जाकर दुःखित होती है । तब राजा फिर बोले कि हम कोई ऐसा पदार्थ तीनों लोक में नहीं देखते जो तुम्हारे पास न हो, जो वस्तुयें शची को दुर्लभ हैं वे तुमको सुलभ हैं फिर तुम किन वस्तुओं को मांगकर अपनी धरोहर व्यय किया चाहती हो अच्छा मांगलो । ऐसा सुनकर कैकेयी हिमाग्नि के समान हँसती हुई राजा रूपी सुपल्लवित वृक्ष को अपने वचन ज्वाल से सुखाने के लिये तत्पर हुई ।

दशरथ की मूर्च्छा ।

हे राजन् ! मनुष्य तभी तक अपने निकटस्थों पर विश्वास रखता है जब तक वह समझता है कि ये हमारे हितू हैं और उसको जब यह ज्ञात हुआ कि ये वेगवान् नदी

के समान भीतर ही भीतर कगार रूपी जड़ काटते हैं तो वह भी सचेत होकर अपना कर्त्तव्य कर्म करता है इसमें चाहे तुमको अच्छा लगै अथवा न लगै-हम अपने ऊपर आई हुई विपत्ति से अपनी रक्षा अवश्य करैंगी। यों कहती हुई बोली कि रामचन्द्र तो १४ वर्ष तक मुनि वेषधारी हो वन में वास करें और भरत राजा हों। ऐसा कहकर चुप होरही। दशरथजी जो कैकेयी की भुजा पकड़े बैठे थे इन दोनों बातों के प्रचंड पवन के लगने से टूटे हुये वृक्ष के समान गिर पड़े। बड़ी देर के पश्चात् मूर्च्छा का अन्त हुआ। वह मृत्यु समान कैकेयी राजा के निकट बैठी अपने वाक्य अस्त्रों से उनके अंगों से प्राण निकाल रही है-राजा के मुख में फेना बहरहा है, आँसुओंसे नेत्र भरे हैं बृद्धशरीर होनेसे तथा जोरसे गिर पड़ने के कारण मस्तक फूटगया है उससे रक्त वह रहा है। जिन राम के प्रतिकूल बातां ही सुनते दशरथजी की ऐसी दशा होगई है, उन्ही के अभिषेक में बाधा न डालने के लिये राजा धीरज धर कर उठे-और कैकेयी से बोले।

राजा का कैकेयी को समझाना।

तुझको किसने यह दुर्मति दी है, अरी, तू यह नहीं समझती कि मेरे प्राण इस शरीर में न रहकर सदा रामही के संग लगे फिरते हैं फिर तुझको यह ज्ञात नहीं है कि

अपने धर्म तथा नीति परायण स्वभाव से राज्य के नर नारियों को रामचन्द्र प्राणसम प्रिय हैं—रामचन्द्र के वन जाने से ये सब भी वहां चले जांयगे—जैसे प्रलय के पश्चात् जल स्थल तो थल और थलस्थल जल होजाते हैं उसी प्रकार राम के वन में बसने से नगर उजड़ कर वन और वन नगर होजायगा। हे विश्वासघातिनी! तू अभी मान जा, अपने चिन्तित कार्य्य में तू कृतकार्य्य न होसकैगी—अरी, हम कौनसा मुख मनुष्यों को तथा वशिष्ठ तथा सुमंत आदि मंत्रियों को विशेषकर अपने प्राणाधार पुत्र राम को दिखावेंगे, जिसको मैंने शम दम करते हुए रात्रि में निरशन व्रत करने को कहा है। देख, अर्धरात्रि हुई परन्तु रामाभिषेक के उत्सव को मनाते बालक गण अनेकों लीला करते शब्द कर रहे हैं। सुन, ये अरुन्धती तथा वशिष्ठजी अपने ऊंचे धौरहर पर चढ़े राम के कल्याण हेतु आकाशस्थित चन्द्रमा की स्तुति कर रहे हैं वह बड़े ऊंचे स्वर का घोष सुन, ये ब्राह्मण सस्वर सामवेद को पढ़ते श्री क्षीरशायी भगवान् को प्रसन्न कर रहे हैं, ये मृदंग आदि बाजों की ध्वनि और अनेक कोकिलबयनियों के शब्द जो यहाँ तक पहुँचकर मेरे कानों द्वारा प्रवेश कर तेरे द्वारा व्यथित मेरे हृदय को पीड़ा दे रहे हैं। राजा ने कैकेयी की कुटिल मति पलटने के लिये अनेकों यत्न किये—परन्तु सब व्यर्थ हुए धर्म तथा नीति

शास्त्रों में चतुर नरेश एक साधारण बुद्धि रखने वाली स्त्री के हृदयस्थित भाव को न हटा सके जैसे जल के भीतर चिकनी मिट्टीपर पग गड़ाते हुए भी चलो तिसपर भी पग फिसल जाता है वैसेही स्त्रियों को चाहे जितना समझाओ वे अपनी विचारी हुई बातही को करती हैं।

दशरथ विलाप।

राजा ने देखा कि जिसको हम प्राणप्रिया कह कर पुकारते थे, वह वास्तव में धरी हुई सर्पिणी के समान हमारी मृत्यु है। फिर राजा विचारने लगे कि देखो यह शरीर तो निश्चय नष्ट होगा-परन्तु जिस सुख के निमित्त ये नेत्र इस रात्रिरूपी पिंजड़े में फरफरा रहे थे और शास्त्र तथा लोक की मर्य्यादा रूपी रस्सी में बँधी हुई बुद्धि प्रातःकाल अपना उद्धार समझती थी,—सो क्या कहूँ, कुछ न हुआ-बीचही में मेरी मनोरथरूपी नौका बूड़गई हा राम! जो तुम अपनी भार्य्या के साथ मन में लालसा किये हुए तथा मुझ में प्रेम रक्खे हुए अपने नियम का पालन कर रहे होगे-सो प्रातः काल अपने उमड़ते हुए सुख सरोवर को मुझ ग्रीष्म को पाय सुखा डालोगे हा, हन्त, हे कौशल्या तुम बड़ी गम्भीर सदाचारिणी तथा हमको सदा उचित उपदेश देने वाली थीं-अब तुम मन में यह अवश्य विचारोगी कि मैंने यह

कुकाण्ड रचा है। तुम न जान सकोगी कि कृत्रिम हथिनी के मोह में पड़ मैं बड़े अथाह गढ़े में गिर पड़ा हूँ जिससे निकलही नहीं सक्ता। वशिष्ठजी, आप भी यह निश्चय करोगे कि आप लोगों से छल नीति कर मैंने स्वयं ऐसा कर्म किया है-हे सुमन्त आदि मन्त्रीगण आज तुम भी यह कहोगे कि राजाओं की गति बड़ी वक्र होती है। ये जो राजा लोग अभिषेक में निमंत्रित होकर बड़ी २ दूर से आये हुये हैं वे जब सुनेंगे तो मुझको धिक्कारेंगे कि स्त्री के वश हो मैंने ऐसा अनर्थ किया। हा शोक, हा, मैं पथिक मार्गही में मारा गया-अब यह संसार छूटा, जिस पृथ्वी में बड़े २ कर्म किये वह छूटी, राम तथा प्यारी पुत्रवधू सीता भी छूटी, अरे कर्मों तुम कहाँ ले जावोगे। ऐसा कहकर राजा मूर्छित हो गये।

कोपभवन में सुमन्तगमन।

इस ओर रात्रि भर लोग गाते बजाते रहे, पिछले पहर में नींद की कुछ झपकी आगई थी, सो नगारों तथा अनेक बाजों के शब्द से जागकर नींद की निंदा करने लगे। सुमन्त ने देखा कि आज राजा को विशेष सबेरे उठना चाहिये, सो अभी तक नहीं उठे। फिर राजा के विश्वास पात्र मन्त्री सुमन्त ने अन्तःभवन में प्रवेश किया और वहाँ

देखते क्या हैं कि राजा शव के समान पड़े हैं और कैकेयी पिशाचिनी समान बैठी है । विस्मित होकर सुमन्तजी ने कैकेयी से कारण पूंछा । वह दुष्ट स्त्रियों की नायिका न बोली । तब मन्त्री ने राजा के निकट जाय प्रणाम कर अपना नाम बताया ।

परमप्रिय मन्त्री का आगमन सुनकर राजा मन्त्री के गले में हाथ डाल कर बड़े ऊँचे स्वर से रोदन करने लगे-जिसको सुन गृह के पक्षी भी रोने लगे-परन्तु वज्र हृदय कैकेयी को राजा का महा दीन करुण विलाप न स्पर्श करसका-जैसे गौ का बम्बाना कसाई को । फिर रोते २ राजा सुमन्त से बोले "राम को बुलालाओ" मन्त्री ने जाना कि इस कैकेयी ने कुछ दुष्कर्म किया है जो सम्भवतः अभिषेक से सम्बन्ध रखता है ।

सुमन्त रामचन्द्र के मन्दिर में पहुँच कर द्वारपालों से बोले कि कुँवरजी से जाकर कहो कि सुमन्त द्वार पर खड़े आप के दर्शन करना चाहते हैं । अमात्य को द्वार पर खड़ा सुन रामचन्द्रजी शीघ्रही आये तब सुमन्तजी बोले कि आप को राजा कैकेयी के मन्दिर में शीघ्रही देखना चाहते हैं । रामचन्द्र मन्त्री को पैदल आया जान आप भी पैदल ही पिता के पास चले । मार्गों में नर नारी गणों के समूह खड़े परस्पर अभिषेक के उत्सव की बातें कररहे थे, सो रामचन्द्र

तथा मन्त्री को अशोभित दशा में जाते देख एकाएक शोकित हो उठे ।

दशरथ के सन्मुख रामचन्द्र ।

सुमन्तजी रामचन्द्र को लेकर दशरथजी के पास पहुँचे और बोले नरनाथ, कुँवरजी, आप के चरणों के निकट खड़े हैं । ऐसे मन्त्री के वचन सुन कर राम के प्रेम बल से राजा उठ बैठे-फिर देखा कि रामचन्द्र सम्मुख प्रणाम कर रहे हैं तब राजा दोनों हाथों को लपकाकर रामचन्द्र को छाती में लगाकर मेघ के सदृश आंसुओं की धारा छोड़ने लगे । जैसे २ कैकेयी के वरदानों की गूँज हृदय में उठती है वैसे २ दशरथजी अधिक विह्वल हो राम को हृदय में लगाये लेते हैं । इतने में फिर मूर्छित हो कर गिरपड़े ।

कैकेयी वचन रामचन्द्र प्रति ।

रामचन्द्रजी ने पत्थर की प्रतिमूर्ति के समान बैठी कैकेयी से पूँछा अब पिता के इतने बड़े भारी दुःख का क्या कारण है ? और आप भी इस दशा को क्यों प्राप्त हो ? । तब वह कैकेयी जिसकी कठोर वाणी को सुन कर कठोरता भी सहम गई बोली-राम, जिस प्रकार मनुष्य, अन्य लोगों से अपना काम कराने में सुखी होते हैं वैसेही

उसके परिवर्तन में उसकी मंजूरी देने में हिचकिचाते हैं वही हाल तुम्हारे पिता का है, किसी समय मैंने इनका एक बड़ा भारी कार्य्य किया था, उसपर इन्हों ने दो वर-दान देने को कहा-सो उन दोनों वरदानों के मांगने में मैंने तुम्हारा चौदह वर्ष के लिये वन जाना और भरत के लिये राज्य मांगा है, उसे सुन कर ये मचले पड़े हैं-न यही कहैं कि हम देंगे और न यही कहैं कि न देंगे । यदि तुमको अपने पिता की बात सत्य करनी हो तो तुम आजही वन को चले जाओ । ऐसे वचनों को सुनकर रामचन्द्रजी बोले इस इतने कार्य्य के लिये पिताजी को शोक करने का क्या अवसर था । अच्छा मैं अभी शीघ्रही वनजाने के लिये लौट कर आता हूँ । ऐसा कह सदा एक रस रहने वाले रामचन्द्रजी मंद २ मुसकाते अपनी माताके मंदिर को गये ।

जननी के मंदिर में राम ।

यहां कौशल्याजी अभिषेक की सामग्री प्रस्तुत कररही थीं-अपने प्रिय पुत्रको आते देख सब काम छोड़ निकट जाय अंचल से मुख पोंछ, चुम्बन कर पीठ पर हाथ फेरती बोलीं, लाल, मुनिनाथ ने किस लग्नमें सिंहासनारूढ़ होनेको आज्ञा दी है-अहो, वह दिन आजही है कि अपने लाल को राज सिंहासन पर बैठे राजछत्र शिर पर धरे देखूँगी ।

तब रामचन्द्रजी अपनी मंद मुसकान से महा कठोर वार्ता को हरुई करते बोले—हे जननी पिताजी ने तो चौदह वर्ष के लिये वन का राज्य दिया है। यह सुन खड़े हुए वृक्ष के समान माता सूख गई। फिर धीरज धर कर बोली कि ऐसा होने का क्या कारण है। तब वशिष्ठजी के पुत्र, जो रामचन्द्र के साथ आये थे उन्होंने सब वृत्तान्त वर्णन किया—जो सुन कर शिर पर हाथ धरे नीचे को मुख किये कौशल्या जी शोक मुद्रा में मग्न हो कहने लगीं।

शोकित कौशल्या।

जिसने कभी मुख से अपने सुख के लिये शब्द तक भी नहीं निकाला जो सदा साधारण स्त्रियों की तरह रह कर अपने पुत्र को देख जीवन सुफल समझती थी—सो वह मैं गरीबिनी अपनी राह चली जाती हुई क्यों सताई गई? मेरे जीवन का अंत आगया—हे दैव, तू तो कर्म को प्रधान बतलाता है सो आज मुझे विपरीत देख पड़ता है। ऐसा कह कर विलाप करने लगीं।

माता के सम्मुख दम्पति।

माता के करुणा रोदन को सुन कर सीताजी तुरंत दौड़ी आईं और आकर यह सब समाचार सुना—सासु के

समीप आंसुओं से पूर्ण कमल नेत्र युक्त मुख नीचे के। किये सीताजी शोकाकुल हो रही हैं । तब रामचन्द्र बोले, अम्ब, बहुत शीघ्र बन जाने की आज्ञा है इस से मैं इन जनकतनया को उपदेश देता हूँ कि जबतक मैं वन से न लौट कर आऊँ तबतक अपने को साधारण स्त्री समझें, और तुम्हारी सेवा करें, । भरत राजा होंगे उनकी स्त्री रानी होगी सो उसको देख कर ईर्षा न करें । और अपना दुख सुख किसी पर न प्रकट करें, इतिहासों से जाना जाता है कि राजों के तथा उनके पुत्रों को इसी प्रकार अनेक कष्ट सहन करने पड़ते हैं फिर अवधि केवल चौदह वर्ष की है उसको व्यतीत होते कितने दिन लगते हैं ।

जब रामचन्द्र जी चुप होगये—तब जानकी जी बोलीं कि माता के समक्ष बोलना अनुचित है परंतु कुसमय आ पड़ा है बोलने में विवश हूँ, हे आर्य्य, आपकी हम दासी हैं, हमारी शोभा आपकी आज्ञा पालन करने ही में है, आज्ञा के पालन करने में संकोच नहीं है परन्तु ऐसा करने में यही देखती हूँ कि यह शरीर जिसके द्वारा चरण कमलों की सेवा कर सक्ती हूँ, न रहेगा, तो सेवा न कर सकूंगी—इसी लालच वश हो विनय करती हूं कि मुझको अपने साथ ही लेते चलिये फिर जो कुछ स्त्रियों का संबंध श्वशुर कुल में होता है उस का एक मात्र कारण पतिही है

जहां आप नहीं हैं वहां मैं कैसे रह सकी हूं—फिर मेरे माता पिता ने केवल आपकी सेवा करने को मुझे सौंपा है, तो मुझको क्यों पृथक करते हो ? रहा यह कि स्त्रियों को संग रखने में बड़े २ विघ्न पड़ते हैं सो आप मृगराज के साथ मुझको वन में कोई भय नहीं है आपके चरण कमलों के देखने से वनके दुःखों का माल न कर सकूंगी—यदि मुझ दुःखित अबला की विनय न सुनोगे तो इस शरीर को न रख कर आपके साथ चलूंगी। ऐसा कह कर चरणों में पड़ रोने लगी। रामचन्द्र ने विचारा कि अब वैदेही को साथ ले चलना ही उचित है, ऐसा विचार कर बोले कि अच्छा चलने को उद्यत हो जाव। यह सुन कर वैदेही जीव दान के समान सुख पाकर प्रसन्न हुई।

वन चलने को उद्यत लक्ष्मण।

इतने में लक्ष्मणजी आये। उनका हृदय दुःख से धक-धकाय रहा था और मुख सूख गया था, क्षुद्ध शब्द नहीं निकलते थे। वह नेत्रों में आंसू भरे हुए बोले—आर्य मुझको वन अवश्य ले चलिये—नहीं तो बिना माता के वत्स के समान रो २ कर मर जाऊँगा। मैं बहुत दुखी हूँ, मुझसे बात करते नहीं बनता। ऐसा कह चरणों में गिर पड़े—रामचन्द्र ने लक्ष्मण के ऐसे प्रेम को देख साथ चलने की

आज्ञा देदी-फिर सीता सहित दोनों भाई पिता के यहाँ चले । इतने में कौशल्याजी रोदन करती हुई कहने लगीं:—

शार्दूल विक्रीड़ित छन्द ।

जीवों को बसना भला न लगता रात्री सनासन्न में ।
आवैं भागि, नहीं जलाशय जहाँ दारूण कान्तार में ॥
सिंहौ ताप सहैं न कोटर विषे, भागैं भरे स्वेद में ।
हा २ भाग्य पठावही सुवन को, क्यों? घोर आरण्य में ॥

पिता के साथ राम की अंतिम भेंट ।

तीनों जन पिता के निकट पहुँचे । देखते हैं कि वशिष्ठ अरुन्धती और अन्य भद्रपुरुष राजा के समीप बैठे शोक में मग्न हैं । इस ओर रामचन्द्र के वनगमन के समाचार सुन कर एक वृद्धा स्त्री नगर में रो रोकर ऐसा कहती है ।

सवैया ।

गावहु ना अब नारि सुरीलि धरो नहिं मंगल द्रव्य सुद्वारे ।
चन्दनवार पताक जिते सब दूरि करो उत्साह वृथारे ॥
बन्द करो वर द्वार सबै दुख आय गयो न डरो मम वारे ।
किंकर राम चले वन को अब काज कहा बिन प्राण अधारे ॥

उधर रामचन्द्रजी पिता के समीप जाकर मधुर शब्दों में बोले-पिता, इस इतनी तुच्छ बात के लिये आप इतना

क्यों व्याकुल होते हैं ? हम को वन में अभय समझिये, रहा यह कि इतने दिनों तक भेंट न होगी सो यदि आप उदार तथा श्रेष्ठ के पास कोई मुनि विश्वामित्र की तरह आता अथवा कोई मंडलेश्वर आपकी सहायता माँगते हुए हमें बुलाता तो क्या उसके यहाँ न जाना पड़ता ? इस कारण हे पिता इसमें शोक किस बात का है ? रही अभिषेक की बात, सो जिस समय आपने प्रसन्न होकर कहा था कि प्रातःकाल तुमको युवराज पदवी दीजायगी—उसी समय आपकी प्रसन्नता से अभिषिक्त होचुका हूँ, मैं वन जाने के लिये खड़ा हूँ और वैदेही तथा लक्ष्मण भी बन जाने के लिये तय्यार हैं—अस्तु हम सब को आशीर्बाद दीजिये मैं आप के चरणों में चौदह वर्ष के लिये मस्तक धरता हूँ। हे वैदेहि तथा लखण पिता जी को प्रणाम करो। इतने में दशरथजी ने बड़े बल से नेत्र उघार कर देखा कि प्राणप्रिय राम खड़े हैं। तब दोनों भुजा ऊपर को उठाय उठाने का संकेत किया। लोग जो निकट बैठे थे उन्होंने राजा को पकड़कर बैठाया। जैसे छटपटाती मछली जल को पाय सावधान होजाती है, वैसे ही राम के देखने से राजा की दशा हुई।

तब निकट बैठे हुए राम को छाती में लगाया वह रोदन करने लगे। विलाप करते २ राजा के मुख से शब्द नहीं निकलता था—नेत्रों से जो लगातार आँसुओं की धारा

वह रही थी वही राजा के दुःख को प्रकट करती थी फिर धीर धर कर राजा बोले–अरे मैं वीर सोता हुआ मारा गया, जो अपने वांछित स्थान पर पहुँचने को था–वह पीछे से घुटनों के बल गिरा दिया गया है प्राण ! तुम्हारे प्राण तो वृद्ध राजा की नाईं बन को जा रहे हैं । तुम यहाँ क्या करोगे–चलो उठो । ऐसा कहतेहुए फिर विलाप करने लगे—

बसंततिलका ।

प्राणों चलो अब न देर लगाव भीते ।
हा, राम जात तुम जो न चले दुखीते ॥
गावैं तुम्हारि सब लोग कृतघ्न गीते ।
हा, हन्त, मोह अटवी बिनराम जीते ॥

राजा ने निकट बैठे हुए वशिष्ठजी की ओर निहारा । राजा को अपनी ओर दृष्टि करते देख वशिष्ठजी निकट जाकर सन्मुख बैठे । दशरथजी बोले गुरो हम बड़े भारी सागर के बीच बूड़े हैं । अब न निकल सकैंगे, क्या राम मुझ से बिलग होने वाले हैं; जो सदा राजकाज में मुझ को सहायता देते हुए प्रसन्न रखते थे सो क्या वह बन को जाना चाहते हैं ? जो अपने सखाओं का साथ कभी नहीं छोड़ते थे, वह अकेले साँड़ बैल की नाईं बन को जाना चाहते हैं । जो कौशल्या के हाथ से वस्तु लेकर सखाओं को देते थे और हँसते हुए फिर माँगते थे सो वह मातुसुख-

दाता वन को जाना चाहते हैं? अरे, जो सन्ध्याही से निरशन व्रत धारण किये हैं सो राम एक दरिद्री के समान भूखे वन को जाते हैं। इस तरह विलाप करते २ राजा के कण्ठावरोध हो आया। फिर रामचन्द्रजी से बोले जैसे कोई मादक वस्तु खाये हो अथवा उन्मादित हो तथा क्रोध में हो, बुद्धिमान् लोग ऐसे पुरुषों की बातों को प्रामाणिक नहीं गिनते सो मैं इस मृत्यु रूपी कैकेयी से छला गया— मेरी बातों को तुम न मानो, फिर प्रथम मैं अभिषेक करने को कह चुका हूँ, तुम उसी व्रत पर अटल रहो मुझ अधम का तिरस्कार करके राज्य करो। तब रामचन्द्रजी बोले— प्रेमवश होकर आप ऐसा कुछ न कहिये। अब मुझे वन को जाने दीजिये।

शिखरिणी।

हमैं है आनन्दा, वन वनन घूमैं रुचि जहाँ।
कहाँ. हैं चीरा, धारण करहुँ त्यागौं पट यहाँ॥
सखा मीता भाई, क्षमहुँ मिलिहौं आइ फिरि कै।
पिता ना शोचौ, जात हम वन आनन्द भरिकै॥

वनगमन।

इतना कहकर रामचन्द्रजी ने पिता को प्रणाम किया— उनको देख सीताजी तथा लक्ष्मणजी ने भी प्रणाम किया

तब दशरथजी बड़े जोर से चिल्ला उठे अरे राम, मैं इस पापिनी के घर मर जाऊँगा—मुझको भी लेते चलो। जो लोग वहां बैठे थे महारोदन करते रामचन्द्र के पीछे हो लिये। रामचन्द्र मंदिर से बाहर निकल कर खड़े हुए और बड़े गंभीर शब्दों में बोले "वर्त्तमान समय को देख कर मैं आप को धैर्य्य का सहारा लेने के लिये निवेदन करता हूँ"। निकट खड़े हुए सखागण गद्गदकण्ठ हो हाथ जोड़े बोले—

शिखरिणी ।

सदा घूमे साथे, अब बन न घूमैं धिक महाँ ।
न जानैं भ्राता मातु पितु घरनी हैं कहाँ ॥
कहाँ जावैं मीता, जु बन न चलैं साथ तुम्हरे ।
सहारा ना कोई सहि सकत ना पीर जियरे ॥

फिर रामचन्द्रजी ने विनीत मधुर शब्दों में अपने मित्रों को समझाया।

उस ओर कौशल्याजी सुमित्रा को साथ लिये राजा का हाथ पकड़े उनको अपने मन्दिर ले गईं। फिर राजा सुमन्त को बुलाकर बोले, कि हे चतुर मन्त्रिवर, मुझ जलमें डूबते हुए को बचाइये। आप रथ ले जाकर राम को बन घुमाकर लौटा लाइये, यदि सत्यशील राम न मानैं तो सरयू के उत्तरवाले बन में अवधि व्यतीत करने का निवेदन करियेगा। स्वामी की आज्ञा पाकर रोदन करतेहुए सुमन्त

ने स्वयं अपने हाथों से घोड़ों को रथ में जोता और लेजा-कर राम के सन्मुख खड़ा करके बोले, महाराज ने आज्ञा दी है कि आप यहाँ से रथ पर चढ़कर पयान करें। पिता की ऐसी आज्ञा सुनकर रामचन्द्र बहुत अच्छा ऐसा कह निकट खड़े हुए असंख्य पुरवासियों को समझाने लगे। इतने में बाल, वृद्ध, शिशु, युवा, चारों ओर से रामको घेर कर रोने लगे। वह दुःख लेखनी द्वारा वर्णन नहीं किया जासक्ता। जैसे २ रामचन्द्र पुरवासियों को समझाते हैं वैसे २ वे वियोग की सुधिकर अधिक व्याकुल होते हैं। उनकी दशा देखकर धीरधुरीण राम के नेत्र जलकणों को न सम्हार सके। फिर सुमन्तजी को चलने का संकेत करके सीता लपण सहित रथ में बैठ कर वनको पयान किया। तब सब लोग रोते हुए पृथ्वी में गिर पड़े, फिर उठकर रथ रोकने के लिये सुमन्त २ पुकारते चले। परन्तु सुमन्त जीने रथ को इतने वेग से हाँका कि वह बहुत दूर निकल गया—वाकों के वेगसे उड़ी हुई धूरि भी बहुत दूर आकाश में चली गई।

तमसा तट पर राम तथा पुरवासी।

इस ओर राम संध्या होते २ तमसा नदी के किनारे पहुँचे जिसके झाबर में अनेकों पशु चर रहे हैं—जिसके दोनों

तट हरित वस्त्र के समान दूर्वा से पूर्ण हैं-जिसका जल मन्द २ बह रहा है, ऐसी पथिकश्रमहारी सरिता के किनारे सहित मन्त्री के रामचन्द्रजी रथ से उतर कर घूमने लगे। इतने में देखा कि रथ की लीकको हाँपते काँपते वृद्ध, युवा, नर नारी गण अयोध्या से चले आ रहे हैं-उनमें से कोई चिल्ला कर बोला, देखो वह रथ की ध्वजा देख पड़ती है। तब एक ब्राह्मण ने जिसके दांत वृद्धावस्था ने हर लिये थे बड़े करुण स्वर से पुकारा-"राम, यदि उस स्थान से आगे बढ़ते हो तो नेक विलम्ब करो हम तुम्हारे ही लिये दौड़े चले आ रहे हैं"। जब रामचन्द्र की दृष्टि उनकी ओर पड़ी तो आगे जाकर मिले; और हाथ जोड़े हुए बोले कि आप लोगों ने इतना कष्ट क्यों सहा। तब पुरवासी रोते हुए गद्गद कण्ठ हो बोले-हे राम, मनुष्य निज जीवन को देखता हुआ अन्य सुखों को देखता है-बिना तुम्हारे अयोध्या में हम जीवित नहीं रह सक्ते। इतने में एक सामवेदी ब्राह्मण बोला—

सवैया।

न फेरन आयन हैं तुम को न चहैं प्रणतोरि कछू करवायो।
लला ललनागण वीर तपी नरबृंद खड़े सब शोक बढ़ायो॥
करैं विनती इतनी रघुनाथ कहौ जनि लौटनको बन भायो।
बनै नहिं जात अकेल महावन किंकर साथ चलैं हरखायो॥

उस ब्राह्मणकी वात को दुहराते हुए सव लोग कहने लगे कि हम वन में आप के साथ रहते हुए १४ वर्ष काट डालेंगे-सो चौदह वर्ष ही नहीं, हम जीवन पर्य्यंत वन में रहने का संकल्प किये हुए हैं, देखो यह वालक जिसके बुआरे केश कपोलों पर छिटक रहे हैं वह टक लाये आप की ओर देख रहा है इसके नेत्रों से आँसू कपोलों पर गिरते हैं मानों जल सरसिज के एक पत्रसे ढहकर दूसरे पत्र में गिरता है और उसपर वैठे हुए भ्रमर गण भीजते हैं । वे स्त्रियाँ यहाँ तक आने से जताती हैं कि हम लोगों को किंचित् मात्र दुःख वन में न होगा-सो देखो तुम्हारे लिये खड़ी हरिणी के समान रो रही हैं । ये वृद्ध ब्राह्मण आप से शीघ्र भेंट करने के कारण दौड़ते चले आये हैं सो थक कर बैठ गये हैं-मानो ये जनाते हैं कि तुम्हारे एक दिन के वियोग से हमारी ऐसी दशा होगई है सो हे राम, यदि अपनी कोमल वाणी से हमारे प्रतिकूल वचन (अवध को न लौट जानेको) कहोगे तो विश्वास मानो कि सब हम इसीतमसा में बूड़कर मर जाँयगे-अब हमसे अवध से योजन ही क्या है

इस प्रकार पुरवासी विनती करते २ रोने लगे, तब रामचन्द्र ने सब को साथ लेकर कोमल तथा शीतल सिकता पर आसन दिया । पुरवासियों की स्त्रियां सीताजी से कहने लगीं कि हम अयोध्या में रहकर क्या करेंगी, जहाँ

पर कैकेयी अनेक प्रकार से प्रजा को पीड़ा देगी, अब राघव से हमको वन ले चलने के लिये आग्रह कीजिये । यह कितना बड़ा भारी सुख होगा, कि सब लोग वन में वृक्ष, गुल्म, लता, बेलि, पर्वत, सरिता अनेकों प्रकारके पक्षी तथा देश देखेंगी । उस ओर पुरुष रामचन्द्रजी से वन चलने की प्रार्थना करने लगे ।

पुरबासियों प्रति रामचन्द्रजी का विचार ।

इतने में आधीरात हुई, जल के किनारे कभी कोई पंक्षी बोल देता है मानो प्रकट करता है कि रामवियोग से बोलने की शक्ति नहीं रहगई है । जलचरों के उछलने से जल में शब्द होता है मानो तमसा भी रामवियोग को सुन कर रोती हुई शब्द करती है । इस ओर रामचन्द्रजी ने विचारा कि वास्तव में पुरवासी मुझ में हार्दिक प्रेम रखते हैं, परन्तु अनेक प्रकार के वनके दुःखों को इनके सन्मुख कर देना, इनके प्रेम का योग्य बदला न होगा—जैसे पिता के विदेश चलने के समय बालक रोने लगता है परन्तु किसी वस्तु में उसके मनको अटका कर वह अपनी राह लेता है, वैसेही इनकी प्रेमवल्ली में धक्का न लगाते हुए हम इनको इसी स्थान पर छोड़ चुपके चलदें । ऐसा दृढ़ निश्चय कर सुमंत से अपना विचार प्रकट कर रथ जोतने को कहा ।

तमसा तट पर राम से बिछुड़े हुए पुरवासी ।

जब तीनों जन रथ पर चढ़ चुके तब रामचन्द्रजी बोले कि प्रथम उत्तर की ओर रथको ले चलिये-वह जो गांडुर तथा तिनका गांजर है उसी के ऊपर रथको चलाकर दक्षिण की ओर के घूम जाइयेगा, तृण पर रथके चाकों के चिन्ह न देख पड़ेंगे, जिसमें मेरे प्राण समान पुरवासी मेरे साथ घूमने में कष्ट न उठावें वरन् अनुमान करें कि मैं अवध को लौट गया हूं ।

इस ओर जब किसी एक पुरवासी की आंख खुली तो चोरों से लूटे हुए घर के समान स्थान को देखकर वह हकबकाय कर बोला कि न रथही देख पड़ता है और न प्रसन्नात्मा रामही देख पड़ते हैं । इतने में सबों ने देखा कि राम नहीं हैं, तब परस्पर कहने लगे कि देखो हमारे हृदय की पीड़ा पर राम ने विचार न किया. हमको अनाथ छोड़ कर चले गये, राम, यह तुमको न चाहिये, पति की त्यागी हुई स्त्री के समान अब हम कहां जांय ? महाराजा (दशरथ) जानते होंगे कि हम लोग राम के संग गये हैं, हा, शोक, हम छले गये, हे तमसे, तुमने अवश्यही हमारे गंभीरात्मा राम को देखा होगा—अर्ध रात्रि तक तो हम जागते थे ।

तुम्हारे कूल पर टिके हुए राम पिछली रात्रि में स्त्री के ढिग से उठे हुए पति के समान हमारे जीवन मूरि कहां चले गये ? बताओ, तुम अवश्य जानती होगी। पक्षिगण जो तुम उदास नदी के किनारे के वृक्षों की शाखों पर बैठे हो, यदि रामगमन के समय तुम बोल उठते तो उस से हमारी बैरिन नींद भाग जाती–फिर राम न जाने पाते और यह दुःख राजरोग के समान तुमको भुगतना न पड़ता–हे पवन, जैसे मंद २ समीर गति में चलकर हमको निद्रा के बश में किया था तो वैसेही राम को क्यों न शयन कराया–निःसंदेह, तू हमारा शत्रु है, हे निंदनीया नींद तुझको बार बार धिक्कार है हम राम वियोगी दुःखी पत्र रहित वृक्ष के समान हैं हमको सताकर क्या फल पाया। पशुओ, हमारी ओर मुख किये चरने से मुख मोड़े क्यों खड़े हो ? क्या रामवियोग की विरह लूकैं तुम्हारे हृदय में भी उठती हैं। इसी प्रकार पुरवासी संनिपातग्रस्त रोगी के समान बकते रोरहे हैं उनके विलाप से सारा बन रोरहा है उन में से कोई धीरज धरकर बोला–कि रथके मार्ग को पथदर्शक बनाये हुये चलो। जब बहुत दूर तक अयोध्या की ओर को चले आये और फिर रथ का चिन्ह भी न देख पड़ा तब सब पुरवासी बावलों के समान अयोध्या को लौट आये। हे प्रभु, यदि

आप इन अपने विरह वियोगियों को साथही लिये जाते तो इनको यह कष्ट न उठाना पड़ता।

गंगातट पर राम।

उस ओर रामचन्द्रजी अनेक बन नगरों को पार करते श्रीजगपावनि गंगाजी के तट पर पहुँचे-जो चन्द्रसम श्वेत लहरों से अपने कगारों का मान मर्दन कर रही है जिसके तटपर मुनि ऋषि लोग स्नान कर रहे हैं-कोई बड़ु सिकता पर आसन बिछाये सन्ध्योपासन कररहे हैं-कोई जान्हवी की हलोरों को देखते अपने हृदय को शुद्ध कर रहे हैं-कहीं पर वनजीव चौकन्ने गंगा जल पी रहे हैं उनसे उपदेश मिलता है कि अच्छे पदार्थ हस्तगत होने से अन्य-जनों का भय रहता है-कोई पक्षी पक्षों को झिटकते डुबकी मार रहे हैं, कोई सूक्ष्म डोंगी के समान प्रसन्नता से धारा में पड़े बहे जा रहे हैं। हंस कराकुल जलकुक्कुट आदि पक्षी उदार पुरुष के द्वारपर बैठे मंगनों के समान भागीरथी के तटपर बैठे हैं-कोई २ पक्षी वृक्षों से उड़कर जल में डुबकी मार कर फिर जाकर वृक्ष पर बैठते हैं मानो माता करि परोसे हुए भोजनों को शिशुगण दौड़ २ कर खाते हैं। भागीरथी की धारा लगातार बहरही है मानों संसार की गति की तुलना कर रही है-गंगा के कूलों पर लगे हुए वृक्ष

हरे व सघनपल्लव संयुक्त हैं। जैसे श्रेष्ठ जनों के पास मनुष्य शोभायुक्त रहते हैं। जब रथ गंगा के किनारे पहुँचा तब रामचन्द्रजी रथ से उतर कर घोड़ों को सुहराने लगे- जिनके नेत्रों से पनारा के समान जल गिर रहा है उनको जगत्पति ने अपने हाथों से बारम्बार पोंछा फिर सुमंतजी से बोले कि यह जो शिंशुपा का वृक्ष अपने पत्रों से धानी रंग का वस्त्र ओढ़े हुए स्त्री के समान शोभा दे रहा है, आज रात्रि को इसी के नीचे वास करेंगे—ऐसा कहकर सीता सहित रामचन्द्रजी पृथ्वी पर बैठ गये—फिर लक्ष्मण जी जाकर कुश लाये-और राम जानकी के लिये आसन तय्यार किया।

राम के सन्मुख निषाद।

यह दारुण समाचार सुनकर निषादों का राजा गुह आया-पावन का रुख बचाय दूरही से अपने नाम को लेकर प्रणाम किया—परन्तु पतित पावन दीन हितकारी, आर्ति हरण, अशरण शरण, ने उठ कर उस नीच गुहको हृदय में लगा लिया-और बड़े भाव से उसकी कुशल पूंछने लगे- निषाद गद्गद कंठ हो बोला, अब कुशल मुझसे अपनी कुशल चाहती है, धन्य है नाथ आपके सदृश आपही हो। फिर अनेक प्रकार की बातें रात्रि में करते रहे, जब प्रभात

हुआ-तो रामचन्द्र जी बोले, लक्ष्मण, अब हम बनके अञ्चल पर पहुँच चुके हैं, वह बट का वृक्ष देख पड़ता है, उसका दूध लाओ तो जटा धारण करें।

चक्रवर्ती के पुत्र राम जो स्वयं चक्रवर्ती होने को थे उनको साधारण वनवासी की तरह अपने शिर पर जटा बनाते देख सुमंत मूर्छित होकर गिर पड़े। हे जगत्-नगर वासियो इसमें (संसार) सुख नहीं है तुम्हारा भोग किया सुख सूखे हाड़ में श्वान के समान स्वाद देखने में है लेखनी डगमग चलती रुक जाती है क्योंकि वह बुद्धि के आधार पर है, और यह इस दुःख के निश्चय करने में असमर्थ है। जब दोनों भाई जटा बना चुके, तब निकट खड़े हुए निषाद से बोले-सखे, अब हमको पार करो। जैसे कोई नेग पाने के लिये कार्य्य में देर करै उसी तरह चतुर निषाद सुन कर खड़ा रहा-रामचन्द्र के पुनः कहने पर वह बोला।

निषाद की चातुर्य्यता।

महाराज, वह सुंदर नौका बीच धारा में खड़ी है उसी पर आप चढ़के चलिये। रामचन्द्र मुसकाकर बोले, भला निषाद हम वहां कैसे पहुँचैं गे। तब गुह बोला वह नौका आप से बहुत भय करती है जैसे नवीन स्त्री पति से

संकोच रखती है । लक्ष्मण जी हँसते हुए बोले, भो निषाद राज, वह तो सूखे काष्ठ की बनी हुई जड़ है । निषाद ने उत्तर दिया कि वही तो कारण उस के भय का है, वह प्रथमही सुन चुकी है कि महाराज जड़ों को शुद्ध चेतन कर देते हैं, सुनते हैं कि किसी शिला को प्रभु ने स्त्री बनादिया है । ऐसा सुन कर रघुवंश मणि सीता की ओर देख मुसकाने लगे, और सीता जी ने मंद मुसका कर शिर नीचे को कर लिया । गुह जी फिर लक्ष्मण से बोले-इसमें तो उसका कल्याण है वह क्यों रूठी हुई स्त्री के समान वहां खड़ी हमसे आग्रह करा रही है ।

निषाद बोला—कुँवर जी वह कहती है कि जड़ रूप में रहने से सुख दुःख संयोग वियोग मित्र शत्रु का ज्ञान नहीं रहता इस से वह इसी रूप में रहने से प्रसन्न है । रामचन्द्र जी बोले कि तुम उसके सहवासी हो किसी भांति मना लाओ । निषाद बोला—जैसे विष्णु स्वर्णरूपी जीवको ज्ञान रूपी अग्नि में डाल कर जब तक कर्मरूपी मल नहीं दग्ध कर डालते हैं तब तक उस जीव को नहीं अपनाते वैसे ही वह जब अपनी इच्छानुसार रूप में आपको देख लेगी तब आपको अपने ऊपर चढ़ाकर इस बहराती देव नदी से पार कर देगी ।

सवैया ।

नदी नवका न नगीच खड़ी सरिताचिचबीचअड़ीभयमानि ।
न आवतिहै यहिओर कहूँ पगधूरि सुरावरिकी जगजानि ॥
बनी जड़से वहचेतन मीत करीवर भांति फंसावहि सानि ।
जु किंकर राम चहैं रजधोवन तो चलिवेहित मैं अकुलानि ॥

रामचन्द्र जी हंस कर बोले कि अच्छा कोई ऐसा उपाय है कि जिसके द्वारा इस देव नदी को पार करैं-तब निषाद अपने हाथों से रघुनाथ जी के चरणों की ओर संकेत करता हुआ बोला प्रभो, इनकी रजही उसके भयका कारण है सो प्रथम नौका में पग रखने के इस रज को धो लेने दीजिये । फिर निषाद बड़े प्रेम से ऐसे व्यंग वचन बोला—

निषाद बचन ।

बावन रूप धर्‌यो सब नापि लिह्यो पुहमी सरिता सरखेरा ।
सोवत ऊदधि मांझ जु नात बड़ो सरितापति सो सबचेरा॥
सोखि लियैं जल को तवदास मिलै नहिंखोज महीतलहेरा ।
ये सब ठीक न पार करौं पगधोवन में जो करो तुम बेरा ॥

ऐसे प्रेम भरे गुह के बचनों को सुन कर रामचन्द्र हँसते हुए बोले-हां निषाद ठीक है तुम को जो कुछ हमारे पार करने में करना हो करो । तब वह एक कठौता जिस में

मछली रखता था लाकर अपने कठोर हाथों से राघव के चरण कमल प्रेम में मग्न निषाद् मलिमलि कर धोने लगा तब आकाश से सिद्ध चारण विद्याधर देव गण जय घोष करते गुह से बोले—हे बड़ भागी निषाद इन चरणों को कमला सकुचते चापती हैं, महेश के मानस में वास करते हैं, इन चरणों का प्रक्षालन ब्रह्माजी ने किया है, इन चरणों में मुनि व ऋषियों के मन बसे हुए हैं इनको धीरेसे धोवो। जब पाद प्रक्षालन हो चुका तो चरणामृत को परिवार सहित पान किया-फिर हर्षित हो मन में कहने लगा कि ये मुनि ऋषि योगियों को अपनी चतुरता के बीच कौतुक बताये रहते हैं आज इनकी एकौ न चली, मैं प्रथम सहित परिवार के भवसागर से पार होकर पीछे इन के ही पद से निकरी हुई गंगा को पार कराने जाता हूँ। इसके पश्चात अपने सेवकों को जो नौका लिये हुए बीच गंगा में खड़े थे बुलाया-उन्होंने जलयान को लेकर किनारे खड़ा कर दिया तिस पर सीता जी को चढ़ाय राम लक्ष्मण नाव पर चढ़े।

गंगातट पर सुमंत।

फिर सुमंत की ओर देख बोले—अब आप अयोध्या को लौट जांय पिता को समझाते रहियेगा—और आप अधीर न हो। तब सुमंत दुःखित हो बोले—महाराज ने

कहा था कि वन घुमा कर लौटाल लाना—और जो वन में ही रहने का मत करें तो सरयू के उत्तर वन में वास कर। रामचन्द्रजी बोले हे मंत्रि वर, हम बनचारी रूप में हो चुके हैं हमको वैसाही कर्म करना चाहिये अर्थात् एक बन से दूसरे वन में घूमें—आप का मार्ग कल्याण हो अब आप लौट जाइये—शोक न कीजिये। ऐसा कह तीनों जनों ने अमात्य को प्रणाम किया और निषाद को नाव चलाने का संकेत कर गंगा की लहरें देखने लगे।

गंगापार राम।

थोड़ी देर में नाव आकर किनारे लगी—फिर तीनों जन नाव से उतर कर रेती में खड़े हुए—तब निषाद हाथ जोड़े साथ चलने के लिये निवेदन करने को था कि इतने में रामचन्द्रजी उतराई देने के निमित्त इधर उधर देखने लगे परन्तु वहां पास कुछ नहीं था।

हे लक्ष्मी तू अवश्य चपला है कि तू ने अपने प्राण जीवन को भी सकुचाया। प्रभु का रुख उतराई देने का जान सीताजी ने बहु मूल्यवान् रत्नमुंदरी अपनी अँगुली से उतार कर रघुनंदनजी को दी तब रघुनाथजी मुद्रिका को उठा निषाद को देने लगे परन्तु वह कान में हाथ धर कर दुहाई

देने लगा कि मैं पुनर्वार उतराई न लूँगा । जब रामचन्द्रजी ने देखा कि गुह उतराई नहीं लेता तो बोले, सखा, हम लोगों को प्रयाग का मार्ग बताओ, और तुम लौट जाओ । वह बोला वहां तक आपके साथ चलूँगा जहां तक आप अपना निवास स्थान न नियत करेंगे–मैं सदा का वनवासी हूँ आपको सुखदायक स्थान बताकर लौट आऊँगा । रामचन्द्र जी बोले अच्छा चलो । फिर मार्ग में अनेक नगर वन उपवन देखते प्रयाग पहुँचे वहाँ भरद्वाजजी के यहाँ एक रात्रि वास करके दक्षिण की ओर चले–फिर यमुना उतर कर सघन वन में प्रवेश किया । इस प्रकार अनेक वन तथा सरिता नाँघते चित्रकूट पहुँचे ।

चित्रकूट में राम ।

जिस चित्रकूट पर्वत के नीचे मंदाकिनी बह रही है, जिसके जल की थपेड़ दोनों कूलों के पर्वतों में लगने से बड़ा भारी शब्द होता है, जो सदा हहाती पाप उलूक के भगाने में लगी रहती है और जहां पर्वत के ऊपर सघन वृक्षों की छाया रहती है सर्व काल में फल बने रहते हैं ऐसे एक सुन्दर स्थान में जहां से जल दूर नहीं है वहां पर्णकुटी बना कर सीता लखण सहित साकेत विहारी रहने लगे ।

गंगातट पर मूर्छित सुमंत।

इधर सुमंत रामचन्द्र को नाव पर बहुत दिन को लिये जाते देख पंख कटे हुए पक्षी के समान गिर पड़े। जब राम को चित्रकूट पहुँचाकर निषाद आये तो देखते हैं, कि मंत्री अचेत पड़े हैं केवल श्वासही से जीवित दशा का ज्ञान होता है और ग्रीष्म की जलाक की लू लगे समान अश्वों के नाक से रक्त बह रहा है—तब निषाद ने घोड़ों को जल से स्नान कराया और बरजोरी सुमंत को रथ पर बैठाया फिर अमात्य को अयोध्या भेजने के लिये चतुर सेवकों को आज्ञा दी जब अयोध्या के निकट रथ आया—तब सुमंत धीरज धर कर उन निषादों से बोले कि अब आप लोग लौट जांय मैं पुरी को चला जाऊंगा।

शोकमुद्रा में मग्न सुमन्त।

सुमन्त विचार करते हैं कि मैं राम को बन पहुँचा आने में सबसे बढ़कर अपयश भाजन हुआ—यदि ऐसा किया भी था तो उचित यही था कि मैं भी उनके साथ चला जाता—यदि वह साथ न ले जाते तो उनसे पृथक् रह कर चौदह बर्ष तक बन सेवन करता-नहीं तो इस अधम शरीर ही को छोड़ देता-जिस रथ पर सीता लषण सहित

राम को बैठाकर ले गया था-उसको लौट आया देख पुरवासी दौड़ेंगे तब उनसे मैं क्या कहूंगा। अरे अधम सुमंत तू अभी विचार ले कि ये जब मुझको धिक्कारने लगेंगे कि तमसा के तट से चुप्पे रथ हांक लेजाने का मेरा तात्पर्य्य राम को बनवास देना था-इसमें पुरवासी मुझको मधुर पदार्थों से मिला हुआ विषमोदक कहैं तो क्या आश्चर्य्य, मेरे लौट आने से यह ध्वनि निकलती है कि मैं कैकेयी से मिला हुआ भरत को राजा बनाय अपने हितसाधन करने की घात में हूं-इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लौट आने में मैंने बड़ी भूल की है मैं दीन तो गंगा के किनारे मरने के लिये पड़ा था परन्तु क्या करूं अचेत दशा में गुहजी ने यहाँ भेज दिया-भला इसी में है कि मैं पुर में प्रवेश न करूं--जो फिर बन को लौटता हूं तो ये घोड़े राम वनवास के दिन से निरशन बृत धारण किये हुए सूख रहे हैं, अब ये न चल सकैंगे रामवियोग के कारण मुझको नेत्रों से देख नहीं पड़ता शरीर से ऐसा असमर्थ हूं कि बल करके भी नहीं उठ पाता, क्या करूं, हा विधाता, यदि ऐसे कठिन क्लेशों में परितप्तही करना था तो किसी जड़ योनि में उत्पन्न कर अपनी लालसा पूर्ण करलेता-

——:०:——

राजा के सम्मुख सुमन्त।

जब मैं राजा के पास जाऊंगा जो राम के समाचारों को सुनने के लिये मेरी बाट जोहते होंगे-वह जब यह जानेंगे कि राम नहीं आये तो जैसे तारी बजाने से पक्षी उड़ जाता है वैसे ही राजा, राम का लौटना न सुनकर शरीर रूपी वृक्ष को छोड़ चले जांयगे। ऐसे विचारों में मग्न सुमन्त पुरी में प्रवेश कर कौशल्या के द्वार पर रथ को खड़ा करके भीतर गये—वहां देखते हैं कि राजा अचेत पड़े हैं-कौशल्या, सुमित्रा उनके निकट बैठी पुत्रवियोग के बाणों से वेधी मृगी के समान कहरि रही हैं। धन्यदेवियो! प्राणसम पुत्र के वन जाते हुए भी पतिसेवा में अन्तर नहीं आने दिया। सुमन्त का आगमन सुनकर राजा ने नेत्र मूँदेही मन्त्री से पूँछा कि राम कहाँ हैं। तब सुमन्त ने सब वृत्तांत सूक्ष्मरूप में वर्णन किया। इसके पश्चात् दशरथजी कहरि कर बोले।

दशरथ का अन्तिम संसार।

राम! सदा प्रशंसनीय कार्य करते हुए भी तुम शील-परायण संकोच रखते थे। जब तुम मेरे ओर रुख कर बतलाते थे तब मैं चकोर की तरह निहारा करता था-जब

तुम हंसने लगते थे तो चम्पा के समान श्वेत तथा लावण्यता में दाड़िम सदृश दन्त विकसित हो उठते थे, वे मुझे नहीं भूलते। बड़े भारी घाव से घायल होचुका हूँ अब तुमको न देख सकूंगा-शरीररूपी गढ़ के भीतर से कादर राजा के समान प्राण नहीं निकलते। दशरथ, तुम कैकेयी से घात किये गये तुम्हारा ऐश्वर्य्यरूपी राम तुमसे छीन लिया गया है अब तुम किसके सुख के लिये ठहरेहो-हे कौशल्या! हम हाथ जोड़े तुमसे कहते हैं हमारा कोई दोष विभीषिका काण्ड रचने में नहीं है हम सोते हुये मारे गये-मेरे समान असत्यभाषी कौन पुरुष होगा कि राम को युवराज पदवी देने की प्रतिज्ञा कर बनबास दिया-परन्तु राम को कुछ भी रोष न हुआ-हा, धिक धिक, मैं राम का पिता कहलाने के योग्य नहीं हूँ-हे कौशल्ये, अब मुझको तुम नहीं देख पड़ती हौ-आओ निकट बैठो, अब मेरे अधम प्राण लज्जित होकर चलने वाले हैं-तुम बन से लौटे हुए राम को सीता सहित गज पर चढ़े देखोगी तब तुम्हारे हृदय की दाह शांत हो जायगी-परन्तु मैं अभागा स्वर्ग में भी इस दुर्दाह से मुक्त न हूंगा। यद्यपि मुझ पापी ही के कारण तुम्हारे प्राणधन राम वनको चले गये हैं-जो माता पिता से हीन के समान तथा तृषित मृग के सदृश बन में मारे २ फिरते होंगे-यद्यपि अब मुझ अनाथ पर दया करो, थोड़ी देर में इस मुख से बोल न

सकूंगा—क्या कहूँ मैं पाली हुई सर्पिणी से छला गया—राम, तुम्हारा पिता अब चलनाही चाहता है फिर न देख पाओगे-आओ एक बार इस बरती हुई अग्निकुण्डरूपी हृदय में लगकर तुम मेघ शांति दे।।

कौशल्याजी बोलीं—आप सब में श्रेष्ठ हो आपको अन्य मनुष्यों के लिये धैर्य्य धरना चाहिये-नहीं ते चारों ओर से बन में अग्नि लगने के समान हम सब दुःखाग्नि में भस्म होजाँयगी-शब्द उच्चारण करते मूर्छा आती है बोलने में असमर्थ हूँ आप धीर धरिये—राम फिर अवध को आवैंगे ।

फिर दशरथजी कहने लगे-रोग दरिद्री तथा धनवान् को समान दुःख देता है हम ऐसे विश्वसुखदाता राम के पिता होते हुए भी कर्म बन्धन से मुक्त नहीं हो सके-तुम्हारे स्मरणरूपी अरणी से वियोग चिता में विरह अग्नि द्वारा मैं दग्ध होता हूँ-अरे मेरे प्राणाधार राम कहाँ हो। ऐसा वारम्बार कहते महाव्रतधारी दशरथजी पांचभौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्ग को रोते चले गये।

बिना दशरथ के अवध ।

राजा को प्राणहत देख सब रानियाँ महा विलाप करने लगीं। उनका आर्तनाद सुन सब पुरवासी दौरिआये

और राजा को मृतक देख रोदन करने लगे-आज राकाशशि राहुरूपी काल से ग्रसित हुआ-आज अवध सरोवर का कमल बन नाश होगया-आज रघुवंश का मृगराज मारा गया-आज बड़ा भारी वीर युद्ध में न पराजित हो विश्वास-घात द्वारा मारा गया-आस सुरेश असहाय हुआ-आज कोशल देश अनाथ हुआ । इस प्रकार महाविलाप करने से अयोध्या नगरी श्मशान भूमि के समान देख पड़ने लगी-तब वशिष्ठजी ने प्राचीन काल के पुरुषों के दुःसह दुःख सुनाकर व संसार को नश्वर दिखाकर समयानुसार ज्ञान का उपदेश देकर लोगों को समझाया-और राजा के शव को तैल में अन्त्येष्टि कर्म करने के लिये रख छोड़ा ।

ननिहाल से लौटे भरत ।

दो चतुर गंभीर दूतों को बुलाकर कहा कि केकयदेश में जाकर भरत तथा शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुला लाओ-यहाँ का हाल किसी पर प्रकट न करो । वे दूत वहाँ पहुँच दोनों भाइयों को अपने साथ अयोध्या को ले आये । जब भरतजी ने सब समाचार सुना तब रोदन करते हुए बोले-हे हाथी के सूंढ के समान भुजावाले, प्राणनाथ-तुम मेरे लिये बन को भेजेगये । मैं अजान पितृगत रोग से पीड़ित किया गया । हे अम्ब ! तुम जो किसी प्रकार के दुःख सहने के

योग्य न थीं मुझ आत्मीय हत्यारे को इस कुकाण्ड रचने का कारण समझ वन को चली गईं-हे लषण तुमने अवश्य यही निश्चय किया होगा कि मैं ही वंश की जड़ काटने में मूषक हूँ। हा पिता, क्या आपने भी इसमें मेरा सम्मत माना है-अब आप देवयोनि को प्राप्त होचुके हैं, अब आप सहज में मेरे हृदय के भावों को देख सक्ते हैं। हे दुर्मति कैकेयी, अब तेरी ऐसी स्त्री पुत्र सुख को न देख सकैगी-विधाता को बड़ा अपयश नीच को ऐश्वर्य्य देने में मिलता है। तू चाहे अपने हृदय में मेरे लिये पुत्रभाव रख परन्तु तुझ पिशाचिनी ने जो सुरेश सरिस अपने पतिको खा लिया है उस से मैं अलगही रहूंगा-ऐसा भयंकर कार्य्य कर तू जीवित है धिक्कार है।

भरतजी का बिलाप।

इतने में वशिष्ठजी ने आकर समझाया। फिर भरतजी को क्रियाकर्म करने की आज्ञा दी। तब राजा का शव तैल से निकाल कर चंदन की चितापर धरा गया-जिन राजा के मृतक अंग से भी सरलता का भाव प्रकट होता है-उन पिता को देख, भरत बड़े करुणस्वर से पकड़ कर रोने लगे-पिता, मैं तुम्हारा पुत्र भरत हूँ तुम बोलते क्यों नहीं हो मैं धर्म को साक्षी देते हुए कहता हूं कि मैं इस अनर्थ से

अज्ञान हूँ—अब कौन हम चारों भाइयों को साथ लेकर सभा चलैगा-"पिता" यह शब्द किसको कहूँगा । फिर जब राजा का शव चिता पर धरा गया तो रानियाँ पतिपद स्नेह को स्मरण करती सती होने चलीं परन्तु वशिष्ठजी के समझाने से सती न हुई ।

पुरवासी तथा भरत ।

जब राजा की अन्त्येष्टि से छुट्टी मिलगई तो सब पुरवासी वशिष्ठ तथा मंत्रिगण आदि सभाभवन में आकर एकत्र हुए-तब वशिष्ठजी बोले कि राजा दशरथ वंश की परम्पराके अनुसार ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र को राज्य देते थे. परन्तु बीच में जो अनर्थ खड़ा हो गया, वह राम के वन जाने तथा राजा के परलोक पधारने का कारण हुआ-जैसे स्त्री बिना पति के शोभा नहीं पाती वैसेही राज्य बिना राजा के डगमगाया करता है, पिता जिसको पैतृक द्रव्य का अधिकारी बनाता है उसी का स्वत्व उसमें होता है; तुमको राजा ने राज्य दिया है, सो उसको हाथ में लेकर अपने पिता के सदृश प्रजा को पालो । तब भरतजी बोले-गुरो, इसमें संदेह नहीं है कि पिता ने मुझको राज्य दिया अथवा किसी ने बरजोरी दिलाया है । रहा यह कि पिता स्वर्ग को गये और श्री रामचन्द्रजी वन में. हैं तो राज्य का प्रबन्ध

कौन करैगा, इसके लिये मैं अपनी ओर से उत्तर देता हूँ कि न मैं ऐसा योग्य हूँ कि वसुमती का पालन कर सकूं और न यह वासना ही है कि राज्य भोगूं-आप चाहो तो सृष्टि को नाश कर दो और चाहो तो सृजि दो-आप ऐसे समर्थ के अछत यह राज्य वैसेही रक्षित रहैगा जैसे मृगराज से वन रहता है। अब आप पूंछो कि तुम क्या करोगे तो मैं हाथ उठाये कहता हूँ कि राम के चरणों के दर्शनों के अतिरिक्त मैं कुछ न करूंगा।

सवैया।

धिकराज्यधिकै सबसाजधिकै जगकाजविलास धिकैगुरुताई।
धिक मंदिर में रहिवो, धिक ओढ़न पाट धिकै दृढ़ता चतुराई॥
धिक बात बनाय बखान धिकै मन कान सुनै रघुराज बिहाई।
धिक किंकर है सबही धन धाम भजै न रघूत्तम को मन लाई॥
बिनुपीय तिया बिनुमातु धिया बिनुक्षीर बछा जगमें दुखपावें।
नलिनी बिनु भानु चकोरहु चंद बिना मणि हीन फणी मुरझावैं॥
बिनु पंख पछी मछरी बिनु बारि बिना बल बूढ़ परे अकुलावैं।
पुरबासि वही गति है हमरी रघुनाथ बिना केहिको गोहरावैं॥

मैं प्रभात होतेही वटु के समान दक्षिण दिशा दरी में अपने प्राण नाथ को ढूँढ़ने जाऊंगा-आप लोगों को जो भावै सो करो। ऐसे गूढ़तर वचन जो भ्रातृ स्नेह से सने हैं सुनकर नष्टगई हुई वस्तु के प्राप्त होने के समान सब पुर-

वासियों के हृदय में रामचन्द्रजी का स्नेह उमड़ आया और वे भरतजी की प्रशंसा करने लगे-

भरतगमन।

प्रातःकाल होतेही भरतजी माताओं के तथा गुरू के तथा पुरवासियों के साथ रामचन्द्र के दर्शन करने चले-मार्ग में चलते २ रेता के भीट तथा बड़े २ सूखे नाले देख पड़ने लगे-तब सुमंत्रजी बोले-भरतजी, अब यहाँ से गंगा जी निकट हैं-देखो वे सघन वृक्ष जो एकही में मिले हुए दृष्टि पड़ते हैं वँही गंगा जी का इस ओर का उत्तरीय तट है, पश्चिम ओर वृक्षों के बीच से जो धुआँ निकलता है वहीं निषादराज गुह का स्थान है, अब दाहिने ओर को घूम जाना चाहिये-क्योंकि वहां आगे इतना रेता है कि रथादि नहीं चल सकते। ऐसी बातें करते हुए समाजसहित भरत जी गंगाजी के किनारे पहुँच रहे थे।

संदेह प्राप्त निषाद।

कि उस ओर रथ, हाथी, घोड़ों व मनुष्यों के शब्दों को सुनि व उड़ी हुई धूरि आकाश में देख निषाद विचारने लगा कि किस राजा की सेना जो चारों अंगों से संयुक्त है। आरही है। फिर मन में कहनेलगा कि यह घाट अयोध्या से

सीधा पड़ता है। हो न हो भरत सकटक राम के पास जाते हैं—मनुष्य पर विपत्ति पड़ती है तो एक जाने नहीं पाती कि दूसरी आ पहुँचती है, यदि इन का मन दुर्नीति में होगा तो यह जलदुर्ग के समान सुरसरी इनके कार्य्य में विघ्न होगी उनके साथ सहस्रों मनुष्य हैं, भरत के मनोगत भाव जानने में कुछ कठिनाई न पड़ेगी। ऐसा कह यथानुसार भेंट की वस्तुओं को लेकर गुह आगे चल कर भरत से भेंट करने चला। उस ओर सुमंत जी भरत से हाथ से संकेत करते बोले कि वह मनुष्य जो तुम्हारी ओर निहारता सम्मुख आ रहा है वही निषाद राज गुह रामचन्द्र जी का सखा है। राम का सखा, ऐसा शब्द सुन कर भरत शीघ्रही रथ से उतर कर निषाद से भेंट करने चले-निषाद अपने नाम को सुनाकर दण्डवत् करता पृथ्वी में गिरपड़ा तब भरतजी ने दौड़ कर दोनों हाथों से उसे उठाकर छाती में लगाया और रामचन्द्र जी को स्मरण कर नेत्रों से आंसू छोड़नेलगे-फिर धीरज धर कर राघव के समाचार पूंछने लगे। तब निषाद शिशुपा वृक्ष के निकट जिसके नीचे सीता राम ने कुश साथरी पर शयन किया था, भरत जी को लेगया। कुशासन जो अंगों के दबाव से बालू में दब गया था, उस को देख भरत जी रोने लगे और उन कुशों को बांध कर शिर पर धर लिया और कहने लगे कि हे वनस्पति रूप

सान्तःकरण जीव, तुम्हारे धन्य भाग हैं जो प्रभु के अँगों में लगे हो--अब तुम जड़ योनि से मुक्त हुए फिर भरत जी ने निषाद से रामचन्द्र की बातें बारम्बार पूँछते वह रात्रि उसी स्थान में व्यतीत की ।

मार्ग में भरत ।

प्रातःकाल समाज सहित भरत जी गंगाजी को पार करके उसके दक्षिण भाग में पहुँच गये फिर वहां से चलकर तीर्थराज प्रयाग में आये, वहाँ भरद्वाज से भेंट कर आगे सघन बन में घुसे । सांखू, भाण्डीर, पीपल, निंव, तमाल साल, तेंदुवा, शमी, पुन्नाग, क्षीरक, फल्गु, देवकरञ्ज, लवली, मलयज, दारुसिता आदि सघन वृक्षों को देख कर भरत जी बोले, इन बिशाल बृक्षों ने जिनकीफुनगी आकाश छुये लेती हैं बन को महा भयानक बना रक्खा है, इसी में हमारे प्राण नाथ बनबासी जीवों की तरह कहीं पड़े होंगे वह कौन सा दिन होगा कि सीता लषण सहित रघुनायक को देखूंगा और अपने हृदय थैले में भरी मन पीड़ा खोलूंगा । फिर बन की भयानक दशा तथा झिल्ली की झनकार को सुन कर भरतजी रोदन करते हुए बोले--जो बन मनुष्यों को स्वप्न में भी भय देनेवाला है उसी बन में चक्रवर्ती के पुत्र राम सावन में सुवा के समान मारे २ फिरते हैं ।

जैसे विशाल पर्वत के उच्च शिखर को पृथ्वी में खड़ा मनुष्य स्पर्श नहीं कर सक्ता—वैसेही कवि की बुद्धि भरत जी की विमल मति के विचारों के प्रकट करने में असमर्थ है। थोड़ी देर में निषाद अंगुली उठाकर भरतजी से बोला–

चित्रकूट के निकट भरत।

देखो यह वृक्ष जो अन्य वृक्षों से अधिक सघन तथा बड़ा है तिसके आगे वाले वृक्ष में चपलासम मुनियों के वस्त्र फैलाये चमक रहे हैं—और वह एक मुनि कमंडल लिए हुए ऊपर से नीचे को उतरता है–जान पड़ता है कि वह मंदाकिनी से जल भरने जाता है, देखो उन वृक्षों की रचना से वह स्थान बारहदरी के समान शोभा दे रहा है। बट के वृक्षके नीचे जो ऊँचा ढुहा समान देख पड़ता है वही रामचन्द्र जी की पर्णकुटी है। ऐसा सुनकर भरत जी के रोमांच हो आया और फिर उस स्थान को बारम्बार नमस्कार करने लगे। फिर निषाद बोला—भरत जी अब इन झरबेरी के वृक्षों के पूर्व वाले मार्ग से चलें। इस प्रकार कह कर चतुर पथ प्रदर्शक निषाद भरत जी को साथ लिये उस स्थान के निकट पहुँचा जहां पर सीता लषण समेत व अनेक मुनियों के संग जनसुखदाता तथा किंकर के सर्वस्व बैठे देख पड़े।

राम तथा भरत की भेंट ।

पूर्व ओर से मनुष्यों की आहट सुन, लक्ष्मण जी ने उस ओर निहारा तो देखा कि भरत जी आ रहे हैं तब पूर्व की ओर को संकेत कर रामचन्द्र जी से हाथ जोड़ कर निवेदन किया कि भरत जी आते हैं । ऐसा सुनतेही मुनि वेषधारी राम भरत से मिलने के लिये झटपट दौड़े जैसे कैलास पर्वत से महादेव जी अपने मित्र कुवेर को आगे होकर मिलते हैं । भरत जी ने देखा कि जिन अँगों पर अनेकों बहु मूल्य के आभूषण तथा वस्त्र रहते थे उन पर मृगचर्म व वल्कल विराजमान हैं । ऐसा देख कर बड़े दुःखित हुए और 'शरण हूँ शरण हूँ' ऐसा कहते पृथ्वी में गिर पड़े । रामचन्द्रजी ने भाई को उठा कर हृदय में लगा लिया, और भरत जी के मुख में जो रज लगी थी उसको अपने हाथों से झारने लगे । "इस भयानक वन में आने से तुमने वड़ा कष्ट उठाया" ऐसा कहते हुए भरत के आंसुओं की धारा को पोंछने लगे—फिर भरत जी को वगल में चपटाये स्थान पर लाकर बैठाया । तहां भरत सीता के चरणों में पड़कर बड़े विलाप से रोने लगे । तब वैदेही ने भरत को उठाकर चुचकारि अपने लाड़ भरे शब्दों से संतोषित किया फिर लक्ष्मणजी ने भरत के चरणों में मस्तक

धरा तिनका शिर सूंघ भरतजीने आशीर्वाद दिया । समय देख दबी हुई वाणी से निषाद बोला महाराज, माता तथा वशिष्ठादि पुरवासी कुछ दूर पीछे ठहरे हुए हैं उनको आप के पता लगाने का समाचार देना चाहिये । वशिष्ठजी का आगमन सुनकर रामचन्द्रजी स्वयं चले-वहाँ पहुँचकर गुरु तथा माताओं को प्रणाम किया, फिर एक २ पुरवासी से यथोचित मिले-इसके पश्चात् सबको लेजाकर सुन्दर स्थानों पर विश्राम कराया ।

पिता के मरण को सुनकर राम का विलाप ।

फिर वशिष्ठजीने राजा के मरने का वृतान्त वर्णन किया—तिसको सुनि सीता लषण सहित राम बड़े दुःख को प्राप्त हुए-धीरधुरंधर होने पर भी पितृस्नेह के वश हो लगातार नेत्रों से जल छोड़ने लगे-जैसे २ अपने ऊपर राजा के प्रेम का स्मरण करते हैं तैसे २ हृदय भमकता जलकण छोड़ रहा है । फिर वशिष्ठादि के समझाने पर स्नान करके तिलाँजलि दी और इंगुदी के फलों का पिण्ड-दान देने लगे—और फिर रोते हुए बोले, पिता जिसके प्रेम में आपने शरीर त्याग किया, उस मुझ राम बनवासी के हाथ से आप षट्रसभोगी ये इंगुदी के फलों से बने पिण्ड स्वीकार कीजिये-जैसे अक्षत न होने से केवल यव

कीही साकल्य को अग्नि देव स्वीकार कर लेते हैं-हे पिता, सुनता हूँ कि पितृलोग पुत्र के हाथ के दिये हुए पिण्डदान को अँगीकार करते हैं-तो मुझ दुःखी पुत्र के हाथ से क्यों नहीं ग्रहण करते-मैं समझताहूँ कि यही पिण्डदान आपको रुचिकर नहीं हुआ—मैं वनमें वसता इन्हीं इगुदी के फलों से कालक्षेप करता हूँ, यह आपकी पुत्रवधू मेरे साथ खड़ी आपका मार्ग देख रही है, वह लक्ष्मण खड़ा घड़े से जल गिरने के समान आँसू छोड़ रहा है । जिस पदार्थ को मैं खाता हूँ उसी के बने हुए पिण्ड आपको अर्पण करता हूँ- उनको आप स्वीकार करें । इस प्रकार रामचन्द्रजीने करुणा को करुणा कराते पिण्डदान कृत्य को समाप्त किया ।

राम तथा वशिष्ठजी का सम्वाद ।

दूसरे दिन रामचन्द्रजी वशिष्ठजी से बोले-गुरो आज यह दूसरा दिन आप लोगों को यहाँ वन के कष्ट उठाते हो गया—अब आपकी क्या आज्ञा है । वशिष्ठजी बोले, हेराम ! भरत जिसके हृदय में तुम्हारी प्रेम सरिता बह रही है और जिसने हमारी धर्म तथा नीति चातुर्य्यता को डुबो दिया है जैसे कुटुम्बियों के अधिक सांत्वना देने पर भी पतिव्रता स्त्री अपने पति के संग सती होजाती है वैसेही अनेक प्रकार से समझाने पर भी भरतजी ने आपके दर्शनों को एक मात्र

कार्य्य समझा है, सो उनके रुख को लेकर आप कार्य्य करें। हे राम! मनुष्य अपना कर्त्तव्य धर्म तो सबही निबाहते हैं परन्तु वेही लोग सराहने के योग्य होते हैं जो दूसरे के संकट दूर करने में अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं तब रामचन्द्रजी बोले, भगवन्, भरत की प्रीति तथा रहनि को मैं पहलेही से जानता था उसको विस्तार रूपमें करने के लिये यह आपका उपदेश राकाशशि को शरदृऋतु प्राप्त होने के समान हुआ।

राम के सम्मुख भरत।

जो कुछ भरत कहें वही मेरा सर्वोपरि धर्म है। तब भरत हाथ जोड़ खड़े होकर बोले-कैकेयी की कुटिलता रूपी पंक में फँसकर पिता ने आपको बनवास और मुझको राज्य दिया है। परन्तु मैं राज्य भार के उठाने में अपने को असमर्थ समझ आपके पास आया हूँ कि युवा स्त्री के समान राज्य मुझ बालक के मान का नहीं है, रघुवंशियों की राज्य विधवा स्त्री के समान बिना राजा के रोरही है, अब इसको आप सनाथ कीजिये। यदि आप इस पितृव्यों की राज्य को निरादृत कर आज से चक्रवर्ती रघुवंश को बनवासी कहलाना चाहते हो तो आपकी कुटी के पीछे वाले मौलसिरी वृक्ष के नीचे मैं भी बैठ कर यहीं पर आपकी

सेवा करूंगा । भला इस घोर राज्य नदी में, जिसमें अनेक प्रकार के द्वंद बखेड़ा रूपी घहराती लहरें उठती हैं, मैं सूक्ष्म डोंगीरूपी बुद्धि पर चढ़ा कैसे पार पा सकूंगा । इससे हे नरेन्द्र, आपको जो रुचै सो करिये । तब रामचन्द्रजी बोले, तात, इसमें कोई संदेह नहीं है कि पिता के मरण तथा मेरे यहाँ होने से तुमको राज्य की डोर थाम्हने में बड़ा कष्ट होगा, परन्तु, भइय्या, विपत्ति तो काटे से कटती है, जिस वचन के पीछे पिता ने प्रिय शरीर को त्याग दिया, उसके भंग करने में सत्य रूप पिता स्वर्ग में सुख न भोगेंगे । अस्तु, अब हम दोनों जन असह्य विपत्ति भार को बैल के समान कन्धे पर जुवा धर १४ वर्षों को काट डालैं, देखो, यदि हम दोनों भाई पिता के आदेशानुसार काम न करेंगे तो अन्य राजा लोग तथा धर्मशास्त्र में विशारद पंडितगण दोनों जनों को बालक कहकर हमारा तिरस्कार करते हुए दिनकर वंश को अस्त हुआ समझेंगे, अंत में प्रकट करते हैं कि हम अपना कर्तव्य तुम्हारी रुचि रखने ही में समझते हैं । जो कुछ तुम कहो हम करने को तत्पर हैं । तब ऐसे शील भरे वचनों को सुनकर भरतजी बोले स्वामी की आज्ञा ही सेवक को परम सुखदायक है । यदि आप ऐसाही ठीक समझते हैं तो मुझको ये अपनी चरणपादुका दे दीजिये जिस में अवधि रजनी में इनको अवलंब बनाये अवध गमन

रूपी प्रभात काल में आप मरीचिमाली भगवान् को देख सकूं। फिर रामचन्द्रजी से पादुकाओं को पाकर शिरपर धर लिया। तब रामचन्द्रजी ने एक२ मनुष्य को परितोपित करके विदा किया। फिर माताओं को कुछ दूर पहुंचाकर प्रणामकर तीनों जन लौट आये। फिर भरतजी अयोध्या में आकर राज्य का योग्य प्रबन्ध कर पुर के बाहर नंदिग्राम में मुनिवेषधारी हो राम भजन जल में मनमीन को मग्न रखने लगे।

बिना रामके कौशल्या।

चित्रकूट से लौटकर मंदिर में कौशल्याजी रामचन्द्र के धनुप, वस्त्र आदि को देख कर बड़े करुणा भरे वचनों में उन वस्तुओं के प्रति बोलती हैं कि हे वस्त्रो, तुम आज यहां कागज के समान पड़े हो, कभी हमारे लाल के अँग में चिपक कर शोभा सँयुक्त थे—पाग, तुमको तो रघुनन्दन बड़ा मान देकर शिर पर रखते थे—सो तुम नीचे मुख किये हुए पृथ्वी में दुःखित स्त्री के समान पड़े हो -सत्य है मनुष्य को बरबश अनेक दशाओं का परिवर्तन देखना पड़ता है—ये देखो लाल के पाद त्राण धरे हैं तुम चातक के समान ऊर्ध्व मुख किये आकाश को चितै रहो हो—क्या घनश्याम राम की प्रतीक्षा करते हो—वह तो दक्षिणकी ओर

गये हैं, रघुनन्दन की शिशु अवस्था के वे वस्त्र धरे हैं वैदेही इन वस्त्रों को निहारती और राघव की ओर देखती हँसती थीं–सो अब कोई इनका आदर देने वाला नहीं है । वह पुस्तकालय, जो मेरे अनेक बार बुलाने पर भी राम को भोजन करने के लिये अपने वश भर नहीं आने देता था सो आज वह भी मौनता धारण किये है, रंगशाला तुम्हारे साथ मेरे लाल अपने सखाओं को साथ लिये अनेकों कौतुक किया करते थे सो वह कहाँ हैं । कौशल्याजी रामचन्द्र के चित्र को देख उसकी ओर आगे बढ़कर उसके प्रति पूँछती हैं–लाल बन से लौट आये, मैं तुम्हारी माता हूँ–आज अन्य दिनों की भाँति प्रणाम नहीं करते हो–तुम्हारी मन्द मुसकान दुःखित होने की शङ्का को हृदय से दूर करती है, तो बोलते क्यों नहीं हो, हमारी ओर मुख किये किसको ताक रहे हो–जबसे तुम बन को गये थे तबसे तुम्हारे सौभीर आदि सखा सुन्दर बस्त्रों को त्याग कर सरयू के रेता में दण्डी के समान दिन रात तुम्हारे नाम को स्मरण करते हुए घूमा करते हैं, केवल दिन में एक बार मुझे प्रणाम करने आते हैं, चलो कुछ भोजन करलो, नहीं-नहीं, भोजन सिद्ध नहीं है– वह भी तुम्हारे साथ बन को चला गया था–आओ अब मैं भोजन बनाती हूँ और तुम बालपने की भाँति मेरे निकट बैठकर बन के समाचार सुनाओ । इस प्रकार महाधीर

तथा गम्भीर कौशल्याजी पुत्रस्नेह को न सम्हार सककर मन्दिर के निर्जन स्थान में बैठी अपने आप बातैं किया करती थीं, पुत्रवियोग का दुःख उन्हीं को जान पड़ता है जिनके साधु पुत्र उनसे बिछुड़ जाते हैं-प्रत्येक पुरवासियों की भी वही दशा रामचन्द्रजी का वियोग होने से थी-इन को यदि राघव अपना लोक क्या तीनों लोकों की विभूति अथवा अन्य श्रेयस्कर पदार्थ जिनको वही जान सक्ते हैं देवैं तो मेरी समझ में वे भी यथानुकूल पदार्थ नहीं हैं, अपना को सेवकों के वश बतलाते हैं यदि इसका कोई कारण है तो यही जान पड़ता है कि अपनी विभूतियों को सेवक प्रति तुच्छ समझते हैं क्यों न हो, धन्य है एक को सहस्र गुण मानने वाले प्रभु ही हैं।

चित्रकूट से रामचन्द्रजी का पयान।

उस ओर चित्रकूट में रामचन्द्रजी को बसते बहुत दिन हो गये, तब एक दिन लक्ष्मण से बोले कि अब यह स्थान अवधवासियों को आने के लिये सहज होगया है, अब यहाँ से दक्षिण की ओर चलना चाहिये-जहाँ से अनेक तपस्वी आया जाया करते हैं। ऐसा कह रामचन्द्रजी वैदेही, लषण समेत दक्षिण की ओर चले-चलने के समय वैदेहीजी हाथ जोड़कर कहने लगीं कि हे इस स्थान के देवतो अवधि के

पूर्ण हो जाने पर जब मैं रघुवंश मणि तथा लक्ष्मण के साथ सकुशल लौटूँगी तो अन्न की वृहद्राशि तथा घृत से यहाँ पर होम करूंगी, जिससे तुम बहुत दिन तक उसकी सुगन्ध से प्रसन्न रहोगे-हे मन्दाकिनि। मैं तुम्हारे उपकार को भूली नहीं हूँ, तुमने बहुत दिन तक क्षीर समान जल पिलाया है-सकुशल लौटने पर तुम्हारी पूजा करूंगी। इस प्रकार सीताजी वन देवतों को मनाय पति व देवर के साथ चलीं। जब चलते चलते सूर्य्य भगवान् पश्चिम दिशा के अस्ताचल पर्वत की ओटमें होगये तब लक्ष्मण बोले कि यह कुटी जिसमें बड़े स्वर से बटुलोग साम का गान कररहे हैं अनुमान से जान पड़ता है कि यही स्थान अत्रिजी का है क्योंकि मुनि लोग बतलाते थे कि चित्रकूट से दक्षिण प्रथम स्थान अत्रिजी का है। फिर उक्त स्थान पर पहुँचकर दोनों भाइयों ने अपने नामों को लेते हुए अत्रिजी को दण्डवत् किया-और जानकीजी ने भी प्रणाम किया। आशीर्वाद देते तथा नेत्रों को प्रेम के आँसुओं से भरे हुए अत्रिजी बोले-आज इस मनुष्य हीन वन में वसने का फल प्राप्त हुआ-आज शम, दम करने तथा कठिन व्रत धारण करने का फल प्राप्त हुआ-आज सांसारिक सुखों से उपराम करने का फल प्राप्त हुआ-आज साम को सस्वर पाठ करने का फल प्राप्त हुआ-आज प्राणायाम करने तथा समाधि लगाने

का फल प्राप्त हुआ-आज वेदों तथा शास्त्रों के मथने में बुद्धि ने रत्न पाया-दृष्टिगत पदार्थोंसे उपराम किये हुए इन विरह चातकरूपी नेत्रों ने आप घनश्याम से स्वातिजल दान पाया। इसप्रकार विनय बड़ाई करते अत्रिजी ने तीनों जनों को आसन दिया।

अनसूया तथा सीताजी का सम्बाद पतिव्रत पर।

फिर अत्रिजी की धर्मपत्नी तथा अग्रगण्या पतिव्रता अनसूयाजी, जिनके केश कास के फल के सदृश श्वेत होगये हैं, वह तपस्विनी एकान्त में बैठ जानकीजी से बातें करने लगीं-हे पुत्री! तुमने बहुत अच्छा किया जो अपने पति रामचन्द्र के साथ वन के दुःखों की ओर न देख चली आईं-योग्य स्त्रियां पति को कभी नहीं त्यागतीं। तब जानकीजी बड़ी नम्र तथा दीन वाणी से बोलीं कि माता पतिव्रता स्त्री के धर्म वर्णन करो। तब अनसूयाजी बोलीं जो अपनी रुचि को पति की रुचि की सहचरी बनाये रखती हैं, जिनका मन पति सेवा के अतिरिक्त अन्य विचारों में पंगु है, जो सकल धर्मबासनाओं को पति की चरणसेवा ही को अर्पित करती हैं—जिनका वाक्य सरल संकोचयुक्त निकलता है—जो सदा लज्जाभार से दबी रहती हैं—जो अपने पति के प्रसन्न करने को मन में नवीन

युक्ति ढूँढ़ा करती हैं। अनेक दासी दास होने पर भी विशेष सेवा पति की स्वयं करती हैं, पति के रुचिकर पदार्थों को बना तथा परोस कर बड़े भाव से बैठी खिलाती हैं। पति को अपने ऊपर प्रसन्न जानकर भी, ढिठाई न कर पति के परिहास करने पर भी आप संकोच अंचल को नहीं उठातीं। पति के वचनों द्वारा अपने माता पिता तथा भ्रातादिक का अपमान सुनकर क्रोध करके भौंह को नहीं सिकोड़तीं, वरन् मौन रहती हैं अथवा ऐसा वचन उच्चारण करती हैं कि जिसमें पति के हृदयस्थ भाव का लोप हो जाय। पति के क्रोध को सूचित करती। वदन पर रुखाई देख केला के पत्ता के समान भय से कांपने लगती हैं, मन में विह्वल होकर सम्मुख जाने का साहस नहीं करतीं, पति को कुपथ मार्ग में निरत देख मनमें रूठकर भौंहें नहीं चढ़ातीं परन्तु चातुर्य्यतायुक्त अवरेव से पति का रुख लिये हुए समझाती हैं यदि अपने वचनों का विकास पति के हृदय में नहीं देखतीं तो ग्लानि की बौछारैं पति पर नहीं छोड़तीं। परन्तु धैर्यतायुक्त अपने काम में लगी हुई पति को कुपथ मार्ग से हटा लेतीं हैं। यदि कभी वे सुनती हैं कि दुष्कर्मा स्त्रियों के जाल में हमारा पति फंस गया है तो अपनी चतुरता कतरनी से जाल को कतर अपने नागर को मुक्कर अपने प्रेम जाल में डाल कर फिर कभी भटकने

नहीं घेती हैं। जो अपने पति के मुख से अपनी निन्दा सुनती हैं तो विनम्र हो हाथ जोड़ कर बोलती हैं कि आप आर्य के अतिरिक्त मुझ नीच कुरूपा तथा कुवुद्धिनी को कौन आश्रय देता, जैसी हुं वैसी को अव अपनी ओर निहार निवाहिये। सासु श्वसुर उस वात के करने में लगे हैं जिसको उनका पति मना कर गया है तो उनको कारण वता अपने को उनकी आज्ञा पालन करने में असमर्थ दिखाती पति के वचनों पर दृढ़ रहती हैं कभी किसी के साथ ठट्ठा मारकर नहीं हँसतीं यहाँ तक कि पति के साथ भी ऐसा नहीं करतीं जवतक कि उनका प्राणवल्लभ वरजोरी ऐसी हंसाई को उन के हृदय से नहीं निकाल लेता। पति के चरणों को सकुचते चापती हैं और विशेष ध्यान पति की सुखनींद में विघ्न न होने के लिये रखती हैं और पति के चरणों को इधर उधर नहीं हटातीं। पति से प्रथम उठकर उन्हें प्रणामकर गृहकार्य करना प्रारम्भ करती हैं। जव पति अपने कार्य पर चला जाता है, तो मन में विचारती हैं कि कौन २ काम अभी शेष हैं जिनके करने के लिये स्वामी आज्ञा दे गये हैं। फिर उनको समाप्त कर पतिस्नेहकारिणी पुस्तकें पढ़ती हैं, सन्तान को स्वच्छ रखती हैं, क्योंकि उनके वाहर निकलने से मनुष्य उनके घरकी स्त्रियों के गुण को पहिचान लेते हैं। पति को दुःखी देख भय

करती हुई पूँछती हैं कि आज आप उदास दीखते हो-क्या मुझ दासी पर कारण प्रकट करने योग्य है। जब पति अपने मन की पीड़ा को सुनाता है तब अपनी मीठी २ बातों से पति को धीरज देती हैं और जो धनादिक की आवश्यकता हुई तो जो आभूषण उनके अंग पर होते हैं उनको उदारता से पति को समर्पण करती निवेदन करती हैं कि इन आभूषणों द्वारा कार्य को कीजिये। वैदेही! स्त्री दरिद्रता होने से पति कोष से स्नेह द्रव्य न निकाले नहीं वह भी व्यय होजाता है और दरिद्रता ज्योंकी त्यों बनी रहती है। स्त्री को दरिद्रता देख कातर: हृदय न होना चाहिये जैसे अन्धकार मरीचिमाली की प्रभा देखतेही भगजाता है वैसेही दारिद्र्य भी मन वच्च कर्म से पतिसेवकिनी स्त्री के भवन में नहीं ठहरता। जिसका पति विदेश में है वह चकोर की नाईं अपने पतिरूपी चन्द्रमा को सेवन करती है। कभी शृंगाररस उपजानेवाली बातों को संग्रह नहीं करतीं और न शृंगार करती हैं, सदाचारिणी स्त्रियों के संग बैठती हैं वे अपने को ऐसा बना लेती हैं कि अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों में पुरुष भावही नहीं देखतीं। घर के बाहर नहीं निकलतीं यदि आवश्यकतावश निकलती हैं तो भद्र स्त्रियों के साथ शिर नीचे करके मार्ग को लज्जा की सीख सिखाती हैं मार्ग में खड़ी होकर किसी स्त्री से भी

नहीं बतलातीं। अपने शरीर तथा वस्त्रों को स्वच्छ रखती हैं क्योंकि भृंग समान पति स्वच्छ शरीर तथा वस्त्र देख कर मोह जाता है। वचनों के उच्चारण करने में सदा वाणी पर दृष्टि रखती हैं कि कोई शब्द अनर्गल न निकल जाय-पति के दिये हुए धन को संयम से रखती हैं और उसको पति की धरोहर समझती हैं फिर उसको किसी अंश में व्यय नहीं करतीं-जो पति अपने हाथ से यह कह कर देता है कि "यह तुम अपने व्यय के लिये लेव" उसको भी अपने पास रख बड़े अवसर पर उलटे पति को देकर उसकी आनन्द मूलोल्लासिनी बन जाती हैं, वे अपने पति से कदापि कोलचा नहीं करतीं, दुष्ट स्त्रियों के बहकावे से पति से किसी प्रकार के वस्त्र तथ आभूषण नहीं मांगतीं, वे समझती हैं कि जैसे चन्द्रमा प्रसन्न होकर अपनी किरणों से पृथ्वी को आभूषित कर देता है वैसे ही पति के प्रसन्न होने पर स्त्री आभूषण वस्त्र तथा सरस स्नेह से पूजित होती है। यदि पति रोग से पीड़ित है तो उसकी बहुत दिन तक सेवा करते ऊब कर मनमें कोई अन्य भाव नहीं आने देतीं। रोगित दशा में पति को धीरज देती हुई नारायण से आरोग्य होने के लिये निवेदन करती हैं, उसकी आर्त पुकार को सुन कर मधुसूदन भगवान् उसके पति को आरोग्य कर देते हैं देखो, सावित्री अपने पति को यमराज से छुड़ा लाई थी। अपने

पति के कुकर्म किसी पर प्रकट नहीं करतीं वरन् उनको गंभीरता शिला से दावकर चूर्ण कर डालती हैं, जब कभी पति रोष करके उनको ताड़ित करता है तो मुंह मोड़कर गृह के कोने में नहीं बैठतीं-वरन् दीन वचन कहकर क्षमा मांगती हैं, स्त्रियों के वीच चवाव नहीं करतीं, उन स्त्रियों के संग तो कभी बैठती नहीं, जो सदा अपनी वाणी को पर-निंदा तथा कूट से सरावोर रखती हैं, ऐसी स्त्रियों से वे अभिमानिनी भी कही जाती हैं परन्तु वे कुछ विचार नहीं करतीं, उत्सव आदि में किसी के वस्त्र तथा गहना मांगकर नहीं पहिन जातीं ऐसा करने से प्रतिष्ठा न होकर उनकी हँसी होती है और वे गंभीरता तुला से उठ जाती हैं क्योंकि वह स्त्री जिसने अपने वस्त्र तथा आभूषण मांगे दिये हैं सब से जता देती है कि अमुक २ मेरी वस्तुएँ उनके अंग पर झलक रही हैं। किसी स्त्री के साथ शृंगार रस की चर्चा नहीं करतीं, अपने पति को अपनी सेवा से वश करलेती हैं, हे वैदेहि ! वह स्त्री नहीं है जिसने अपने पति को अपने वश कर अन्य स्त्रियों को उसकी क्रूर दृष्टि द्वारा न भस्मीभूत कराया ।

——:०:——

कर्कशा।

अब कर्कशा स्त्रियों के लक्षण सुनो वे सदा अपनी वाक्य अग्नि से पति अरणी को जलाया करती हैं, भोजन बनाकर प्रथम आप खाकर उसी थाली में, जिसमें दो एक सीथ उच्छिष्ट के लगे हैं उसको पतिके सन्मुख इतने जोर से सरकाती हैं कि उष्णभोजन (दाल) विचारे पतिके पाओं को जलादेती है। घर तथा द्वार बहारने में जिदों का बास बताती हैं। पति जिस बातको करने को कहै, उसमें अपने ऊपर आज्ञा चलाते देख तथा अपनी स्वतन्त्रता में विघ्न जान तत्काल प्रतिकूल उत्तर देकर पति को वाक्प्रहार से कष्ट देती हैं, पति के साथ रिरिआय कर सम्बोधन करना तो वह सामगान समझती हैं। काम न करने के कारण महीने में दो चार बार रुजग्रस्त हो जाती हैं, जब बिचारा पति भोजन बनाकर उनको भोजन कराता और जूठे बरतन धोता है। हे वैदेहि ! इनके जीवित ही सकल नरक नाक सिकोड़ते हैं, पति के रति के सब अंगों में चतुर होते हुए भी पराये पति को भजती हैं और सरल वृत्ति छोड़ नटिनी की नाईं अपना वेष बनाकर मार्ग में अपने नेत्ररूपी सींगों से खोदती चलती हैं, लज्जाजनक अंगों के वस्त्रों को मूँदती तथा खोलती हैं जिसमें पुरुषों की वहाँ दृष्टि पड़े, ये नरकगामिनी पतिसेवा

अमृत के रस को न जानकर भिलावां के रस को ही श्रेष्ठ समझती हैं । अपने कर्मों द्वारा विधवा होगई हैं परन्तु वे अपने में सधवा भाव टिकाये अहिवाती स्त्रियों के साथ होड़ बद्कर शृंगार में आगे निकल जाती हैं, मेला ठेलों का नाम सुनते ही वहाँ युवा महिषी की नाईं छाती उठाकर पहुंचती हैं, पुरुषों से सदा हँसकरही वतलाती हैं । पर पुरुष को प्राप्त होने की युक्तियों में अपने मन को रखती हैं । लोक के दिखाने के निमित्त तीर्थयात्रा करती हैं परन्तु वहाँ भी उन दुष्टाओं के जाने का कारण पापही होता है । हे वैदेहि ! ऐसी स्त्रियों के किसी के तो शरीर में कीड़ा पड़ जाते हैं, कोई कोढ़िन होजाती है किसी के अंग वातसे शून्य होजाते हैं, कोई नेत्रहीन होजाती है और कोई अपने वंश में अकेली रहकर वृद्धावस्था में थोड़े पानी के लिये तरसती है और दूसरे जन्म में नीच योनि में प्राप्त हो अंगहीन लुंज गूंगी होती है ।

युवा अवस्था ।

हे सीता ! युवा अवस्थामें उमंगरूपी जलकी बड़ी बाढ़ आती है, स्त्री वेलि को उचित है कि पति अथवा पिता, माता रूपी वृक्ष में लपटी रहै यह युवाअवस्था बड़ा दुर्गम वन है जिसमें काम मृगराज पथिकों को अपने पंजों से मार

डालता है। यह पतिव्रतरूपी अस्त्र को देख भग जाता है, आगे चलकर शृंगार रूपी वृकादि घेर लेते हैं, वे सुशील वात सरलता शस्त्रों से नष्ट होजाते हैं स्त्री के लिये युवा अवस्था बड़ी दुःखदायक है सदा दुष्ट पुरुषों की कुदृष्टि पड़ती है तिसको वह (युवा अवस्था) अपना में वास दे देती है और यह (कुदृष्टि) स्त्री के हृदय में घुसने को छिद्र ढूँढ़ा करती है।

कुटिला कुटनी।

जैसे वन के रहने वाले हाथियों को उनकी जाति वाले ही पकड़ा देते हैं, वैसे ही स्त्री को बड़ा भय अन्य स्त्रियों से रहता है, ये कुटिला कुटनी क्या नहीं कर डालतीं, इनके पास कदापि न बैठे-ये सदा मीठी बोली बोलतीं, जिसके साथ भाषण करतीं उसकी हितमानी बन उसी के मन के अनुहार बातें करती हैं। जब जानलेती हैं कि उनकी धूर्त-तासानी बातों के जाल में स्त्री मत्स्य पड़गई है तो उससे मनमाना काम करवाकर उसको भ्रष्ट करदेती हैं—योग्य स्त्री को इनके पास न बैठना चाहिये, सहवास होजाने से एक दूसरे की वृत्ति (प्रकृति) सरिता परस्पर सम्मिलन करती हैं—ऐसी स्त्रियाँ जो घर जांय तो प्रथम दिन ही उनके साथ ऐसा निठुर बर्ताव करै कि वे दूसरे दिन फिर न आसकैं।

वे बड़ी अवरेव से बातैं करती हैं—कभी २ वे अपना कुछ द्रव्य व्यय कर अपनी घात ताकती हैं-बस विशेष करके स्त्री को इनसे बचकर चलना चाहिये। हे सीता! स्त्री जाति के बनाने में ब्रह्मा ने इतनी करुणा की है कि केवल अपने पति को शुद्ध भाव से सेवन करै तो इस संसार में मन बाँछित पदार्थ भोगकर अन्त अवस्था में पति के साथ स्वर्ग को जाकर प्रलयपर्य्यन्त वहाँ सुख भोग करती है।

अनसूयाजी का प्रसाद।

हे पुत्री जानकी! तुम सब प्रकार से पतिव्रत धर्म में परायण हो, जो तुम्हारे संग सदा छाया के समान चलता रहता है। तुमको राम प्राणों से अधिक प्यारे हैं और वैसे ही तुम उनको प्यारी हो—अब चलो दोनों भ्राताओं को मधुर फल देवैं, और इन जीर्णता रहित वस्त्रों को तुम स्वीकार करो-हम तपस्विनी का यह प्रसाद लेने में संकोच न करना चाहिये। तब वैदेहीजी मनमें ठिठुक रहीं अनसूयाजी सीताजी के भाव को जानकर रामचन्द्रजी से बोलीं, कि हे राम! हम वैदेही को कुछ वस्त्र देना चाहती हैं परन्तु उनके लेनेमें वह तुम्हारी आज्ञा चाहती हैं। तब रामचन्द्रजी सीता जी की ओर देखकर बोले कि इन तपस्विनीजी का प्रसाद ग्रहण करो। फिर सीताजी ने सादर वस्त्रों को लेलिया।

शरभंगजी के आश्रम में रामचन्द्रजी ।

प्रातःकाल रामचन्द्रजी अत्रि तथा अनसूयाजी से विदा हो आगे चले—कुछ समय के पश्चात् शरभंगजी का आश्रम देख पड़ा–वहाँ पहुंच मुनि को प्रणाम कर विश्राम किया। शरभंगजी बोले कि भला यह आपकी क्या बानि है कि सारी आयु आपके स्मरण में बितावैं, जब वह स्वयं आपके निकट जाने को तत्पर हो तब आप उसको दर्शन देने चलते हो। ऐसा कहकर हँसते हुए योग अग्नि द्वारा पार्थिव शरीर को त्याग कर बड़भागी मुनि साकेत लोक को चले गये।

मार्ग में सुतीक्ष्ण ।

फिर रामचन्द्रजी सुतीक्ष्णजी के यहाँ गये जिनके प्रेम अनुराग के आगे प्रभु स्वयं विह्वल होगये। और उक्त मुनिजी को साथ लिये हुए मुनि अगस्त्यजी के स्थान को चले। आगे बढ़कर सुतीक्ष्णजी को आते देख वैदेही सहित दोनों भ्राताओं ने चरणों में पड़कर दण्डवत् किया–तब मुनिराज रामचन्द्रजी को बड़े अनुराग से हृदय में लगाकर बोले—इसका ज्ञान रखते हुए कि आप अयोध्या से पयान कर वन में विचर रहे हो तब भी जाकर वहाँ दर्शन न किया

पर यह ढिठाई, कि आपको यहाँ आने का कष्ट दिया, आप के स्थान के पहुँचने के जितने मार्ग हैं मैं उनके द्वारा आप के निकट आया जाया करता हूँ–परन्तु यह सरल सगुण मार्ग जीव पथिक को बड़ा सुखदायक है। यह सुनकर राम मुसकाने लगे। फिर अगस्त्यजी ने राम को अर्घपाद्य दिया और सुन्दर मधुर फल भोजन करने को दिये। जब कई दिन अगस्त्यजी के यहाँ बीत गये तब एक दिन रामचन्द्रजी अगस्त्यजी से बोले कि कोई सुखदायक स्थान बताइये, जहाँ पर शेष अवधि के दिन व्यतीत करूं। अगस्त्यजी बोले कि यहाँ से थोड़ी दूर पर पंचबटी नाम स्थान है जिसके नीचे नर्मदा घहराती बह रही हैं वह स्थान आपके बसने के योग्य है। फिर अगस्त्यजी ने कुटी से एक धनुष को लाकर दिया और मुसकाते हुए बोले कि जिस निमित्त आपको बन आना पड़ा है उस कार्य्य में एक इस अपने सहायक को लीजिये। तब रामचन्द्रजी उसे सादर ग्रहण कर तथा प्रणामकर तीनों जन पंचबटी की ओर चले।

पंचबटी।

मार्ग में अनेक बृक बराह सिंह देखते तीनों जनों ने एक वृक्ष रहित आरण्य में प्रवेश किया जैसे दीपक प्रज्वलित हो उठने से चारों ओर प्रकाश छाजाता है वैसेही रामचन्द्रजी

के चरणों के स्पर्श करते ही वह उजाड़ वन सुन्दर वृक्ष, गुल्म, वेलि लतादिकों से संयुक्त हो गया, अनेक प्रकार के पक्षी बोलने लगे-जो गोदावरी रोती स्त्री के समान देख पड़ती थी सोई अब पतिप्राप्त स्त्री के समान हँसती देख पड़ने लगी। उस वन में एक स्थान पंचवटी नाम का था जहाँ पर सीता लषण सहित रामचन्द्रजी पर्ण कुटी रचकर रहने लगे। उस वटी में वृक्षों की सघनछाया से सूर्य्य भगवान् की किरणें पृथ्वी को नहीं देखने पाती हैं मधु-गन्धाढ्य सुगंध से वह पंचवटी सुगंधित तैल लेपन किये हुए एक सुन्दरी के समान शोभा दे रही है—पर्वतों के ऊंचे शिखरों से झरना झर रहे हैं मानों वे स्नान करते हैं। मृग गण छाया में बैठे पूँछ हिला रहे हैं मानो सूर्य्य देव को चिढ़ाते कहते हैं कि अब तुम हम पर अपनी मध्यान्ह की प्रचंड तपनि से मिथ्या जल का भान नहीं करा सक्ते हो। पक्षी बोलते २ अपने अंगों को खुजलाने लगते हैं मानों यह कहते हैं कि शरीर व्यथा सुख के कामों में विघ्न डाल देती है। सब पक्षीगण कलोल करते आनन्द कर रहे हैं परन्तु चातक उनकी ओर न दृष्टि कर अपनी विरही टेर सुना रहा है। पर्वतों के बीच में होने से गोदावरी बहुत नीचे बहती चंचल स्त्री की तरह भागी जा रही है, उसमें जो भँवर पड़ जाते हैं सो वह मानों खड़ी होकर अपने पीतम को पीछे

घूमकर निहारती है । वक, जलकुक्कुट, पारावत आदि कीट-भक्षी पक्षी उस नदी के किनारे अपनी घात लगाये बैठे हैं; जैसे भिक्षुक धनवानों के द्वार पर अड़े रहते हैं, वृक्षों के छोटे पौधे वायु के लगने से डोलते हैं मानों शिर हिला हिला कर बालक गण नाचते हैं-वृक्षों से अनेक प्रकार के फल गिरे पृथ्वी में जीवों के खाने के लिये पड़े हैं, मानों सज्जन अपनी सम्पति का येग्य उपभोग कर रहे हैं । जो मृग गण रामचन्द्र की कुटी के आस पास चरते हैं वे उनसे पीड़ित नहीं किये जाते—जैसे मनुष्य अपने कुटुम्ब पर कुदृष्टि नहीं छोड़ता-छोटी २ लताओं में हरित वेलि फैली शोभा का आगार बना रही है जैसे बुद्धि नीच जनों में रह कर उनको भी आदरभाजन बना देती है । वृक्ष अपने पल्लवों से पवन को रोक लेते हैं जैसे कोई अपने मित्रको हाथ पकड़ कर हंसता हुआ ठहरा लेवै । ऐसी सुखदाई पंचवटी में रामचन्द्रजी बहुत काल तक रहते रहे ।

राम के सम्मुख शूर्पणखा ।

एक दिन घूमती २ रावण की भगिनी शूर्पणखा रामचन्द्रजी के स्थान पर आ निकली-वह रामचन्द्रजी को देखते ही काम बाण से घायल होगई, तब अपना कुरूप दुराय तथा सुन्दर वेष बनाय राम के निकट जाकर हंसती

हुई बोली, अहो बड़े भाग्य की बात है कि आप ऐसे सुन्दर पुरुष वन में मिले हो, यद्यपि मुझ स्त्री के एकांत में आने का कारण आप पुरुष जानही गये होंगे तद्पि अपने भाव को गोप्य न रख सककर आप पर प्रकट करती हूँ कि आप मेरे पति होवें। इतना कह चतुर वेश्या के समान हाव भाव करने लगी। तब रामचन्द्रजी मुसकाते हुए बोले वह देखो कुटी के भीतर एक स्त्री फलाहार का प्रबन्ध कर रही है वह हमारी भार्य्या है, इससे हम तुम्हारे बरने में विवश हैं, हां एक बात हो सक्ती है कि वह जो पश्चिम की ओर वाली कुटी है उसमें हमारे छोटे भाई रहते हैं उनके साथ स्त्री नहीं है। हे सुलोचनि, स्त्री हीन युवा पुरुष के पास किसी रूपकी स्त्री जाय वह उससे प्रेम करता है, फिर तुम तो सुन्दरी बाला हो--देखो तुम्हारे कुच श्रीफल की नाईं हैं, भौंहैं रूपी धनुष पर दृष्टि रूपी विष बुझा बाण चढ़ाये हो-तुम्हारे चढ़ा उतार भुजा प्रिय कुचों की दोनों ओर से रक्षा कर रहे हैं, फिर देखो तुम्हारा नीलाम्बर उड़कर स्वर्ण रंग की त्रिवली दिखा रहा है। तुमको इतने गुणों से सम्पन्न देख लक्ष्मण अवश्य अपनी भार्य्या बनावैंगे। इस हास्य भरी अपनी प्रशंसा को सुनकर उक्त निशाचरी लक्ष्मण के निकट जाकर उनकी कुटी के द्वार पर कुछ झुककर दोनों हाथों से उसके ऊपर के बांसों को पकड़ कर बोली—हे नवल नागर,

हम तुम्हारी भार्य्या होने आई हैं हमारे संग रह कर इस वन में बिहार कीजिये । तव लक्ष्मणजी अपने बड़े भ्राता के परिहास को जानकर उससे बोले कि तुम्हारी चतुर बुद्धि ने जिसको प्रथम पति बनाने को निर्धारित किया था, वही योग्य था-हम सेवक की स्त्री होने में क्या लाभ होगा ? स्त्रियाँ पति के साथ स्वतन्त्र हो विहार करना चाहती हैं परन्तु हम अपने को स्वप्न में भी स्वतन्त्र नहीं देखते—इससे हे ललने ! तुम उनके निकट को लौट जाव । अस्तु वह फिर रामजी के पास आई और बोली-मेरी सुन्दरता आप से प्रशंसित हो चुकी है तब आप मेरे आलिंगन करने में क्यों बिलंब करते हैं क्योंकि स्त्री के साथ रहते हुए भी पुरुष अन्य सुन्दर स्त्री को देख उसके पाने की इच्छा करते हैं । रामचन्द्रजी बोले-अच्छा एक बार फिर लक्ष्मण के पास हो आओ । जब ब्रह्मचारी लक्ष्मण ने अपनी कुटी के निकट फिर शूर्पणखा को देखा और राघव को मुसकाते नाक तथा कान काट डालने का संकेत करते देखा तब लषण लाल ने खड्ग से उस राक्षसी के नाक कान काट डाले और बोले कि ये दोनों अंग तेरी सुन्दरता में विघ्न करते थे—अब तुझ को पति ढूढ़ने में कष्ट न होगा ।

——:※:——

खरदूषण वध।

जब शूर्पणखा के नाक कान काट डाले गये। तब वह पीटी गदहों के समान चिल्लाती भागी और जाकर खरदूषण के पास बड़ा विलाप करके रोने लगी और सब वृत्तांत वर्णन किया। वे अमितबली राक्षस सुशिक्षित १४००० सेना को लेकर शूर्पणखा के दिखाये हुए मार्ग पर पंचबटी की ओर चले। जब पश्चिम तथा दक्षिण की ओर हाहाकार शब्द सुन पड़ा तथा पवन बन्द होगया और आकाश ने धूरि से श्वेत वस्त्र ओढ़ लिया तब रामचन्द्र लक्ष्मण से बोले देखो यह आकाश में धूरि दिखाई पड़ती है और क्षण २ में मेघ समान शब्द होता है दृढ़ अनुमान है कि उस निशाचरी के नाक कान काट डालने से निशाचरों की सेना हम से युद्ध करने आती है सो यह जो गोदावरी के किनारे वाले पर्वत में गुफा बनी है उसमें वैदेही को लेजाकर सावधानी से रक्षा करना हम इन दुष्ट राक्षसों का नाश करैंगे क्योंकि यह दक्षिण दिशा इन दुष्टों द्वारा बहुत पीड़ित हो रही है। ऐसा कह वीरवेष बनाय धनुषबाण हाथ में लेकर शत्रु के आने की प्रतीक्षा करने लगे। इतने में राक्षसों की सेना संमुख देख पड़ी परन्तु रघुबंशमणि धनुष की नोक को पृथ्वी में टेक कर उनकी ओर सहज निर्भय दृष्टि से निहारने

लगे । उनमें से कोई एक विचारवान् राक्षस बोला कि इस कामाधिका शूर्पणखा ने इस युवाके रूप को देख कर अवश्य अपना तात्पर्य्य प्रकट किया होगा परन्तु इस वीर ने उसको बारम्बार पाप कर्म की हठता करते देख उसके नाक कान काट डाले हैं । मेरे विचार में इस पुरुष ने न्याय करते हुए दया दिखाई है कि शूर्पणखा को मार नहीं डाला, देखो इसके बदन से वीरता की छटा झलक रही है मैं निश्चय करता हूँ कि इस वीरपुंगव के साथ युद्ध करके कल्याण न होगा–इससे घर को लौट चलो । तब राक्षसों का स्वामी खर बोला कि ऐसा भी हो परन्तु भगिनी को विशेष अंगहीन देखने से हृदय भभक उठता है । इस कारण इस वनवासी को अवश्य मारो और शूर्पणखा को संतोष दो । फिर चौदह हजार राक्षस बगमेल होकर दौड़े । रामचन्द्र को अकेला और उनको बहुत देख देवतों ने आकाश में हाहा-कार मचाया । इस ओर वीरेन्द्र राघव ने साधारणतः धीरे से धनुष को वाम हाथ से थाम कर टंकोर किया तिसको सुन सब शंकित खड़े होगये जैसे पथिक मार्ग में नदी को देख खड़ा होजाता है । फिर वे बाणों की वर्षा रामचन्द्र पर करने लगे । इस ओर रघुनाथजी अपनी हस्तलाघवता से निशाचरों को मारने लगे । जब तक वे मारने की घात करें तब तक सव्यसाची राम प्रति राक्षस के एक २ शत बाण

मार चुकते हैं। दो घड़ी में उन १४००० राक्षसों को रामचन्द्रजी ने यमसदन को भेज दिया फिर जैसे अहेर पाकर मृगराज प्रसन्न हो अपने स्थान को लौटता है वैसे ही रामचन्द्रजी मंद मुसकाते बाण को हाथों में फेरते सीताजी के निकट पहुँचे और सीताजी ने गुफा से निकल कर राघव को प्रणाम किया। इसके पश्चात् तीनों जन आनन्द युक्त उक्त कुटी में गये।

रावण के सम्मुख शूर्पणखा।

जब शूर्पणखा ने खरदूषण का विनाश देखा तो लंका में जाकर रावण के सम्मुख पृथ्वी में पड़ कर रोदन करने लगी। तब भगिनी का करुणा युक्त रोदन देख कर दशमुख बोला कि तुम्हारे नाक कान कटे हुए हैं उनसे रक्त की धारा बह रही है बताओ उनको किसने काटा है। तब शूर्पणखा बिना नाक के प्रेतिनी सी मिनमिनाती बोली कि मैं गोदावरी के तट पर पंचवटी में घूम रही थी कि इतने में एक श्याम और दूसरे गौर वर्ण के पुरुष देख पड़े उस पिछले ने झपट कर मुझ अनपराधिनी के नाक कान काट डाले जब मैं रोती भागी आती थी तो देखा था कि एक परम सुंदरी स्त्री उनकी कुटीमें बैठी है। हे भ्राता ऐसी! स्त्री किसी लोक में नहीं है। मुझको इस दशा में देखते ही

खरदूषण १४००० सेना को लेकर उनसे युद्ध करने गये परन्तु अकेले श्याम शरीर वनवासी ने उनको क्षणमात्र में मार डाला। ऐसा कहकर फिर रोने लगी। तब रावण भगिनी को संतोष देते हुए बोला कि अब शोक को न प्राप्त हो हम तुम्हारी रुचि के अनुकूल काम करेंगे।

मारीच के यहां रावण।

फिर रावण के मन में मारीच का स्मरण आया तब वह उसके यहां गया। मारीच अपने द्वार पर निशाचरेश को आया जान मनही मन कहने लगा कि अवश्य कुछ विशेष कारण है जो यह यहां अकेले आया है। मारीच बड़े आदर से दशग्रीव को मिला। फिर विनम्र भाव से पूंछा कि महाराज का आना कल्याण हो कहिये यह किस निमित्त हुआ है। तब रावण ने सब कथा कह सुनाई और स्वर्णमृग होने को मारीच से सहायता मांगी तिसको सुन वह कुछ देर चुप रहा फिर बोला कि करने को आप चाहे जो करें, परन्तु यह आप निश्चित रूप में जाने रहें कि ऐसा करने में आपपर बड़ी भारी विपत्ति आने वाली है, देखो मुझको आप भी छल तथा युद्ध-कुशल कहते हो परन्तु मुझको उस घनश्याम राम ने वायव्यास्त्र से उड़ाकर यहां गिरा दिया। और ऐसा करने में उसने मेरे साथ दया

की-क्योंकि उसी स्थान पर मेरे समान पराक्रमी सुबाहु ससैन्य उन दोनों कुमारों द्वारा मार डाला गया-फिर यह बात उनके बालपने की है।

मारीच के यथोचित बचन।

हे दशशीश! मनुष्य जब अपने प्रतापरूपी पतंग को आकाश में बहुत ऊँचे पहुँचा हुआ देखै, तो उसको आगे न बढ़ाकर उतनी ही सीमा तक रक्खै अथवा अपनी ऐसी प्रबल उड़ान शक्ति की पारिख कर उसे नीचे कर लेवे, तो उसके सन्मुख कोई विघ्न नहीं आते। और जो वह उसको आगे बढ़ाता जाता है तो शक्ति रूपी रज्जु टूट जाती है और वह प्रताप से च्युत होजाता है फिर जहां कहीं आप को भय हुआ है इस मनुष्य जातिही से हुआ है इस से आप ऐसे हानिकारी विचार को छोड़ कर लंका को लौट जाइये।

रावण की धमकी।

तब मित्रों को रुलाने वाला रावण बोला कि हे मारीच मेरे दिगंतव्यापी प्रताप को जानते हुए भी का पुरुषों के प्रति जो शब्द कहे जाते हैं वे तुमने कहे हैं, हम तुमको अपना बड़ा मित्र जानकर इतनी दूर आये थे-क्योंकि

जिसके पास विश्वास तथा स्नेहरूपी पिंजरा में मन फँस जाता है तो मनुष्य उसीके पास जाता है। तुमको जो हमारी सहायता करनी हो तो आओ इस आकाशगामी रथ पर बैठ कर जनस्थान को चलें—उन दोनों भाइयों के मार डालने में कितनी बात है। जब तुम स्वर्ण मृग होकर उनकी कुटी के पास चरने लगोगे तब वे दोनों भाई तुम भागते हुए के पीछे दौड़ेंगे। फिर इसी बीच में मैं उनकी स्त्री को हर ले जाऊँगा। यदि इस हमारी बात को तुम्हारा मन नहीं करना चाहता तो देखा जायगा, हम लंका को लैाटे जाते हैं।

परबश मारीच।

मारीच रावण की ऐसी क्रोध भरी बातों को सुन मन में कहने लगा कि जैसे थलचारी सर्प जल में उसकी लहरों द्वारा बूड़ता उतराता है वैसेही मनुष्य परबश होने में दुःख पाता है। मैं देखता हूँ कि अब यह शरीर किसी प्रकार रक्षित नहीं रह सका, तब भला यही है कि जिसके बाण कृपा करके एक बार मुझको जीवन दान दे चुके हैं अब उन्हीं राम को यह पापमय शरीर अर्पण करूं।

——:※:——

जन स्थान में मारीच के साथ रावण।

तब रावण तथा मारीच दोनों रथ पर चढ़ जनस्थान पहुँचे। मारीच स्वर्ण का सुन्दर मृग बन रामचन्द्र की कुटी के निकट चरने लगा। कभी कान उठेर कर सम्मुख देखता उछलने लगता और कभी तृण खाता अपने पिछले पगों से शिर खुजलाने लगता और कभी चरते २ कुटी के निकट जाकर जलपात्रों में मुँह डाल देता था।

स्वर्णमृगपर सीता जी की दृष्टि।

थोड़ी देर में सीताजी ने देखा कि एक अनूपम मृग चर रहा है तब रामचन्द्रजी से विनय करती बोलीं कि आर्य्य, यह मृग जिसके अंग पर सूर्य्य की किरणों के पड़ने पर चपला सम प्रकाश प्रकट होता है सो इसके मृगचर्म पर आपको बैठा कर सेवा करना चाहती हूँ। रामचन्द्र जी बहुत अच्छा कह कर लक्ष्मण से बोले कि यह बन बड़ा भयानक है फिर राक्षसों से शत्रुता होगई है, बड़ी सावधानी से वैदेही की रक्षा करना। ऐसा कह अहेरकुशल राम मृग की ओर झपटे।

मृग के पीछे राम ।

और मृग रामको अपने पीछे आता जान भागा। उसने रामचन्द्र को बहुत दूर ले जाने में बड़े छल किये। जब रामचन्द्रजी ने देखा कि बहुत दूर निकल आये हैं और इस चपल मृग की गति अधिक होती जाती है, तब पथभ्रामक वाण को छोड़ आठों दिशाओं से उसको घेर लिया। जब मारीच ने देखा कि किसी ओर भागने की घात नहीं है तब मृगरूप दुराय अपने राक्षसरूप में हो राम चन्द्र की ओर दौड़ा–तिसको आता देख राम ने एक ऐसा वाण मारा कि वह कटेहुए कगार के समान घहराय भूमि में गिरपड़ा। मरते समय छलकारी निशाचर ने बड़े करुणास्वर से लक्ष्मण का नाम पुकारा।

चिन्तित सीता।

तिसको सुन वैदेही बड़ी व्यग्र हुई और लक्ष्मण से बोलीं कि जिस दिशा में तुम्हारे भाई आखेट करने गये हैं उसी दिशा में तुम्हारा नाम लेकर किसी व्यक्ति ने पुकारा है–हम लोगों के नामों को इस बन में कौन जानता है? बड़े विचार के साथ मेरे मुख से ये शब्द निकलते हैं कि तुम्हारे भाई संकटग्रस्त हैं और उन्होंने तुमको पुकारा है सो शीघ्र जाकर देखो कि वह कहां हैं–देखो मेरा दहिना

नेत्र फरकता है दहिनी भुजा भी फरक २ कर रह जाती है अब तुम जाने में देर न करो । तब लक्ष्मण जी बोले, अम्ब, आप प्रभु के बल को जानती हुई भी स्नेह से ऐसे भीरु शब्द उच्चारण करती हो, वीरों की स्त्रियां ऐसी कातरहृदया नहीं होतीं, सृष्टि में ऐसा कोई नहीं है कि हमारे भ्राता से विजय पाकर अपने नगर की स्त्रियों से पूजित हो—आप शोक को न प्राप्त हो—रहा नाम पुकारने का संशय, सो मैं अनुमान करता हूँ कि वह मृग न हो कर कोई राक्षस था और मेरे नाम के पुकारने में उसने यह छल किया है कि उस शब्द को सुनकर "हम" भ्राता को संकटग्रस्त समझ उनके निकट जावें और इस ओर तुम को अकेली जान उस के साथ के अन्य राक्षस जो वन में कहीं छिपे होंगे भक्षण कर लेवें-अंत में रामचन्द्रजी के प्रेम ने सीता जी के मुखसे दो चार कटु शब्द लक्ष्मण जी के लिये निकलवाये तिन शब्दों के प्रहार से लक्ष्मण का हृदय झांझर होगया और वह शिर नीचे किये हुए बोले, हे माता ! दैव को कुछ ऐसा ही देखना रुचिकर है। अच्छा आप इस रेखा से, जिस को मैं अपनी युद्ध विद्या के प्रभाव से एक अभेद्य व्यूह रचे जाता हूँ और जिसमें एक बार काल भी नहीं घुस सक्ता, सो उसके बाहर न निकलियेगा । ऐसा कह लक्ष्मणजी अपने घाव की पीड़ा से दुःखित राम को ढूँढ़ने चले ।

यतीबेष में रावण ।

इस ओर यती का बेष धर रावण राम की कुटी के पास गया-तिसको एक मुनि जान कर जानकी जी ने प्रणाम किया और उसने पतिव्रत रक्षित रहने का आशीर्वाद दिया । जब वह वंचक यती बोला कि मैं क्षुधित हूं—भिक्षा की आशा में तुम्हारी कुटी पर आया हूं, तब सीता जी मधुर फल रेखा के भीतर से देने लगीं । तब उस कुटिल दुराचारी ने कहा कि मैं स्वतन्त्र वनचारी होकर बांधी भिक्षा से अपने अन्तःकरण को विषय बंधन से बांधना नहीं चाहता—यदि तुमको देना हो तो उस रेखा से बाहर निकल कर दो । सरल बृत्तिधारिणी सीता बाहर निकल कर फल देने लगीं उसी बीच में देखती हैं कि वह यती न होकर दशशीशधारी रावण खड़ा है । जैसे उसने सीता के पकड़ने को हाथ लपकाया वैसे उसके मन की कुवासना को जान सीताजी बड़े जोर से लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारने लगीं और काली के समान क्रोध में भरी बोलीं, दुष्ट तू बरती हुई अग्नि में हाथ डालना चाहता है तू नहीं जानता कि जनस्थान में १४००० राक्षस दो घड़ी में अकेले रघुवंशमणि ने मार डाले हैं उनकी मैं स्त्री हूँ । यहाँ से तू शीघ्र ही भाग नहीं तो इस तेरे शरीर के अंगों को गोदावरी के

जलचर नोच २ खावेंगे। जब देवतों ने देखा कि यह पाप-कारी मैथिली को अवश्य हर लेजायगा-तब उन्होंने पवन को समयानुसार सहायता करने को भेजा-जैसे रावण सीता को पकड़ने को हुआ कि वायु ने सीता को अपनी गोद में उठालिया और इस बीच में अपनी गति सीता तथा रावण के बीच इतनी प्रबल कर दी कि रावण स्थित पवन को पकड़ सीता जानता हुआ रथ पर चढ़कर चला।

सीताहरण।

तब सीता बड़े करुण स्वर से चिल्लाकर रोने लगीं-हे कोशलेश! मुझको यह राक्षस हरे लिये जाता है। हे लक्ष्मण! मैं तुमको असह्य शब्दों के कहने का शीघ्र फल पागई-मुझ अभागिनी को सदा के लिये बिछुड़ते जान आप रक्षा करो। हे प्राणनाथ! कहाँ हो इस वन में कहीं अवश्य हो परन्तु मेरे पापों के फलों के उदय होने से मेरी आर्त पुकार को नहीं सुनते-हे वाणी, तू ही मुझको महा विपत्ति में देख अपनी शक्ति से भी आगे बढ़कर मेरे करुणारमण के कानों तक पहुँचने में शीघ्रता कर-हा तुम आजानुबाहु को न देख सकूंगी। हे मृगगणों! तुम पृथ्वी पर मुख ऊपर को उठाये दौड़े चले आरहे हो-पक्षीगणो तुम मेरे पीछे किकिहाते अपना को असमर्थ बताते हो-सो तुम लोग मेरे

प्राणवल्लभ से इस दुष्ट का कुकर्म कहना-हे गोदावरी तुम भी प्राणनाथ को इस पापी की विश्वासघातकता बताना-हे वृक्षो तुम मेरी इस दशा को देख दुःख के मारे अपनी शाखाओं को न थांभ सक कर उनको फारे वहाये देते हो सो तुम मुझ अनपराधिनी की गुहार सुनाना ।

रावण के मार्ग में विघ्नरूप जटायु ।

हे पिता जटायु ! मैं रामचन्द्र की भार्य्या सीता हूँ जिसकी आप रक्षा करते थे सो इस पापकारी राक्षस द्वारा हरी जाती हूँ रक्षा करो, पिता रक्षा करो । जटायुजी ने सीता के करुणा भरे बचनों को सुनकर पर्वत के समान रावण के ऊपर कूद अपनी चोंच से दश शिरों को दाव बड़े जोर से पृथ्वी में पटका जिससे रावण मूर्छित होगया। फिर उठकर युद्ध करने लगा-चोंच से पकड़ तथा पंजों से दाव जटायु ने रावण की कई बाहुओं को उखाड़ लिया-और चोंच तथा पंजों से उदर में बहुत घाव करदिये-जिनसे रक्त की धारें बहने लगीं-जब वीरराज रावण को जटायु ने शिथिल करदिया और वृद्धावस्था से आप भी शिथिल होगया तब रावण ने घातपाय परोपकारमार्ग के खोलने वाले महाराज जटायु पर खड्ग चलाकर उनके पंख काटडाले जिससे वह लुंजहो राम राम कहते पृथ्वी में गिरपड़े ।

पृथ्वी में पड़े हुए जटायु रावण से बोले, लंकेश तूने बड़ा अपकर्म किया है-अब यह पुहुमी तुझको बहुत शीघ्र अपने ऊपर मृतकरूप में देखना चाहती है। ऐसा कह सीता से बोले पुत्री तू अपने प्रचंड अग्नि समान पतिव्रत से रक्षित रहैगी अब मैं बहुत शीघ्र शरीर छोड़ना चाहता हूँ यदि शरीर त्याग करने के प्रथम राम इस ओर आजावैंगे तो यह दारुण समाचार सुनाऊंगा, तो सुनते ही वह इस पापी को मार कर तुमको ले आवैंगे जैसे शृंगाल की मांद से अपना आहार सिंह निकाल लाता है। फिर रावण रथ पर चढ़कर कादर के समान भागा।

आभूषण द्वारा सीताजी का सँदेश व अशोक वाटिका।

आगे एक पर्वत पर एक समूह बानरों का बैठा था उनको देखकर जानकीजी अपने उत्तरीय अंगों के आभूषणों को उन पर फेंककर ऊंचे स्वर में बोलीं कि " मेरे प्राणनाथ श्रीरामचन्द्र को मेरी सुधि सुनाना और इस संदेश के परिवर्तन में ये आभूषण तुमको देती हूँ "। और रावण रथको बड़ी शीघ्र चाल में किये हुए इधर उधर देखता लंका में पहुँचा और फिर अशोकवाटिका नाम उपवन में यामिकों का दृढ़ प्रबन्ध करके सीता को वहां ठहराया।

बनमें युग्म भ्राताओं की भेंट ।

इस ओर जब रामचन्द्र, मारीच को मार कर लौटे चले आते थे, इतने में लक्ष्मण देख पड़े, तब राम शोक के साथ बोले, कि लक्ष्मण, मेरे बार २ कहने पर भी तुम वैदेही को अकेले छोड़ यहां चले आये, हा, लौटने पर आज जनक तनया न मिलैंगी। तब लक्ष्मण ने रोते हुए सब दारुण वृतांत वर्णन किया ।

सीता बिना राम ।

फिर दोनों भ्राता उद्विग्न चित्त अवस्था में अपने स्थान पर पहुँचे और रामचन्द्र वैदेही वैदेही कहकर पुकारने लगे, फिर जाकर पर्णकुटी के भीतर देखा परन्तु वहाँ सीता न देख पड़ी, तब महा बिलाप को प्राप्त हुए, हा मेरी प्यारी वैदेही को कोई बनजीव भक्षण कर गया अथवा किसी निशाचर ही ने खा लिया—चलो गोदावरी के तट पर देखें, स्यात् जल लेने गई हो परन्तु वह मेरे संग के अतिरिक्त अकेले कभी नहीं जाती थीं । हे गोदावरी, मेरे साथ तुम में जो क्रीड़ा करती थीं वह मेरी प्राणप्रिया वैदेही कहाँ हैं, हे वृक्ष, बेलि, लता तुम्हारे नीचे हमारी प्यारी बैठती थीं सो बताओ कहाँ गईं । पर्णकुटी, भला हमारी आनन्दवर्द्धिनी

को तुम तो नहीं छिपाये हो। आओ, आओ, हमने देख लिया तुम मुसकाय रही हौ, अच्छा हमीं दौड़े आते हैं, अब तुम पीछे को पिछड़ती चली जाती हौ, भला आज ऐसा क्यों करती हौ, हम जानते हैं कि उस विचित्र मृग को हमारे साथ न देख रूठ गई हौ, परन्तु प्यारी वह तो मायामय एक राक्षस था, वह मारडाला गया आज तुम बड़े भय से बचीं। फिर ऊँचे स्वर से वैदेही २ पुकारने लगे और अन्तरिक्ष में अपने शब्द की ध्वनि को सुनकर लक्ष्मण से कहते हैं देखो मैथिली बोलती हैं, फिर मृगगणों की ओर देखकर उनके प्रति वचन बोलते हैं कि वैदेही तुम्हारी बड़ी सुश्रूषा करती थीं सो बताओ कहाँ हैं, हे पक्षिगणो, तुम जिसके हाथ से मधुर फल पाते थे वह कहाँ गई। तब हरिण मुख ऊपर को उठाये मुनमुनाते दक्षिण की ओर भागने लगे और पक्षी दूसरे एक पक्षी को अपनी पीठ पर चढ़ाकर दक्षिण दिशा को उड़ने लगे। तब रामचन्द्रजी लक्ष्मण से बोले,-लक्ष्मण, मृगों तथा पक्षियों के संकेत का मतलब समझते हो? कोई जन आकाशगामी रथपर वैदेही को बैठाकर दक्षिण की ओर ले गया है, ये मृग मुनमुनाते नेत्रों से जल गिराते कहते हैं कि वैदेही रोती गई हैं, लक्ष्मण, अब दक्षिण की ओर चलो। ऐसा कहकर दोनों भ्राता दक्षिण दिशा की ओर चले।

घायल जटायु ।

दोनों भाई वन में सीता को ढूंढ़ते चले जाते थे इतने में जटायु नाम पक्षी जो घावों की पीड़ा से रहि २ कर राम राम कहता था, उसको देखकर रामचन्द्रजी बड़े शोकित हुए और उसके शरीर में हाथ फेरते हुए बोले, हे तात, इस दशा को आप कैसे प्राप्त हुए। तब उसने सब वृत्तान्त वर्णन किया फिर वह बोला कि राम, जो परिश्रम इस शरीर ने वैदेही के छुड़ाने में किया है उसका फल यह पागया कि आप जगपावन के अंक में अपने को देख रहा है, जिसने अनेक जीवों के माँस से अपना पालन किया, जिसने अनेक प्रकार के पाप कर्म कमाये-सो वही अंत में भाग्य के शिखर पर पहुँचा है, आपकी गति जानने योग्य नहीं है कि कलुषितचित्त मनुष्य, जिनका स्थान नरक है वे प्रभु की कृपा द्वारा साकेत लोक में विहरते हैं, मेरे प्राण आपके दर्शनों से गर्वित हो अब इस अपावन शरीर में नहीं रहना चाहते। 'कौशलकिशोर की जय हो' ऐसा कह वह पक्षी स्वर्ग को चला गया। तब दोनों भाइयों ने बन में काष्ठ एकत्र कर तथा चिता बनाकर जटायु के शव को उस पर रख कर दग्ध किया। नाथ, अनाथों की गति आपही हैं।

शवरी के घर राम ।

फिर वन, सर, सरिता, पर्वत ढूँढ़ते दोनों भाई चले जा रहे थे इतने में विराध नाम राक्षस बड़े घोर शब्द को कर दोनों भ्राताओं की ओर दौड़ा, परन्तु रामचन्द्रजी ने मारडाला। उसके पश्चात् दोनों नरशार्दूल शवरी के आश्रम में पहुँचे। वह शवरी प्रभुको देखकर नेत्रों में आँसू भरे तथा कर सम्पुटित किये हुए बोली, यह महाअधम किरातिनी योनि, यह कुटिल स्वभाव तथा यह निर्जन स्थान आज सब मंगलमय हुए। फिर प्रभु के चरणों को धोकर चरणामृत लिया। इसके पश्चात् जिन फलों में पूर्ण मधुर रस पहुँच चुका था उनको नखसे चीखती तोड़ती थी, जब बड़े २ दो दोना भर गये तब प्रेमवश विचारने लगी कि इतने में भूखे न रह जांय। ऐसी मनगूंथन करती फलों को लेजाकर राघव को अर्पण किया और बोली कि स्वामी भोजन कीजिये। फिर अंगुली फलों की ओर दिखाती बोली कि इस फल का मधुर गाढ़ा रस है, इस में बहुत रस है, यह खटमीठा है, यह अपनी मधुरता से अरुण हो गया है, यह सुगंध संयुक्त मधुर है, यहाँ इसका बड़ा भारी बन है। इस प्रकार प्रेम सानी बातों को कहकर परोस कर विश्वम्भर को तृप्त कराया। अन्तरिक्ष में देवगण, सिद्ध, चरण, यह

कौतुक देखते परस्पर बातें करते हैं कि भगवान् किसी के यहाँ इस रुचि के साथ भोजन नहीं करते। देखो बड़े २ पण्डित आदि परोसे निवेदन किया करते हैं परन्तु प्रभु इस प्रकार मांग-२ कर नहीं खाते। फिर देवगण हँसते हुए परस्पर कहने लगे कि अब बन में रहने से क्षुधित रहते हैं। तिनके प्रेम बचनों को सुनकर अंतर्यामी भगवान् मुसकाने लगे।

राम शवरी संवाद।

जब भोजन कर चुके तो शवरी से बोल कि, हे शवरि, मैं जाति पांति धन, ऐश्वर्य्य, बुद्धि, विद्या, चतुराई, सुन्दरता, इनसे नहीं प्रसन्न होता हूँ, क्योंकि ये सब जीव को जगत् में मिलते हैं और पाहुन की तरह जीव को विदा कर वे फिर अपने गृहरूपी जगत् में रहजाते हैं, मैं उन लोगों की भौंहें निहारा करता हूँ जो इन सब का तिरस्कार करके मेरे चरणों में अचल प्रेम रखते हैं और सदा नित नव प्रेमरूपी लता के बढ़ने के लिये मुझ मेघ से कृपा जल चाहते हैं। सगल जगत् के सुखों के अंत में दुःख देखते हैं, मेरे चरित देश में अपने मनको घुमाते मेरे स्थान को पहुँच जाते हैं, आजतक मैंने जिन अपने भक्तों के साथ सहायता की है वह यथानुसार कार्य्य नहीं हुआ-हे देवि, मेरे पास सर्वश्रेष्ठ

साकेत लोक ही है, परन्तु उनके प्रेम के षोड़शांश भाग के प्रत्युपकारमें साकेत देना योग्य न्याय नहीं समझता हूँ-इस लिये जो कुछ विभूति मेरे पास है उनको देकर सदा ऋणी बना रहता हूँ-हे स्त्री जाति को बड़ाई देने वाली शवरि; भला हमारी सीता की सुधि तुमने पाई है ? हा, इन मधुर फलों को मैथिली न खा सकीं । वियोग, संयोग सुख को जो हृदयलता में अरझ गया है उसके (हृदय) सहित खींच लेता है । तब शवरी बोली कि पंपासर नाम तड़ाग जो यहाँ से दक्षिण है, वहाँ जाइये, आपको इसी दिशा में सीता की सुधि मिलैगी । फिर हँसती हुई बोली कि अब मिलकर न जाओ, प्रथम आप चलकर मेरे यहाँ आये थे, अब मैं इस शरीर से चलकर आपके पास आती हूँ । ऐसा कह वह शरीर त्याग कर रामजी के साकेत स्थान को चली गई ।

पंपासर ।

तब रामचन्द्रजी पंपा की ओर चले, वहाँ पहुँच कर देखते हैं कि हंसों के झुंड के झुंड विहार कररहे हैं-तड़ाग के चारों ओर सघन सुपल्लवित वृक्ष लगे हैं और एक दूसरे में मिले हुए हैं, तिनसे तड़ाग मंडप के समान शोभित है और वृक्षों पर पक्षियों के झुंड के झुंड बैठे अनेक प्रकार की बोली बोल रहे हैं, तड़ाग के किनारे मुनियों की कुटी

बनी हैं। कोई मुनि स्नान करता है, कोई सन्ध्या करने में लीन है, कोई हवन करता है कोई जप करता है, कोई चित्र समान बैठा आत्मविचार करता है, कोई वटु लोगों को शिक्षा देरहा है। तिन मुनियों के निकट जाकर रामचन्द्रजी ने प्रणाम किया, तिनसे अर्घ्यपाद्य पाकर राम ने सीता जी के हरजाने का वृत्तान्त वर्णन किया। तब उन महात्माओं ने कहा कि जिस पश्चिम-दक्षिण वाले मार्ग को उसके दोनों ओर के वृक्ष अपनी छाया द्वारा आतप से बचाये हैं सो उसी मार्ग होकर आप ऋष्यमूक नाम पर्वत को जाइये। वहाँ वानरराज वालि का छोटा भाई सुग्रीव विपत्तिग्रस्त हो रहता है। हे राम! मनुष्य अपनी समान दशा में दूसरे को देखकर उसके साथ सौहार्द प्रदर्शित करते हैं, वह वानर बड़ा सत्यवादी तथा अपने व्रत में दृढ़ है वह अवश्य सीता की खोज लगावैगा। मुनियों के ऐसे वचन सुन उनसे विदा हो ऋष्यमूक को चले।

चिन्तामग्न सुग्रीव।

जब दोनों भाई उक्त पर्वत के अंचल पर पहुँच रहे थे इतनेमें सुग्रीव हनुमान से बोले-देखो वे दो पुरुषव्याघ्र चारों ओर देखते इसी ओर को आरहे हैं, जान पड़ता है कि किसी को ढूँढ़ते हैं, वालि की छलनीति को स्मरण कर

मुझे भय होता है कि ये जन उसी के पठाये हुए हैं अब यदि कहो कि इनके साथ युद्ध करो, तो हे हनुमन्! मनुष्य का प्रताप तथा गुण उसके वदन से झलकता है इनको देखने से मैं कह सक्ता हूँ कि ये दोनों युद्ध-विद्या में विशारद हैं। किसी को इन से जीतने की आशा करना व्यर्थ है, यद्यपि मनुष्य अपने हृदयस्थित कार्य्य को एकाएक किसी पर प्रकट नहीं करता परन्तु ऐसा कभी २ देखा जाता है कि जिससे किसी प्रकार का सम्बन्ध उक्त कार्य्य से नहीं रहता तो लोग उससे कार्य्य का सार भाव साधारण प्रकट कर देते हैं सो तुम इनके पास जाकर इनके मनोगत भाव को जान आओ। यदि मुझ दुःखी ही की खोज में आये हों तो हे मंत्रिवर, संकेत द्वारा जता देना जो मैं इस प्रिय रक्षक स्थान को भी त्याग कर भाग जाऊँगा।

राम के सम्मुख हनुमान।

सुग्रीव के ऐसे भयातुर वचनों को सुनकर हनुमानजी उन दोनों युद्ध वीरों की ओर चले और ब्राह्मण का वेष धारण कर उनसे बोले—इस बन में विचरने के योग्य न होकर यहाँ घूम रहे हौ बताओ, आप लोग कौन हौ? वेष तपस्वी का बनाये परन्तु आकृति से श्रेष्ठ राजबंश में उत्पन्न ज्ञात होते हौ। शांति, गौरव, निर्भीकता, तथा धनुषबाणों

को यथोचित अंगों पर धरे हुए इन्द्रतुल्य पराक्रमी आप लोग कौन हो ? सदा एक दूसरे का प्रिय करने वाले ब्रह्मजीव के समान आप लोग कौन हो ? व्याकरण को भली भाँति जानते हुए बोलने में चतुर आप लोग कौन हो ? तब रामचन्द्रजी मंद मुसकाकर बोले, हे द्विजोत्तम, कोशल-देशाधिपति महाराज दशरथ के हम दोनों पुत्र हैं, हमारा राम तथा इनका लक्ष्मण नाम है पिता की आज्ञा से वन को आये हैं परन्तु जनस्थान से सीता नाम की हमारी प्रिय भार्य्या हरी गई हैं सो उन्ही को ढूँढ़ते इस वन में आ निकले हैं । कहिये आपका आगमन किस ओर से हुआ है। तब वह ब्राह्मण बोला कि मैं हनुमान नाम वानर हूँ । आप से भेंट करने के लिये ब्राह्मण का वेष धारण किया था । उस बीच वाले शिखर पर जो वृक्षों की सघनता से हरित मणिका प्रतीत होता है महाबलवान्, बुद्धि में बृहस्पति, सत्यवान् सुग्रीव नाम वानरराज रहते हैं । हे नरशार्दूल, मैं उनके मन्त्री रूप में आपका स्वागत करता हूँ । वानर राज आपको देखना चाहते हैं । ऐसा कहकर हनुमान् अपने वानररूप में होकर चलने की शीघ्रता करने लगे । रामचन्द्र जी बोले हे चतुर मन्त्री, यह शुभ अवसर है कि वानर राज सुग्रीवजी से भेंट होगी फिर हनुमानजी दोनों भाइयों को अपने ऊपर चढ़ाकर सुग्रीव के निकट पहुँचे ।

राम तथा सुग्रीव की मैत्री ।

जब सुग्रीव ने दोनों भ्राताओं को मित्र रूप में आते देखा तो हर्षित हो आगे बढ़कर दोनों भाइयों को प्रणाम किया । और तिन दोनों राजकुमारों ने सुग्रीवजी को हृदय में लगाकर सखा शब्द से उनका बोध किया । फिर हनुमान जी ने रामचन्द्र जी के वन आने का सब वृत्तांत वर्णन किया । तब सुग्रीव जी को सीता जी के फेंके हुए आभूषणों का स्मरण हो आया और फिर उन आभूषणों को रामचन्द्र को लाकर दिया ।

सीता के आभूषण ।

उनके देखने पर रामचन्द्रजी की विरह अग्नि की ज्वाला भभक उठी । तब उन आभूषणों प्रति बोले कि हमारी प्रिया को विपत्तिग्रस्त जानकर तुम लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया जिसने तुम कठोर को अपने कोमल शरीर पर बास दिया तिसका संग छोड़कर क्या सुख पाया । हमको देखकर अवश्य लज्जित हुए होंगे । जैसे कोई किसी के साथ उपकार करै और वह प्रत्युपकार न करके अपकार करै तो वह भेंट हो जाने पर लज्जित होता है । नहीं २ हम भूल करते हैं सुग्रीव जी, ये कहते हैं कि इनको वैदेही ने

दूत रूप में भेजा है। हे दूत रूप आभूषणो, हमारी भूल पर क्षमाकरो, आप लोगों ने यथार्थ में सराहनीय कार्य्य किया है। फिर सुग्रीव तथा लक्ष्मणजी के समझाने पर रामजी ने किसी भांति धीरज को धारण किया।

सुग्रीव के दुःख की कथा तथा राम के बल की परीक्षा।

इसके पश्चात् रामचन्द्र जी ने सुग्रीव के ऋष्यमूक पर बसने की कथा पूछी, उस बोलने में चतुर सुग्रीव ने अपनी दशाको यथातथ्य वर्णन कर सुनाया। तिसतो सुन-कर रामचन्द्र जी मित्र के दुःख को न सुन सककर ऐसे वचन बोले कि यद्यपि कार्य्य करने के प्रथम प्रकट में प्रतिज्ञा न करनी चाहिये, परन्तु मैं अपना को असमर्थ देखता हूँ कि मित्र के दुःख को सुनकर हृदय को उसकी दशा में अटल रक्खूँ। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह बाण जिसकी फोकें सर्प की जिह्वा के समान निकली हैं सुग्रीव के शत्रु रूप भ्राता बालि को मारैगा। सुग्रीव जी बोले सखा बिना शत्रु का बल जाने हुए आपने ऐसी कठोर प्रतिज्ञा की है जिसके पूर्ण होने में मुझे शंका है। तब रामचन्द्र जी लक्ष्मण की ओर देख हँसते हुए सुग्रीव प्रति बोले कि भला कोई ऐसा उपाय है कि जिसमें तुम्हारा मन संदेह से मुक्त

होजाय । सुग्रीव ने उत्तर दिया कि यह ढेर जो दुंदुभि की अस्थियों का लगा है उस दुंदुभि को बालिने अपने पुर से फेंका था । और ये जो सात ताड़ के वृक्ष लगे हैं इनमेंसे वह एक वृक्ष को हिलाता था तो सब कांप उठते थे । ऐसा वह पौरुषवान् वालि है । यदि अस्थि समूह को फेंक दो और इन ताड़ के वृक्षों को एक बाण से वेध डालो तो वालि के मार डालने में विश्वास हो । तब रामचन्द्रजी ने बाणकी नोक से उस दैत्य की अस्थियों को फेंक दिया और हँसते हुए एक बाण से सातों वृक्षों को भेद डाला । तब सुग्रीव को वालि से विजय पाने का विश्वास हुआ ।

वालि तथा सुग्रीव का युद्ध ।

जब सुग्रीव ने भली प्रकार से रामचन्द्र के बल की परीक्षा लेली तब वालि से युद्ध करने के लिये किस्किन्धा की ओर चले-उस वीर बालि से पालित पुरी के पास सुग्रीवजी ने पहुँचकर बड़े घोर शब्द को किया-और अभिमानभरे शब्दों में बालि को प्रचारा—तिसके ऐसे शब्द को सुनकर बालि दांत पीसता चला—फिर दोनों द्वन्द युद्ध करनेलगे । यद्यपि सुग्रीव बड़े बलवान् थे परन्तु वालि, जिसने केवल एक हाथ से युद्ध करके रावणको पराजित किया था, अन्त में उसके सम्मुख सुग्रीव न खड़े

रहसके। सुकंठ युद्ध करते समय मन में विचारते थे कि अब रामचन्द्र जी वालि को मारते हैं, परन्तु जब बहुत थक गये और बाण को किसी ओर से आता न देखा तब ऋष्यमूक की ओर भागे। वालि बोला, बस इसी बल पर युद्ध करने चला था।

खिन्नहृदय सुग्रीव।

दुःखित सुग्रीव रामचन्द्र से बोला, कि मुझको वालि के मारनें का विश्वास देकर तथा मुझको मेरे काल के सम्मुख कर आपने मेरी सहायता न की, यदि आपको ऐसा करना था तो आपने प्रतिज्ञा क्यों की थी। तब रामचन्द्रजी बोले, मित्र विश्वास मानिये कि मुझको आप दोनों भाइयों के रूपों में किंचित्मात्र का भी अन्तर न ज्ञात हुआ—यदि आप दोनों में से एक को वालि समझ कर मारता और कदाचित् आप घायल हुए होते तो मित्रहितेच्छुक न कहलाकर मित्रघातक कहा जाता—अब फिर एकबार वालि के साथ युद्ध करने को उद्यत हूजिये। इस पुष्पों की माला को आप पहिने हुए युद्ध कीजियेगा-जिसमें प्रथम की तरह मुझको फिर न भ्रम हो। ऐसा कहकर रामचन्द्रजी ने माला पहना दी। सुग्रीव जी बोले, यद्यपि मैं अज की तरह सिंहरूपी वालि के सम्मुख जाने में भय

करता हूँ परन्तु आप मित्र की बात पर विश्वास कर फिर युद्ध करने चलता हूँ। आज संसार में वालि या सुग्रीव जीवित न देख पड़ेगा अथवा वालि हमको मार डालेगा या वालि हमसे मारा जायगा। फिर पूर्वानुसार युद्ध के लिये वालि को ललकारा। तब वालि खिझिया कर बर-बराता उठा कि आज इसको मारही डालेंगे।

पति प्रति तारा का निवेदन।

उस समय तारा निवेदन करने लगी कि शास्त्रों ने कहा है कि पुरुष को चाहिये कि किसी २ कार्य्य में स्त्री की भी सम्मति ले। अस्तु यह कार्य्य आप के प्राणों से सम्बन्ध रखता है और उनकी रक्षा करने में मेरे भी ऊपर भार है— अस्तु मैं विचार करती हूँ कि जो पुरुष कई बार किसी से पराजित हो, वह उल्लाससहित फिर उसी से युद्ध करने आवें, इससे जाना जाता है कि यह पुरुष अन्य जनों से सहायता पाये हुए है। सहायता करनेवाला शत्रु के बलरूपी परिखा को अपने बल से नांघ जाने में समर्थ समझ लेता है तब वह सहायता करने को उद्यत होता है। फिर सुग्रीव ऐसा मूर्ख नहीं है कि विना परीक्षा लिये हुए सहायता करने वाले के केवल वाक्यों पर विश्वास करके आप से युद्ध करने चलै। सुना है कि कोशलाधीश के दो पुत्रों ने

सुग्रीव को मित्र बनाया है और यह बालक रूप सुग्रीव रामचन्द्र रूपी प्रौढ़ जन से रक्षित युद्ध रूपी अश्व पर चढ़ आपके सम्मुख आया है। वीर को चाहिये कि समय काल बिचार करके युद्ध करै। तब बालि बोला, हे भद्रे ! योग्य स्त्रियों को पति प्रति जो वचन कहने चाहिये सो तुमनें सुन्दर रूप में कहे। परन्तु इस पर मैं विचार करता हूं कि मुझको सुग्रीव युद्ध करने के लिये बुलाता है तो वे मेरे संग कैसे युद्ध कर सकेंगे। जिनका मुझ से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तो वे मेरे संग क्यों युद्ध करैंगे।

बालिबध।

ऐसा कह कर गृह से बाहर निकल बाली बोला, रे नीच सुग्रीव, आज तक तुझको जान बूझकर नहीं मारा। परन्तु अब आज तू ऋष्यमूक रूपी स्त्री की वस्त्ररूपी दरी में न घुसने पावेगा। सुग्रीव बोला दुष्ट, आज तुझको भूमि में मृतक पड़ा देखूंगा। फिर दोनों क्रोध में भरे महाघोर युद्ध करने लगे। परन्तु कुछ समय के पश्चात् सुग्रीव इधर उधर देखने लगा। तब रामने वृक्षकी ओटसे एक ऐसा बाणमारा कि उसने जाकर बालिके बीचहृदय में लगकर उसको पृथ्वी में ऐसे गिरा दिया जैसे बालकों करके एकत्रित की हुई रज के ढेर का मत्तगजराज पगों से विदीर्ण कर देता है।

वीर वालि।

तब वालि पंख कटे हुए पर्वत के समान गिरपड़ा। और रामचन्द्र को सम्मुख खड़े देखकर बड़े कठोर बचन बोला कि तुमको कौन धर्मधुरीण कहता है तुम ऊपर से धर्म के मित्र बने हुए वास्तव में शत्रु हो, भला मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था। हम दो वीर संग्राम में धर्म युद्ध कर रहे थे तब तुमने अधर्म में बुद्धि टिकाकर ओट से हमको क्यों मारा। जो तुम कहो कि हमने मित्रकी सहायता की है, तो प्रथम तुम्हारा यह कार्य था कि हमारे विग्रह का कारण पूंछते, जब तुम, हम दोनों के बीच सन्धि न करा सके तब सूचना देकर युद्ध कर सकते थे। परन्तु इस प्रकार ओट से मारने में तुम्हारी वीरता नहीं हुई, विष देने से, सोते हुए को मारने से, विश्वासघात करने से, जो अपकीर्ति मनुष्य को मिलती है उसी से यह तुम्हारा अयोग्य कार्य सम्बन्ध रखता है, सुना है कि तुम्हारी भार्य्या को रावण हर ले गया है उसी का पता लगाने के लोभ में सुग्रीव से मित्रता की है, सुग्रीव तो प्रथम अपना कार्य कराकर तुम्हारा करेंगे परन्तु यदि मुझ से एक बार वचन भी कहते तो उस वचन को तुमसे लेकर वैदेही को तुम्हें सौंप देता, और सहित मन्दोदरी के रावण को पकड़कर तुम्हारे सम्मुख

बदला लेने के लिये खड़ा कर देता। हे राम! बड़े लोग बड़े भारी अनर्थ को अल्प कार्य के लिये कर डालते हैं।

प्रेम के वश में बालि।

इतने कठोर वचनों को कहकर वह अपने हृदय के प्रेम को जो रामचन्द्र के दर्शनों से उमड़ उठा था न रोक सका—और बोला इस अधम शरीर के लोभ में मैंने इन कठोर वाक्यों का उच्चारण किया है नहीं तो यह मधुर मूर्ति जटा धारण किये, मेरे मारने में श्रमित, जिसके अरविंद रूपी बदन पर स्वेदकण झलक रहे हैं, जिसकी भौंहें मेरे प्रति तनी हुई हैं, जो मेरी बातों को सुनता, मेरी ओर टक लगाये देख रहा है वही महेश के मानस में वास करता है, बड़े २ योगी ज्ञानियों से ध्यान किया जाता है। जो भृगु के पाद प्रहार करने पर न रोषित हुआ, वही आज मुझ अनपराधी को मार कर रोष प्रदर्शित करता मेरे निकट खड़ा है। ऐसा कहकर बालि मुसकाया, और फिर स्तुति करने लगा यह बलवान् शरीर आपकी विभूतियों से बना था, जीव रूप में मैं आपका सेवक हूँ, अस्तु शरीर के तथा मेरे ऊपर आप का पूर्ण अधिकार है। आप जो कुछ करडालें उसमें मेरा क्या बश? सदा धर्म मार्ग के प्रतिकूल चलकर ऐसी धृष्टता करने को आप क्षमा करें, मैं इस कराल रूप में आपको देख

कर बड़ा प्रसन्न हूँ, कि आज यह नई बात तो हुई, कि आप दया छोड़ कोह को धारण करने लगे, मुझ ऐसे तामसी लोगों का जिनका विनय करने का स्वभाव नहीं है आपको क्रोध दिलाने में स्वार्थ साधन हो जायगा। ऐसा कहता हुआ वालि नेत्रों से प्रेम भरे आँसू छोड़ने लगा। तब रामचन्द्रजी का क्रोध वतासा की तरह उसके अश्रुजलमें बिलाय गया और वह बोले-हे वालि यद्यपि मैं अभी तक गुप्त रूप में था परन्तु तूने मुझको प्रकट करलिया, अब मनवांछित वरदान माँग। तव वालि दीन वचन बोला कि माँगने से मंगन श्रेणी में गिना जाऊँगा, इससे मैं मधुप स्वतन्त्र हो आपके चरण कमलों का रस पीता रहूँगा-यह अंगद जिसके भोले वदन पर, मेरी ऐसी दशा होने से बड़ा दुःख छाया है, सो इसको राज्यादि का लालच देकर दूर न कर दीजियेगा, वरन् मेरे समक्ष इसको अपनाइये। तव रामचन्द्रजी ने अंगद की बाँह को पकड़कर शिर सूंघा। पुत्र को जगत्पति के आश्रय में देख वीर वालि ने चरण कमलों को देखते शरीर का त्याग किया। वालि का मरना सुन तारा आकर अनेक प्रकार से बड़ा विलाप करने लगी। तिस को रामचन्द्रजी ने समझाया, जैसे मनुष्य आपत्ति में मित्र की स्त्री को समझाते हैं। फिर सुग्रीव को राजा, तथा अंगद को युवराज बनाया, और महा प्राज्ञी तारा पटरानी हुई।

रघुनाथजी, आपको अपने कौतुकरूपी जगत् में सब कुछ करने का अधिकार है। फिर रामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित ऋष्यमूक पर्वत पर वर्षाकाल व्यतीत करने को चले गये ।

वर्षा का अन्त ।

जब वर्षा काल का अंत हो गया और काली घटाओं के स्थान पर निर्मल आकाश देख पड़ने लगा तब रामचन्द्र जी लक्ष्मण से बोले कि देखो, ये बनजारों के झुंड अपने गृहों से विदेश में रोजगार करने जा रहे हैं-राजा लोग सेनाओं को साथ लिये हुए अपने शत्रुओं से युद्ध करने जा रहे हैं-यह देखो खंजन पक्षी शिर हिलाता कैसे चल रहा है, मानो कहता है कि वैदेही को मैंने देखा है। पर्वत गण, जो वर्षा ऋतु में मत्त गज के समान अपने ऊपर इधर उधर जल बहाने में क्रीड़ा करते थे, सो शांत हो गये हैं अब वैदेही की खोज करने के निमित्त सुग्रीव के पास चलना चाहिये । लक्ष्मण, मनुष्य सुख पाने पर उस व्यक्ति को भूल जाता है जिसके द्वारा ऐसे सुख का सम्पादन करने में समर्थ हुआ अच्छा, अब तुम सुग्रीव के पास जाओ और नीति के प्रथम साम अंग द्वारा उनको ले आओ ।

——:०:——

पुर में लक्ष्मण ।

लक्ष्मण पुर में प्रवेश कर सुग्रीव के मंदिर में गये और क्रोधयुक्त हो वानरों से पूँछा कि कृतघ्न सुग्रीव कहाँ है, वह वालि को शीघ्र देखा चाहता है । लक्ष्मण को क्रोधित देख वानरों ने अंतःपुर में सुग्रीवजी से सब समाचार वर्णन किया । उससमय वह सुग्रीव तारा के साथ बिलासके सर्व अंगों से युक्त मदमत्त हाथी के समान बिहार कर रहा था ।

लक्ष्मण के सम्मुख तारा ।

लक्ष्मण को क्रोधित सुन वह बहुत घबड़ाया तब तारा लक्ष्मण के पास बड़े विनीत भाव से आकर बोली, महाराज यह विषय सज्ञान मनुष्यों को अंधा कर देता है, फिर सुग्रीव तो विषय की खानि बानर जाति में पैदा हुआ है । आप मुझ स्त्री को शरणापन्न जान उसके अपराधों को क्षमा कीजिये, आपका मित्र सुग्रीव आपके क्रोध के भय वश सम्मुख नहीं आ सका, अब उसको आप दूर कीजिये । स्त्रियाँ अपने नेत्र के कटाक्ष व मधुर बाणी रूपी हिम अस्त्रों से क्रोधाग्नि को बुझादेती हैं, सो चतुर तारा ने लक्ष्मणजी के क्रोध को शाँति किया तब लक्ष्मणजी शिर नीचे कियेहुए तारा के साथ अन्तः भवन में पहुँचे । वहाँ सुग्रीव पहिले

ही से हाथ जोड़ क्षमा का प्रार्थी हो खड़ा था, तिसको लक्ष्मण जी ने अभय किया।

राम सुग्रीव की भेंट।

फिर सुग्रीव को साथ लेकर रामचन्द्र के पास आये। तब सुग्रीव रामचन्द्रजी से विनय करने लगा कि हे नाथ! इस विषय रूपी गढ़े में जो मनुष्य गिर जाता है वह उसी में लय हो जाता है और यत्न करने पर भी नहीं निकलने पाता। हे प्रभो! जो आपके जन इस गढ़े में पड़जाते हैं तो आप उनको अपनी कृपारज्जु द्वारा ऊपर निकाल लेते हो, हे आजानुबाहु यहाँ आने के पूर्व मैंने चारों दिशाओं को चतुर दूत भेजे हैं, अब बहुत शीघ्र बानर दल चारों ओर से आने ही चाहते हैं। ऐसा कहते ही थे कि हहाता हुआ बानरोंका दल उत्तर की ओर से फिर पूर्व की ओर से इसी तरह चारों दिशाओं से अगणित बानर आये। और वे राम लक्ष्मण व सुग्रीव को प्रणाम कर एकत्रित हुए।

बानरों को सीता को ढूँढने भेजना।

फिर सुग्रीवजी ने बानरों को बुलाया और जिन २ देशों व प्रदेशों के गुप्त प्रकट स्थानों से जो २ बानर अभिज्ञ थे उनको उन्हीं देशों में सीता की खोज करने को भेजा।

हनुमानादि को दक्षिण को भेजना ।

और जाम्बवन्त, नील, नल, द्विविद, हनुमान आदि अपनी २ सेनाओं को किसी अन्य नायक के साथ भेजकर सुग्रीव की आज्ञा पाने के लिये रह गये थे । ये वानर बड़े बली होने से सीता की खोज लगाने को स्वयं अकेले ही जाने में तत्पर थे, इस कारण अपनी सेनाओं को इधर उधर वैदेही के ढूँढ़ने को भेज दिया था । जब सुग्रीव ने देखा कि नायक गण आज्ञा के लिये खड़े हैं तब उनको बुलाकर कहा कि इसी दक्षिण दिशा की ओर वैदेही जी लेजाई गई हैं आप लोग इसी दिशारूपी नदी को मत्त गजराज की तरह ढूँढ़ते २ खलभला डालिये । मैं राजा रूप में अपनी आज्ञा के प्रत्यंश रूप के पालन करने के लिये यह घोषणा करता हूँ कि सीता की खोज न मिलने में सब वानर मृत्यु का दंड पावेंगे । फिर सबको सत्कार करके विदा किया ।

राम का हनुमान को बुलाना ।

जब रामचन्द्रजी ने देखा कि हनुमानजी भी जाते हैं तो उनको अपने पास बुलाकर कहा कि यदि वैदेही से भेंट हो तो उनके विश्वास के लिये यह मुँदरी लेते जाओ । इसके देने से वास्तव में तुमको मेरा भेजा हुआ दूत समझैंगी

क्योंकि पतिव्रत के अंगों में चतुर स्त्रियाँ एकाएक अन्य मनुष्य पर बिश्वास नहीं करतीं ।

बानरों का पयान ।

इसके पश्चात् सब बानर तीनो जनों को प्रणाम कर दक्षिण दिशा के वन पर्वत नद नदी आदि ढूँढ़ने को चले, ढूँढ़ते २ भारतखण्ड की पृथ्वी का अन्त कर समुद्र तट पर पहुँचे ।

समुद्र तट पर बानर ।

जब उन्हों ने समुद्र को देखा तब सब बलहीन होने के समान कहने लगे कि अब यह समुद्र कौन पार करैगा ?

दुःख व करुणा में मग्न अंगद ।

अंगद जी उस नायकी सेना के नायक होने के कारण करुणा करके बोले कि राजा की दारुण आज्ञा मृत्यु दण्ड देने की है और इधर वैदेही का पता नहीं लगता । इस दिशा को हम लोगों ने अच्छे प्रकार से ढूँढ़ा है यहाँ तक कि मधु मक्खियों के छत्तों के घर तक भी ढूँढ़ डाले परन्तु सीताजी का पता नहीं लगा । अब हमारे कार्य में यह समुद्र

बड़ा विघ्न उपस्थित हुआ है, इससे पार जाना असम्भव सा है। हे वीर वानरों, हमारी माता व स्त्री से कह देना कि सीता की खोज न पाने से अंगद सिन्धु तट पर इस अधम पौरुषहीन शरीर को छोड़कर परलोक चला गया। ऐसा कह अंगद बड़े दुःख को प्राप्त हुआ उसकी यह दशा देख सब वानर गण बड़े दुःखित हुए। तब फिर अंगद बोले कि वह धन्य है जो धन व शरीर को दूसरे के निमित्त दे देता है। देखो जटायु नाम वृद्ध पक्षी भी अपने शरीर को परोपकार में समर्पण कर प्रशंसा का पात्र हुआ।

सम्पाति ।

अपने भाई का नाम सुनते ही सम्पाति नाम गिद्ध धीरे २ पर्वत पर से उतरा, जिस महा भीमकाय को देख सब वानर भयातुर हुए। तब वह विश्वास दिलाते हुए बोला कि आप लोग भय न करैं, हम आप लोगों को मित्र-दृष्टि से देखते हैं आप बताइये कि मेरे भाई जटायु कहाँ हैं। तब बोलने में अति चतुर जाम्बवान् जी बोले, कि अब वह इस लोक में नहीं हैं। श्री रामचन्द्रजी की स्त्री को कोई निशाचर हरे लिये जाता था उससे छीन लेने में उन्होंने बड़ा पराक्रम दिखाया–परन्तु अन्त में मारे गये। उसी सीता देवी के ढूँढ़ने को हम सुग्रीव की आज्ञा से अब

दक्षिण दिशा में आये हैं । यहां तक तो हम लोगोंने ढूंढ़ा, और यहाँ बैठे विचार कर रहे हैं कि अब कहाँ ढूंढ़ें । सम्पाति भाई का मरण सुन प्रथम तो दुःखित हुआ, फिर रामचन्द्र जी के काज में प्राण जाने में प्रसन्न हुआ । इसके पश्चात् उसने कहा कि अच्छा आप लोग मुझको समुद्र के तट पर ले चलिये । वहाँ अपने भाई को तिलाँजलि देवें । तिलाँजलि देते समय कहने लगा कि, तात, यद्यपि आप अपने कर्मोंही से साकेत बासी हो चुके हैं परन्तु शरीर के रहते हुए मैं आपको भ्राताही समझता हूँ सो इस मुझ दुःखित लुँजकी दीहुई तिलाँजुलि स्वीकार कीजिये । जैसे ही सम्पाति तिलाँजलि दे चुके हैं वैसेही उसका शरीर सुन्दर पंख बलयुक्त होगया । तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ, और उसको मुनि के आशीर्वाद की सुधि आई फिर पुलकित होकर वह बोला कि हे वीर वानरो, मैं उस ऊँचे पर्वत के शिखर पर जाता हूँ वहाँ से सीताजी को मैं देखूँगा, जो एक बार अपना नाम सुनाती आकाश मार्ग से दक्षिण की ओर गई हैं, जिस के देखने पर मैं पहिचान सक्ता हूँ । और ऐसा कहकर उस शिखर को उड़ा और वहाँ से बोला कि लंका पुरी नगर के बाहर पश्चिम ओर एक रमणीक अशोक नाम वाटिका है उसमें सीता एक वस्त्र पहिने नीचे को शिर किये चिंता में मग्न बैठी हैं । वह स्थान यहाँ से चार सौ कोस

है । जो ऐसे चार सौ कोस समुद्र के नांघने की सामर्थ्य रखता है वह वहाँ जाय । निश्चय करो कि सीता वहीं हैं । ऐसा कह वह सम्पाति उड़कर चलागया ।

समुद्र के नांघने में बल की थाह ।

तव सब वानर अपने २ वलकी परीक्षा देते हुए समुद्र नांघने में असमर्थ हुए । अंगद बोले कि मेरे असीम वल को यह समुद्र सीमायुक्त नहीं कर सक्ता था । परन्तु क्या करूं किसी कारण वश लौटने में असमर्थ हूँ । तव जाम्बवान जी बोले कि जो ऐश्वर्य मनुष्य के पास किसी समय रहता है वह उसी मनुष्य को कुछ समय पाय वेश्या के समान धन न रहने पर छोड़ देता है । तो वह मनुष्य अपने पहिले दिनों को स्मरण कर शोकित होता है । मैं किसी समय बड़ा बलवान् था अव वही मैं वृद्ध हुआ हूं । इस समुद्र के नाँघने में असमर्थ हूँ हाँ ६६ योजन अब भी जा सक्ता हूं परन्तु उससे कार्य्य बनता नहीं दीखता । तब हनुमान जी की ओर देखकर जाम्बवान जी बोले कि भला बड़े कठिन कार्य्य करने में चतुर पवन के पुत्र हनुमान आप मौनता क्यों धारण किये हौ, इस कार्य्य में भ्रहाने आपही को यश-भाजन बनाया है ।

लंका को हनुमान का पयान।

तब हनुमानजी बोले कि आपकी जो आज्ञा हो उस कार्य्य के करने में मैं उद्यत हूँ। ऐसा कहकर एक बड़े भारी पर्वत पर चढ़ अपने दीर्घाकार शरीर से पर्वत को कँपाने लगे और मनमें श्रीरामचन्द्र का स्मरण कर "जय हो कौशल किशोर की" ऐसा कह करके ऊपर को उछले। ऐसे शब्द जाम्बवानआदिकों ने भी दुहराया। पवन वेग में प्राप्त पवन के पुत्र को देवतों ने अपने शत्रु व छल नीति कुशल रावण के पुर में जाते देख परीक्षा लेने के लिये सुरसा को भेजा। वह आकाश में अपने छल कपट से हनुमान के मार्ग का विघ्न बनना चाहती थी। परन्तु चतुर रणकुशल कपिनायक उसको पीछे करके आगे बढ़े। फिर शिला समान उतराती हुई सिंहिका ने मारुति की छाया को पकड़ कर उनको खींचा। अपने को नीचे खिंचे जाते जान हनुमानजी बड़े विस्मय को प्राप्त हुए और मनमें कहने लगे कि मेरा बल घटा नहीं है। क्योंकि मैं ऊपर को उछलता हूँ तब भी नीचे को जा रहा हूँ, न जाने यह क्या विघ्न उपस्थित हुआ। फिर देखते हैं कि पर्वत की खोह के समान मुंह बाये समुद्र की सतहपर सिंहिका पड़ी है। तब उसके मुंह में घुस अपने शरीर को इतना बड़ा भारी करलिया कि उसका

पेट फट गया और उसने मरकर अपने रक्त से समुद्र को मंगल ग्रह की छाया पड़ने के समान शोभित किया । फिर आकाश में अपने मार्ग में चले, और आकर दक्षिण के तट पर सुवेल नाम पर्वत पर उतरे और यह सोचने लगे कि ये निशाचर बड़े छलकारी हैं, वेष बदल कर नगर में प्रवेश करना चाहिये । तब अति सूक्ष्म रूप को धारणकर लंका में प्रवेश करने को हुए इतने में लंका बोली ।

लंका व कपि की भेंट ।

शार्दूल विक्रीड़ित ।

आवै ना कपि भूलिहू, नगर में, रे, नीच, शाखा नहीं ।
खावैं राक्षस भागि जा सुख चहै संसार को नेकही ॥
नीचा, नेक विचारता, शशक जीता सिंह रोषै कहीं ।
दूरै दूर पराय भागु अबहीं, जा, नाहिं खाऊं मही ॥

हे दुष्ट क्या तेरी छल नीति को मैं नहीं जान गई । हनुमानजी ने विचारा कि पुर प्रवेश करते ही विघ्न उपस्थित हुआ । ऐसा विचारते ही थे कि लंका को अपनी ओर आते देखा । तब, बल करके उसके एक मूका मारा जिसके आघात से वह अचेत हो गई, फिर सावधान होकर सभय बोली कि हे मंगलमय हनुमान तुम पुर में प्रवेश कर अपने काम को सिद्ध करो ।

लंका में हनुमान।

फिर हनुमान ने पुर में एक एक गृह को और उनके प्रत्येक स्थानों को ढूँढ़ा, फिर बरतनों में, मदिरा के भरे पात्रों में, अन्न की राशियों में, रत्नों के ढेरों में स्त्रियों में वैदेही को ढूँढ़ा और जब उनका पता न लगा तब रावण के उस मंदिर में गये जहाँ वह सो रहा था। देखते हैं कि रावण के चारों ओर हरिनी के समान अनेकों स्त्रियाँ सो रही हैं। तिन सबके बीच वैदेही को ढूँढ़ने लगे। वे रतिश्रम से थकी अपने पति रावण को थकाये सो रही हैं। जब कहीं वैदेही का पता न लगा तो कपिनायक हनुमान मन में विचारने लगे कि इस पुर में कोई स्थान शेष नहीं रह गया कि जिसको मैंने न ढूँढ़ा हो ऐसा विचारते विभीषण के मंदिर में पहुँचे।

विभीषण का गृह।

यहाँ पर देखते हैं कि अनेक उपदेश मय शब्द भित्तियों पर सदैव दृष्टि पड़ने के लिये लिखे हैं। अनादि "राम" नाम लिखा है ऐसा देख हनुमानजी बड़े विस्मय को प्राप्त हुए और कहने लगे कि इस मगह भूमि लंका में यह स्वर्ग लोक दाता तीर्थ कैसे हुआ। फिर मन में कहने

लगे कि मनुष्य को उचित है कि प्रथम उस काम को करै कि जिसके लिये वह गया हो। इससे प्रथम वैदेही का पता लगाना उचित है।

अशोक में हनुमान।

तब हनुमान अशोक वाटिका की ओर चले। वहाँ पहुँचकर देखते हैं कि मणियों के प्रकाश से वाटिका अपने पुष्प लतादि वृक्षों से शोभायमान हो रही है। जैसे धर्मवान् पुरुष पुत्र पौत्रों तथा धन से संयुक्त हो सुखी होता है। वहाँ एक वृक्ष के नीचे शिर नीचा किये हुए नेत्रों से अश्रुधारा छोड़ती, ऊर्ध्वश्वास द्वारा ही अपने पति राम को पुकारती, असहाय सीता को देख हनुमान विचारने लगे कि बस वैदेही यही हैं। इतने में रावण सोकर जागा तो जानकी का स्मरण कर अपनी स्त्रियों के साथ उक्त उपवन में आया। रावणरूपी व्याघ्र को आते देख खूटा में बँधी मृगी के समान सीता छटपटाने लगीं और अपने अंगों को मूंद व सिमिटकर भीतर ही भीतर रोती करुणारमण श्रीराम की गुहारि मचाने लगीं। तब रावण बोला सीता तुझको क्या हुआ है कि मेरे इतने समझाने पर भी अपनी हठ नहीं छोड़ती।

——:※:——

पतिव्रता सीता ।

वैदेही शिर नीचे किये हुए बोलीं "दुष्ट तू अपनी कादरता को वीरता समझता है । मैं वीर शिरोमणि सिंह की स्त्री हूँ तुझ शृगाल की ओर देखने ही में अपनी प्रतिष्ठा हानि समझती हूँ हे शृगाल ! तू जनस्थान में वीरों की तरह युद्ध न कर छल से मुझ को यहाँ हर ले आया है परन्तु निश्चय कर वह स्थान जल थल में कोई नहीं है जहाँ रघुवंश नायक न पहुँच सके हों । फिर जटायुजी ने तो तेरे इस अपकृष्ट अपकार को अवश्य बतलाया होगा । अब तेरा सपदिही नाश होगा । मृत्यु तुझको पाय बड़ी प्रसन्न होगी" ऐसा कहकर सीता चुप होगईं । सीता के ऐसे दारुण शब्द सुनकर रावण राक्षसियों से बोला कि इस सीता को अधिक त्रास देव "हे सीते यदि तू एक मास में अपने वर्तमान समय के स्वभाव का न परिवर्तन करेगी तो जान ले कि तू भोजन के साथ मेरे उदर में पहुँचेगी" ऐसा कह कर चला गया ।

दुःखित सीता ।

उसके चले जाने पर सीताजी त्रिजटा नाम राक्षसी को जो उनको सदा धैर्य्य देती थी पकड़कर रोने लगी और

बोली-हा ! अब इस अधम शरीर के रहते राघव को न देख सकूंगी । अस्तु अब शीघ्रही कोई ऐसा उपाय कर कि मैं इस शरीर पिंजरा से निकलकर अपने प्राणवल्लभ को प्राप्त होऊँ । तब वह सीता को अनेक प्रकार से समझाकर चली गई । फिर सीता उसी प्रकार नीचे शिर किये बैठी रामचन्द्रजी के चरणों की रेखा गिनती थीं कि इतने में एक मुद्रिका वृक्ष के ऊपर से हनुमानजीने छोड़ी । तब वह अपने प्रकाश से अपने में राम नाम को दिखाती सीता जी के आगे गिरी ।

विस्मय में सीता ।

इस मुद्रिका को सीताजी ने गँगा तट पर अपनी अँगुली से निकालकर राघव को देव नदी की उतराई देने के लिये दिया था, तब से रामचन्द्रजी उक्त मुद्रिका को अपने पासही रक्खे रहे सो ऐसी मुद्रिका को अपने सम्मुख पृथ्वी में पड़ी देख सीताजी, बड़े शोक तथा विस्मय को प्राप्तहुईं । तब हनुमान जी धीरे २ वृक्ष से उतर रामचन्द्रजी के समाचार वर्णन करने लगे, परन्तु सीता ने यह सब रावण की माया ही जाना, तिससे अधिक भयातुर हुईं । तब हनुमान जी सीता को विश्वास दिलाते मधुर वचनों में बोले कि हे माता ! मैं हनुमान नाम वानर महाराज रामचन्द्रजी का

दूत हूँ। फिर सब वृत्तांत सुग्रीव के मिलने आदि का बर्णन किया।

मुदिता सीता।

तब सीताजी को विश्वास हुआ कि यह सत्य ही रामदूत है। फिर सीताजी ने कहा कि हे कपि! श्रीरघुवंश-मणि की कुशल सुनाओ, तब हनुमान जी रामचन्द्रजी का सँदेशा कहने लगे।

राम का सँदेशा।

हे प्रिया! जिस मृग को तुमने मारने भेजा था वह मृग न होकर मारीच नाम राक्षस था, उसको हम दोनों मारकर आश्रम में आये, वहाँ तुमको न पाकर वनों में ढूँढ़ते ऋष्य-मूक नाम पर्वत पर आये। वहाँ सुग्रीव से भेंट हुई उन्ही के ये हनुमान नाम मंत्री हैं, इन्हों ने सुग्रीव से हमारी मित्रता कराई है, सुग्रीवजी ने तुम्हारी खोज लगाने के लिये प्रतिज्ञा की है, जब से तुम्हारा वियोग हुआ सकल सुख मुझको विपरीत होगये हैं, यह मलय समीर जेठ की जलाकों से बढ़कर उष्ण लगता है, पहाड़ों के झरनों का शीतल जल मुझको पाय उष्ण होजाता है-मुझको फलों में स्वाद नहीं आन पड़ता तुम्हारा स्मरण करते २ जब कभी मूर्छा आती

है परन्तु हृदय में फिर तुम्हारा प्रेमरूपी चातक प्रिया प्रिया रटने लगता है तो नेत्र खोलने पर तुमको न देख महा दुःखी होता हूँ, मनुष्यों को तथा अन्य जीवों को दम्पति रूप में जाते देख तुम्हारे विरह में कृशित होने से शिर पर हाथ धर के अपने कर्म्मों को दोष देते बैठ जाता हूँ। हे सुन्दरी! हमारे कर्मों से तुमने इतना दुःख पाया है अब क्या वह कोई दिन होगा कि तुम मेरे सम्मुख जल तथा फल लेकर बड़े अनुराग से भोजन करनेका आग्रह करोगी। हे माता! इतना कहने के पश्चात् धीर धर रामचन्द्रजी विह्वल होकर गिरपड़े।

सीता का राघव की कुशल पूँछना।

यह सुन सीता बड़े करुण स्वर से रोदन करने लगीं फिर गद्गद कण्ठ हो पूँछने लगीं कि भला मेरे न रहने से लक्ष्मण समय पर भोजन करते हैं? प्राण नाथ मुनियों को भोजन कराकर भोजन करते थे, और इसी बीच में यदि कोई अन्य अतिथि आजावे तो उसका भी वैसाही सत्कार करते थे भला स्वामी के इस प्रण को लक्ष्मण निर्वाह करते हैं? इसी प्रकार बारम्बार सीता रामचन्द्रजी के समाचारों को दोहराती रहीं और हनुमानजी सबका उत्तर देते गये। फिर कपिनायक मारुतनन्दन बोले—अम्ब! परिश्रम अत्यन्त

करने से क्षुधा लगी है। तब जानकीजी ने कहा-यह वाटिका अनेक फलों से भरी है, परन्तु पुत्र, अनेकों राक्षस इसकी रक्षा करते हैं। तब हनुमानजीने दीर्घाकार शरीर से वैदेही को प्रणाम किया और बोले, हे अम्ब! तुम्हारे चरणों की कृपा से इस लंका को उखाड़ कर एक हाथ पर धरे समुद्र को नांघ सक्ता हूँ। तब जानकीजी कपि को बलसम्पन्न जानि बोलीं अच्छा तुम्हारा कल्याण हो, फल खाओ।

वाटिका में बीर बानर।

केशरी कुमार ने प्रथम तो फलों को खाया जब तृप्त होगये तो वृक्षों तथा लताओं को उखाड़ २ कर इधर उधर फेंकने लगे। इतने में अनेकों राक्षस मुँह वाये इन कपीश की ओर दौड़े, तिनको बीचही में लँगूर में लपेट एकही बार में शिला पर पटक कर मार डाला, और फिर वाटिका उजाड़ने लगे। उनमें से कोई बचे बचाये कांखते रावण से जाकर कहने लगे कि अशोक को एक बानर उजाड़ रहा है जब हम लोगों ने उसको मना किया तो उसने हम रक्षकों में से अधिकों को मार डाला है। तब रावण ने कुछ वीरों को उस कपि के मार डालने को भेजा। वे आकर बाणों की वर्षा करने लगे तो हनुमानजी बड़े जोर से किलकिलाकर एक बड़ी भारी पर्वत की शिला को उठाकर धान की लाँक

की तरह उन राक्षसों को पीटने लगे। जब उनका नाश कर चुके तो फिर अशोक को सशोक करने लगे। तदनन्तर रावण को फिर सूचना मिली, कि वे भेजे हुए सब योद्धा मारे गये, तब मेघनाद जो पिता के पास बैठा था उसकी ओर रावण देखकर बोला कि पुत्र जाकर देखो तो वह कौन हठी वानर है और ऐसे वानर को पकड़ कर मेरे पास लाओ, मैं उसको देखना चाहता हूँ।

मेघनाद तथा हनुमान का युद्ध।

मेघनाद वाटिका को उजाड़ी हुई देख बड़े क्रोध से हनुमानजी के ऊपर बाण वर्षा करने लगा। उसकी हस्तलाघवता को देख कपिनायक ने उसको महाबलवान् राक्षस जानकर एक भारी शिला से अमित बाणों के समूह को नष्ट कर दिया और दूसरी शिला मेघनाद के रथ के घोड़ों पर छोड़ी। इन्द्रजित् ने उस बड़ी भारी शिला को खण्डों में कर पृथ्वी पर गिरा दिया और बाण वर्षा हनुमान पर करने लगा। समय पाय हनुमानजी ने उसके रथ के घोड़ों को तथा सारथी को मार डाला। तब मेघनाद मल्लयुद्ध करने लगा, लड़ते २ दोनों आकाश को चले गये, फिर दोनों पृथ्वीपर आगिरे जब इन्द्रजित ने अपने पराक्रमरूपी अरणी को हनुमानरूपी अग्निमें झोंकदिया, और कृतकार्य न हुआ।

बँधे हुए हनुमान ।

तव मायायुद्ध कर ब्रह्मपाश से हनुमानजी को बाँध लिया। और हँसते हुए हनुमानजी ने भी अपने को बँधवा लिया मानों उससे यह ध्वनि निकलती है कि स्वामी के कार्य में प्राण अर्पण करना प्रथम सहज कर्म समझना चाहिये। फिर मेघनाद हनुमान को घसीटते रावण के निकट सभा में ले आया। पुत्र को घायल तथा शिथिल देख रावण ने हनुमान को एक वीर वानर समझा।

हनुमान प्रति रावण के बचन ।

और बोला रे नीच, ऐसी अपनी दुर्दशा कराने के लिये तू ने अशोक को उजाड़ा। तुझ मरुभूमि को मेरे प्रताप रूपी घनघोर वर्षा का ज्ञान नहीं है, बता तू कौन है।

रावण प्रति हनुमान के नीति तथा बीर रस भरे हुए बचन ।

तव हनुमान बड़े गम्भीर तथा वीर रस भरे नीति साने वचनोंसे बोले हे दशशीश! मनुष्य अपने किसी कार्य्य को नष्ट देखने के पूर्व अन्य जनों के अनेकों कार्यों को नष्ट कर चुकता है, यह बल शक्ति छोटी मूषिका की तरह मूंड़

हिलाते एक स्थान पर नहीं ठहरती, और अन्तर्वाहिनी सरिता की तरह आज यहाँ दृष्टि पड़ती है तो कल दूसरे स्थान में वहने लगती है यह व्यभिचारिणी स्त्री के समान वहुत दिन तक एक पुरुष के साथ नहीं रहती, यह जिसमें अपने धर्म भ्राता को नहीं पाती वहाँ अल्पकाल ठहरती है। आप मेरे साहस से जान सक्ते हो कि मैं किसी असीम पराक्रमी पुरुष का दूत हूँ। आपके निकट आने के पहले हमने जो वन उजाड़ा है, उससे यह समझो कि हम किसी प्रकार की संधि के लिये आपके पास नहीं आये हैं, वरन् युद्ध के लिये। कहो कि तुम तो बाँध लिये गये हो सो यह तो हमारी इच्छा थी कि जगत् विख्यात रावण को देखें। हे रावण मनुष्य कोई काम क्रोध के बश होकर कर डालता है, तो फिर उसको न्याय कसौटी में परख खोटा जान उसको छोड़ प्रायश्चित्त करता है, योग्य पुरुषों की कीर्ति श्वेत वस्त्र के समान है वह किंचित् मात्र मल से मैली हो जाती है। फिर अधर्म से सम्बन्ध रखने वाले काम मनुष्य को श्रेष्ठ नहीं करते वरन् नीच बनाते हैं। इस प्रकार पापों के पुंज एकत्र होने से वे अपने भार से मनुष्य को दाब लेते हैं हम जितनी बातें कहते हैं वे न्याय तथा धर्म से भरी हैं। इसी प्रकार तुमने भी "सीता-हरण" महानीच कर्म किया है। अब तुम्हारा भला तभी होगा कि जब वैदेही को राम-

चन्द्रजी को दे दो और सस्त्रीक हाथ जोड़ कर उनसे क्षमा माँगो । हे दशशीश ! मनुष्य कार्य्य के पूर्व और उसके बीच में विचार नहीं करता, फिर अंत में विचारता हाथ मलता है । इससे तुम्हारा भला उसी समय तक है जब तक रघुबंशमणि तुम्हारे ऊपर न उत्थान करें ।

हनुमान के मारने में उद्यत रावण ।

तब रावण हँस कर बोला कि तुम बनबासी के दूत हो और वही मनुष्य शत्रुके यहाँ दूत बनाकर भेजा जाता है जो चतुर होता है अस्तु तुम अपनी जाति में चतुर कहे जाते होगे । इसी कारण तुमने इतनी बातें की हैं परन्तु यह तुम नहीं जानते कि रण की बातों में बिजय शब्द के अतिरिक्त जिसको सब बातें अपमान सूचक जान पड़ती हैं उस मुझ रावण के समक्ष वे दारुण शब्द कहकर अपने लिये क्या बिचारा है ? यद्यपि दूतका मारना अयोग्य है । परन्तु तेरी दुष्टता मुझको मृत्यु दंड देने को हठ करती है ।

धर्मशील विभीषण के बचन ।

इतने में विभीषण ने कहा कि जब आप सार्वभौम महाराज नीति सीमा का उल्लंघन करेंगे तो नीति नियमों को कोई न पालन करैगा अच्छा होगा कि इस बानर के

शरीरको कुछ पीड़ा पहुँचाकर यह मुक्त करदिया जाय, तब विभीषणके वचनोंको सुन रावण बोला अच्छा ऐसाही हो॥

लंका में अग्नि।

तब पूँछ जारने को निर्धारित करके हनुमान जी की पूँछ में तैल से बूड़े हुए वस्त्रों को लपेट कर अग्नि लगादी गई। मित्र के पुत्र की पूँछ जारने का तात्पर्य्य समझ अग्नि देव वस्त्रों के नीचे न गये। फिर हनुमानजी ने यह विचार किया कि शत्रु को प्रताप भी दिखा देना चाहिये, तब पूँछ को चारों ओर घुमा २ कर नगर जारने लगे। प्रथम रावण के अनेकों मंदिरों को दग्ध किया, राक्षसराज की रंगशाला तथा उसकी स्त्रियों के विशाल सदन, मेघनाद का अनूपम मंदिर, अकम्पन, दुर्मद, प्रहस्त, विद्युज्जिह्व आदिकों के गृह नष्ट किये, जब सब भवन चिता के समान शव की पिंडी को भस्म करते धूम और ज्वालाओं से युक्त देख पड़ने लगे तो एक गृह को दावानल लगे हुए वन में हरित वृक्ष की तरह खड़ा देख हनुमान जी उसकी ओर दौड़े।

विभीषण का मंदिर।

परन्तु वहाँ पहुँच देखते हैं कि जैसे ऊँची पृथ्वीपर जल नहीं चढ़ता वैसेही उस सुकृती गृह में आग नहीं लगती।

विभीषण का अपने गृह के दग्ध करने में आग्रह करना।

इतने में विभीषणजी ने हनुमान जी को पुकारा कि हे कपि, कुबास के कारण इस मेरे गृह को भी दग्ध करने का दंड कीजिये। तब अग्नि रूप हनुमान जी बोले, काल भी आपके गृह को दग्ध करने की सामर्थ्य नहीं रखता जिसमें वह जो अनादि "राम नाम" लिखा है वह इन ईतिभीतियों से क्या काल से भी रक्षा कर सक्ता है, जिसके हृदय में प्रेम सरिता को उमड़ाती हुई देखता है तब वह उसके यहाँ जाता है। अस्तु, आप वह हैं और वह आप है। कहिये आप का यहाँ बास कैसे है।

विभीषण तथा मारुति का सम्बाद।

तब विभीषण बोले कि मैं दशशीश का विमात्र भाई हूँ। विभीषण मेरा नाम है। मैं सदैव इसी चिंतवन में लगा रहता हूँ कि जो प्रभु ज्ञानी ध्यानियों को अगम हैं वे मुझ पापी को कैसे प्राप्त होंगे। हे कपि! हम अपने सहवास की ओर तथा जाति की ओर देखते हैं तब मन को बड़ी पीड़ा होती है। आपको किसी द्वार पर यह लिखा मिला होगा। "एक लक्ष पवनाश्रित मुनियों को इस गृह के स्वामी ने

भक्षण किया है"। दूसरे द्वार पर यह लिखा मिला होगा कि "वेदों को उच्चारण करती हुई कई लाख जिह्वाओं को इस भयंकर राक्षस ने भक्षण किया है।" किसी के कवच के ऊपर राज प्रसन्न रूपी अधर्म करने के संकेतिक शब्द लिखे हैं। इन सब कारणों से मैं दुःखित रहा करता हूँ। आपके मुख से नीतिमय वचन सभा में सुनने से मैंने जाना था कि आप कपि की आकृति रखते हुए कोई महान् पुरुष हैं, फिर यह लंका जो रावण प्रताप जल से रक्षित थी, उसको आप ने दग्ध करके राख कर दिया। वे देखो उल्कापातके समान बड़े २ धवरहर गिरते जल रहे हैं अब आप प्रसन्न हों। तब हनुमान जी बोले योग्य पुरुष अपनी योग्यता से सद्-गुणों को अपने में लोप किये रहते हैं। फिर गद्गद कंठ हो विभीषणजी बोले भला दीन पालक रघुनाथजी मुझ दीन को अपने चरणों में आश्रय देंगे? सीताहरण के पूर्व ही मैं चरण-शरणमें आने वाला था, परन्तु इसी बीच दुष्ट रावण यह अपकृष्ट कर्म कर बैठा अब मुझको शत्रु का भ्राता जान कर तथा कपट से भाई का कार्य्य साधन करता मान यदि मुझे न अपनावैं तो क्या आश्चर्य है, परन्तु वह तो अन्तर्यामी हैं क्या मेरे हृदय के भावों को न जानते होंगे। तब हनुमान अग्नि से धधाती हुई पूँछ को पकड़ कर बोले, बंधु! प्रभु शरणापन्न पुरुष में पतित तथा सुकृती का भिन्न भाव नहीं

रखते, सब को सेवक पद देते हैं, इसमें पिछले चिढ़ते हैं परन्तु स्वामी हँस करके रह जाते हैं और कहते हैं कि मेरे दृष्टि क्षेत्र में कोई चीज छोटा नहीं है। जिसको देख पतित भी अपने को श्रेष्ठ समझते थे, उस मुझ पापी को रघुनाथ जीने इतना श्रेष्ठ बनाया कि सुकृती जन भी अपनी अर्जित सुकृत वल्ली से मुझको स्पर्श नहीं कर पाते। तब विभीषण बोले, हे सुहृद! इसकाम में हमारे आप सहायक हों। हनुमानजी ने विभीषण को वचन दिया, और समुद्र में कूद उसके जल को खौलाने लगे।

जानकी के सम्मुख हनुमान।

तिसके पीछे स्वस्थ हो श्रीजानकी जी के पास आकर सब वृत्तांत वर्णन किया। मैथिली बोलीं "पुत्र तुम्हारे लिये मैं बड़ी चिंता में थी बड़ी बात हुई कि तुम शत्रु के छलबलों से बच आये," । हनुमानजी बोले, अम्ब! अब रघुपति के पास जाने की आज्ञा दीजिये। तब वैदेही बोलीं क्या फिर हम अपना कोई न देख इन निशाचरियों से त्रासित की जावेंगी। हे हनुमान! मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ अच्छा स्वामी तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, उनसे यह निवेदन करना कि मेरा मन मधुप आप के चरण कमलों का रस पीने चला गया है, जब से आप के यहाँ गया है तब

से लौटकर नहीं आया, इसीकारण शरीर को त्यागकर प्रभु के दर्शन करने में असमर्थ हुई फिर वह तो राघव के हृदय किवाड़ों को लगातार खटखटाता होगा परन्तु वनमें श्रमित होनेसे अधिक सोगये होंगे । ऐसा कह वैदेही रोनेलगी ।

हनुमानजी का वैदेही को समझाना ।

तव हनुमानजी बोले, माता अव क्यों दुःखित होती हो, जिस समय के लिये मैं अल्प शब्द को अधिक जानकर नहीं कहता–उसी समय के बीच इस दुष्ट रावण को मार कर वीर शिरोमणि आपको लेजाँयगे । इसको सुनकर वैदेही अपने आँसुओं को पोछने लगीं फिर हनुमानजी बोले कि प्रभु ने आपके विश्वास के लिये मुद्रिका दी थी, सो आप भी प्रभु की पहिचान के लिये कुछ दे दीजिये । तब मैथिली चूड़ामणि को शिर से उतार कर उससे बोलीं ।

चूड़ामणि प्रति सीता का कारुणीक निवेदन ।

"हे चूड़ामणि ! तुम बड़े भाग्यशाली हो जो अब आर्य्य को देखोगे अच्छा जाकर हमारी ओर से रोते हुए दण्डवत करना और फिर हमारा यह दारुण वृत्तांत सुनाना" ऐसा कहकर उसको हनुमान को दे दिया तब हनुमानजी प्रणामकर चलने लगे । उससमय वैदेही की दशा महाशोक-

जनक हुई और बारम्बार पवननंदन से शीघ्र लौटने को कहती बहुत समय तक हनुमान की ओर देखती रहीं। जब हनुमानजी समुद्र के तट पर आये। तब ऊपर को मुख करके उछले ते पहिले सीधे आकाश को चले गये फिर दक्षिण से उत्तर को चले।

बानरों में हनुमान।

जब उत्तर तट पर पहुँचने ही को थे कि अंतरिक्ष ही में हर्ष सूचक किलकारी की। तिस बारिद के समान शब्द को सुनकर मृतक दादुरों की तरह सब बानर पुनर्जीवन को प्राप्त हो आकाश की ओर देखने लगे। फिर थोड़ी देर में हनुमानजी काले पीले मेघों को अनुगामी किये हुए देख पड़े, फिर पृथ्वी पर आकर सब बानरों से हार्दिक स्वागत पाकर आनन्दित हुए और फिर लंका का सब वृत्तांत वर्णन किया—तब आनन्द को हृदय में उमड़ाते किष्किन्धा की ओर पयान किया और सुग्रीव के पुत्रसम पालित उपवन को उजाड़ रामचन्द्रजी के पास पहुँचे।

राम के सम्मुख हनुमान।

फिर सब लोगों ने राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव को प्रणाम किया, तब जाम्बवान जी बोले कि यह हनुमानजी आपके

चरणों की ओर निहार रहे हैं, यही वीर मैथिली के समाचार लाकर उभय ओर के प्राण दाता बने हैं। ऐसा सुनते ही रामचन्द्रजी ने उठकर हनुमान को लिपटा लिया। प्रभु का इतना आग्रह देख कपि ने चरण शरण ली फिर धीर धर कर चूड़ामणि दिया तथा सब समाचार वर्णन कर हाथ जोड़कर बोले, वैदेही श्वासों की गिनती आपके मिलने के लिये कर रही हैं, इससे शीघ्र चलिये।

सेना का पयान।

इसके पश्चात् तुरन्तही सुग्रीव ने सेना की तय्यारी की और विनायक का नाम लेकर पयान किया। हनुमानजी रामचन्द्र को, अंगद लक्ष्मण को, अपने ऊपर चढ़ाकर चले, कभी आकाश में तथा कभी पृथ्वी पर सेना के साथ चलते थे, वानरराज सुग्रीव की सेना के पदाघात से पृथ्वी काँप उठी, उन असंख्य वानरों के जल पीने से अनेकों नदियाँ सूख गईं, मार्ग के फलित वृक्षों में वानरों द्वारा दुकाल पड़ गया। फिर वह शत्रु को कँपाने वाली सेना सिंधु के किनारे पहुँची। सुग्रीव, जाम्बवान, हनुमान आदि श्रेष्ठ वानरों के साथ रामचन्द्रजी समुद्र पार करने की मन्त्रणा करने लगे।

प्रभु के सन्मुख विभीषण ।

इतने में एक पुरुष अपने चार साथियों के साथ आकाश में देख पड़ा, जिसके मुखसे सरल तथा दीन शब्द निकल रहे हैं "मैं आपके शत्रु रावण का भ्राता हूँ, अधम राक्षस हूँ । पतित पावन की शरण लेने को आया हूँ, अपने पापों की परिखा से आप कृपालु के निकट नहीं पहुंच सक्ता हूँ" । तव सब लोग ऊपर को देखने लगे, फिर उस निशाचर ने अपने उक्त शब्दों को दुहराया, तव रामचन्द्रजी ने सागर के पार करने के विचार को छोड़ इस निशाचर के अंगीकार करने के विचार को मन्त्रिमंडल में उपस्थित किया । मंत्रि मंडल ने प्रकट किया कि हम दृढ़ सम्मति देते हैं कि इस पुरुष के अनुकूल काम न किया जाय । तब रामचन्द्र बोले मंत्री रूप में होने से आप लोगों ने अपने धर्म की मीमांसा कहके यथार्थ वचन कहे हैं, परन्तु मुझको भी अपने धर्म की ओर देखना चाहिये, कि शरणागत प्राणी कपट रूप में शत्रु भी है, तो अपने अर्थ ही के हेतु है, इसका प्रतीकार करने से अपने ऐश्वर्य्य में त्रुटि देखना है । हे नीति विशारद मंत्रिगण जो भूमि अपनी हरित तृण रूपी सम्पत्ति को परार्थ दीन पशुओं को देती है, उसको विष्णुभगवान् मेघों द्वारा द्विगुण सम्पत्ति देते हैं । अस्तु यह राक्षस

अवश्य अंगीकार किया जावे । तव हनुमानजी प्रसन्न होकर विभीषण को बुला लाये, तिसको आता देख भक्तवत्सल उटकर मिलने चले परन्तु वह प्रेम से भरा विभीषण आगे न वढ़ सका और पृथ्वी में गिरकर प्रेम मूर्छा से मूर्छित होगया । तव राघव ने उसको दोनों हाथों से वल करके उठाया, और समीप वैठाकर लंका के समाचार पूँछने लगे। उस विभीषण ने यथाक्रम समाचार वर्णन किये । फिर रामचन्द्रजी ने समुद्र का जल मँगाकर विभीषण के तिलक किया और वोले मैं आपको आज से लंकेश करता हूँ । इसको देखकर वानरों ने वड़ा भारी जयघोष किया ।

समुद्र पार करने का विचार ।

फिर से मंत्रिमंडल सागर के पार करने का विचार करने को वैठा, विभीषण वोले कि प्राचीन लोगों से सुनता आया हूँ कि यह सागर इक्ष्वाकु वंश से उत्पन्न है अस्तु, अपने वंश से उत्पन्न सागर से उसके पार करने की सहायता अवश्य लीजिये, मेरी बुद्धि में आता है कि आप पार होने के लिये सागर से विनय करें ।

समुद्रप्रति राघव का निवेदन ।

तव रामचन्द्र जी कुशासन विछा सागर तट पर वैठकर रत्नाकर से विनय करने लगे कि मैं इक्ष्वाकुवंश में

उत्पन्न राजा दशरथ का पुत्र हूँ, मेरी भार्य्या सीता रावण से हरी गई है, दुष्ट को प्रतिफल देने के निमित्त मैं लंका पहुँचना चाहता हूँ । इससे मुझको तथा मेरी इस सेना को आप मार्ग दीजिये । योग्य पुरुष उपकार को सदा मानते हैं आप मेरे पूर्वजों से उत्पन्न हैं जैसे गुरुपुत्र यजमान के द्वार पर जाता है वैसेही मैं आप के द्वार पर आया हूँ ।

क्रोध में लक्ष्मण ।

जब रामचन्द्र को तीन दिन निराहार व्रत करते बीत गये तब लक्ष्मण रामचन्द्रके क्लेश को न सहसककर बोले कि हम क्षत्रियों को अन्य जाति के धर्म को न ग्रहण करना चाहिये, मनुष्य को अपने धर्म में दृढ़ देख दैव भी सहायता करता है । इस घहराते हुए दुष्ट सागर को बाण की अग्नि से सोख लीजिये । ऐसा कह भाई को धनुष बाण हाथ में दे दिया ।

दंड बिधान में राघव ।

और रामचन्द्र जी धनुष बाण को हाथ में लेकर बोले कि दुष्टों के साथ सज्जनता दिखाना उनकी दुष्टता को द्विगुण करना है उनके साथ अपने स्वभाव को अधिक तर क्रूर बना लेने से उनकी क्रूरता का गोपन होजाता है ।

जैसे विष जहरमोहरा विष को हर लेता है । ऐसा कहकर बाण को कानों तक खींचा ।

सागर पर कोप ।

उसके खींचते ही अग्नि पर चढ़े हुए तैल सदृश सागर का जल बुल्ला देकर चुरने लगा और जलचर जीव उस प्रचंड अग्नि से चेष्टा रहित हो जल के ऊपर उतराने लगे ।

शरणागत सागर ।

ऐसी दशा देख सागर शीघ्रही ब्राह्मण का वेष धारण कर अनेकों रत्नों को थार में भर कर कोशलकिशोर के सम्मुख लेकर सभय बाण की ओर देखता विनय करने लगा "यद्यपि मैं यह जानता था कि आप निरशन व्रत धारण किये मार्ग के हेतु मेरे तटपर ठहरे हुए हैं परन्तु, नाथ, आपकी प्रथम आज्ञा मुझको जड़रूप में रहने की दीगई थी, उसीपर मैं स्थिर रहा आपने प्रकृति के अनुसार स्वभाव बनाया है अब आप जो आज्ञा दें सो करने को उद्यत हूँ" सागर के ऐसे दीन व धर्मसाने वचन सुनकर रामचन्द्रजी सागर को अभय करते हुए बोले कि हमको पार उतरने की युक्ति बताओ । तब सागर बोला नल व नील नाम के दो बानरों से सेतु की रचना करवाइये, उनके

डाले हुए पाषाण समुद्र में उतराते रहेंगे, और मैं भी अपनी लहरों के रोकने में सहायता करूँगा, आप मर्य्यादापुरुषोत्तम हो इस जल को थल और थल को जल बना सके हो यह आपका कौतुक भी अन्य कौतुकों की भाँति होता है। फिर सागर ने निवेदन किया कि जो बाण आपके दोनों करों के बीच धनुष पर खड़ा है और जिसकी ओर देख मैं काँप रहा हूँ इसके द्वारा मेरे उत्तर तट वासी दुष्टों का नाश कीजिये, उनसे मुझको बहुत पीड़ा मिलती है। तब रामचन्द्रजी ने उस बाण से उन दुष्टों का नाश किया।

सेतु का निर्माण।

इसके पश्चात् बानरों ने बड़ी २ शिला लाना प्रारम्भ कर दिया, लाखों बानरों के हाथों से शिला लेना व सेतु बनाना इस नल नील के कार्य्य को देख रामचन्द्रजी विस्मित हुए। जब सेतु शुद्ध बनकर तय्यार होगया और शिल्प कर्म में महा प्रवीण नल नील से उसकी परीक्षा करा लीगई तब रामचन्द्रजी से दोनों भ्राताओं ने सेतु के निर्माण हो जाने का समाचार निवेदन किया।

सेतु पार करती सेना।

तब सेना का पयान सुग्रीव जी ने कराया और रामचन्द्रजी व लक्ष्मण दोनों भाई हनुमान व अङ्गद की पीठ पर

चढ़कर चले। तब वानर लोग समुद्र प्रति कहते थे "हे अभिमानी सागर, तू वैदेही के ढूँढ़ने में एक बड़ा भारी विघ्न हुआ था तू जानता था कि संसार में मेरे सदृश कोई नहीं है। देख, राघव तेरी छाती पर हम लोगों को चढ़ाकर तेरे सहवासी को मारने जाते हैं। उस के मारने पर परोसी के रूप में होने से तूभी दुःखित होगा" इस प्रकार की बातें कहते उछलते कूदते समुद्र के दक्षिण तट पर पहुँचे और फिर रामचन्द्रजी सेतु को पारकर सुबेल नाम पर्वत पर सहित सेना के उतरे।

लंका।

लंका में बड़े ऊँचे २ धवरहर जिनमें विविध प्रकार की पताकायें फहराय रही हैं, मानों वीर गणों के बिजय यश को गाती हैं, स्वर्ण की भित्तियों में जड़े हुए विचित्र हीरा प्राकार का प्रकाश प्रकट करते हैं, जिससे यह लंका उदयघाटी के समान हो पथिकों को बड़े बिस्मय को प्राप्त कराती है, स्त्रियों के झुंड के झुंड ऊँचे मंदिरों पर चढ़े बानर कटक को देख रहे हैं, कहीं २ पर छल कपट में रण योद्धा सैन्य तथा गिरि दुर्गों पर चढ़े अगणित बानर चमू का भेद लेने के लिये खड़े हैं, दुर्गों पर बृहन्नालिका व शतघ्नी चढ़ाई जारही हैं, मानों उनसे रावण के हृदय का

भाव जान पड़ता है कि संधि न होकर युद्ध होगा; चारों ओर के द्वार भीतर से बंदकर लिये गये हैं, वनदुर्ग में जो मार्ग थे, वे भी सब बंद हैं, उनमें बड़े तामसी सिंहादिक जीव चिंघड़ रहे हैं, पुर में प्रवेश होने के लिये कृत्रिम राज मार्ग बने हैं, जो यन्त्र के प्रयोग करते ही पथिकों को बड़े गहिरे खावों में डाल देते हैं-चारों प्रधान द्वारों में व नगर प्राकार में ऐसे गुप्त यन्त्र लगे हैं कि बिना युद्ध किये ही शत्रु को परिताप पहुँचा सक्ते हैं, ऐसा दृढ़ प्रबन्ध होते हुए भी लंकाधिराज रावण ने अपने नगर की रक्षा के लिये ऐरिण-दुर्ग[1], धन्वदुर्ग[2], जलदुर्ग[3], गिरिदुर्ग[4], सैन्यदुर्ग[5], तथा सहाय दुर्गादिकों[6] पर अतुल बलशाली वीर निशाचरों को लंका की रक्षा के हेतु नियत किया है।

मंत्रि मंडल में रामचन्द्र।

ऐसी सुरक्षित लंका नगरी को रामचन्द्रजी ने सुवेल पर्वत से देखा, और तब उस पर आक्रमण करने का प्रश्न अपने मंत्रिमंडल में किया। राजनीति विशारद विभीषण

नोट—१ खात काटे पत्थर गुप्तमार्ग ऊपर भूमि जिसके समीप हो।
२ जिसके चारों ओर जल का अभाव हो।
३ जिसके चारों ओर बहुत जल हो।
४ जो जलके स्थान में बड़ा ऊँचा एकाँत में बनाया जाय।
५ जिसमें कवायद के ज्ञाता बहुत से शूर बीर हों।
६ जिसमें शूरवीरों के अनुकूल बंधु जन रहते हों।

बोले कि "अभीतक आपने किसी प्रकार की युद्ध की सूचना रावण को नहीं दी, जो मनुष्य शत्रु को विना सूचना दिये हुए संग्राम करते हैं वे युद्ध वीर नहीं कहलाते-दूसरे, जब एक राजा अन्य किसी राजा पर उत्थान करता है, तो एक चतुर दूत भेजकर उस (शत्रु) के मनोगत भाव को जान लेता है, हे कोशलेश, बुद्धिमान् केवल वदन देखने ही से मनुष्य की बुद्धि रूपी सरिता की थाह का अनुभव कर लेता है, और जब सम्भाषण हुआ तो जय अथवा पराजय जो होने को होती है वैसे भविष्य समाचार अपने स्वामी से आकर वर्णन करता है, अस्तु, अंगदजी, जो राजनीति में प्रवीण हैं वह भेजे जाँय, जिनके द्वारा रावण के हृदयस्थ भावों के भेद मिल जाँयगे। बुद्धिमान् अहेरी जब चारों ओर से मनुष्य की बुद्धि रूपी मृगी को घेर लेता है तो वह फिर अहेरी के आतंक में आजाती है" इतना कह कर विभीषणजी मौन होगये, तब सुग्रीव जाम्बवान सुषेण आदि मंत्रियों ने विभीषण जी के कथन का समर्थन कर अंगद को भेजना निश्चित किया।

अंगद गमन।

रामचन्द्रजी अंगद से बोले, पुत्र, नीति शास्त्र शिक्षा में सुगम नहीं है, वरन् वह सूक्ष्मबुद्धि का सहगामी है, जो तुम

में वर्त्तमान है । रावण से समयानुसार बातें करना । ऐसा कह राघव ने अंगद के शिरको सूंघा और आशीर्वाद दिया-अंगद राम लक्ष्मण तथा अन्य श्रेष्ठ जनों को प्रणाम कर लंका नगर को चले, मार्ग में विचारने लगे कि यह राक्षसों का प्रसिद्ध नगर है, ये लोग युद्ध विद्या में चतुर हैं, इन लोगों ने नगर रक्षा में कम बुद्धिमानी न की होगी । इस लिये सावधानी के साथ चलना उचित है । जब किसी ओर से नगर का मार्ग न मिला, तो सीधे वन में घुसे, जहाँ सिंहादिकों का खेदा नगर के उत्तर ओर वन दुर्ग में किया गया था । ये अंगद को देखकर सहसा बगमेल होकर दौड़े परन्तु वीर वालिनन्दन ने उनको एक दूसरे के ऊपर फेंककर मारडाला । फिर आगे चले, मार्ग में एक सुन्दर राजमार्ग मिला, उस पर तारासुवन मंद मंद गमन करते लंका की ओर जाते थे, परन्तु एकाएक वह नीचे को धसने लगा, तब अंगद जी उछल कर आकाश में हो रहे, और देखते हैं कि वह राजमार्ग न होकर बड़ा भारी खाँवा देख पड़ रहा है-फिर अन्तरिक्ष मार्गही द्वारा लंका में प्रवेश करना चाहते थे कि एक राक्षस पीछे से अंगद की पूंछ को पकड़ कर पृथ्वी की ओर खींचने लगा । युवराज ने अपने मन के प्रतिकूल मार्ग में अपने को जाते देख, पीछे झुक कर देखा तो वह निशाचर देख पड़ा, तब बड़ी लाघवता से

लंगूर को आकाश की ओर ऊपर उठाया और वह निशाचर केतु के सदृश उससे लटका रहा, फिर लंगूरको बड़े वेग से घुमाकर राक्षस को पृथ्वी में गिरा दिया और स्वयं उसके ऊपर कूदकर उसको प्राणहत कर दिया। बड़े वीर योद्धा का प्राणान्त सुनि वहाँ पर अन्य राक्षस इधर उधर छिप रहे।

अंगद का पुरप्रवेश।

तब अंगद लंकाधीश्वर के मंदिर की ओर चले। वह ऊपर से निर्भय और भीतर से बड़े सावधान थे। मार्ग के दोनों ओर के मंदिरों की रचना देख हृदय में बड़ा विस्मय करते हैं, कि भला यही मंदिर रावण का तो नहीं है? क्योंकि इसके द्वारपर द्वारपाल सशस्त्र खड़े हैं। द्वारपर मनुष्य पहुँचने के पहिले ही अलौकिक यन्त्र द्वारा घंटा का नाद होने लगता है जिसमें द्वारपाल अधिक सावधान हो जाँय, यह स्वर्ण मंदिरों से पूर्ण लंका पीताम्बर ओढ़े समान शोभा देती है, मैं अपने नियम तथा साधन में बड़ा दृढ़ हूँ, तथापि इन मंदिरों की रचना देख विश्राम करने की इच्छा होती है, जहाँपर वायु अनेक रूपोंमें चलती है, देखो, हमारे देखते ही देखते पहिले निर्मल वायु चली, फिर केवड़ा रस से भरी अपने मंद झोकों द्वारा नगर बासियों से अठिलाती

उनके मन को हरती एक ओर से दूसरी ओर निकल गई, फिर वही अब शीतलगन्धाढ्य, गन्धाढ्या, वन मल्लिका, वार्षिकी, मालती, मागधी, हेमपुष्पिका, भ्रमरातिथि, वकुल ललनाप्रिय, मल्लिका, वसंतदूती, केतक, कर्णिकार, प्रपल्लव, सैरेय, मुचुकुन्द, अर्क वल्लभ, जपा, मुनिपुष्प, वैष्णवी, पुंडरीक, गन्धोत्कटादि पुष्पों के पराग को लिये हुए इस लंका स्त्री के ऊपर हँसती उड़ती चली जा रही है। मंदिरों में अनेक प्रकार के मणियों के जड़े जाने से रात्रि में चन्द्रमा को लज्जित होना पड़ता होगा, जैसे विश्वामित्र के दूसरे स्वर्ग रचने में देवगण लज्जित हुए थे। आगे चलकर देखते हैं कि जलक्रीड़ा के स्थान बने हैं, जहाँ पर स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ क्रीड़ा कर रही हैं, जिनके महीन वस्त्र शरीर में चिपक गये हैं, मानों चन्द्रमा मेघ की ओट होने में अपने मंद प्रकाश से शोभा को प्राप्त हो रहा है। मार्गों की रचना व स्वच्छता अकथनीय है। राजमार्ग पर जगह २ मंगलामुखी मधुर शब्दों में रावण का यश वर्णन कर रही हैं। उस मार्ग पर वाहनों द्वारा केवल गिने श्रेष्ठ अधिकारी राक्षस चल सके हैं, जिसके दोनों ओर मन हरण वाटिकाएँ लगी हैं, वह कहीं पर तिरछा होकर निकला है, मयूर, कोकिला, चातक, शुकादि अनेक पक्षी वृक्षों पर बैठे मधुर शब्दों में अपने स्वतन्त्रता सुख को अलाप रहे हैं,

प्रणाली[1] तथा कुल्याओं[2] में सूक्ष्म डोंगी पड़ी हैं, जिन पर प्रतिष्ठित राक्षसगण अपने मित्रों तथा स्त्रियोंको साथ लिये हुए जल क्रीड़ा कररहे हैं ऐसे मनोहर लंका नगर को देखते तारासुवन रावण के सभा मंदिर के द्वार पर पहुँचे जहाँपर बड़े २ वीर द्वारपाल के रूप में सावधान खड़े थे। अंगद प्रताप ने उन द्वारपालों को ऐसा दमन किया, कि अन्तः भवन में प्रवेश करते समय वे कुछ बोल न सके।

रावण की सभा में अंगद।

जब अंगद सभा में पहुँचे तो सभा में एकाएक भय वश खलभली मचगई, जैसे नाग समूह गरुड़ के आने से विचलित होता है। अंगद ने सभा को सम्पूर्ण अंगों[3] से युक्त देख तथा उसके शरीरी रूप रावण को अवलोकि एक

१ नहर, २ छोटी छोटी नदियां।

३ (क) नीति शास्त्र अस्त्र समूह में कुशल हो वह पुरोहित होता है।

(ख) कार्य्य अकार्य्य का परिज्ञाता प्रतिनिधि होता है।

(ग) नीति में कुशल, परिगत धर्म तत्व का ज्ञाता मंत्री होता है।

(घ) लोक और शास्त्र की नीति का ज्ञाता प्राड्विवाक (वकील) होता है।

(च) देशकाल का ज्ञाता अमात्य होता है।

(छ) इंगित नेत्र से इच्छा का प्रकाश, आकार चेष्टा का ज्ञाता और स्मृतिमान्, देशकाल का ज्ञाता, अर्थात धीरता से वक्ता, और भय-रहित लक्षण जिस में हों उसे दूत कहते हैं।

दूतके योग्य स्थान को ग्रहण किया । इतने में अंगद्की ऐसी धृष्टता देख रावण स्वयं बोला ।

रावण—हे वानर तुम कौन हो ।

अंगद—मैं रामदूत हूँ ।

रावण—वाह मृग नर सम्बन्ध कैसे ।

अंगद—पौलस्त्यपौत्र कहलाय निशिचर भये जैसे ।

रावण—तुम्हारा तथा तुम्हारे पिता का नाम क्याहै ।

अंगद—आपके परिचित वालिनाम वानरों के राजा का पुत्र, मैं अंगद हूँ ।

रावण—वालि के मरजाने से, तुम राजनीति नहीं पढ़ने पाये; यदि पढ़े होते तो पितृहंता के दूत बनकर हर्ष मानते ।

अंगद—जब आप ऐसे नीति शास्त्र में निपुण पण्डित को षट्मास कखरी के स्वेद में तथा बहुत काल तक डीवट बनने में दुःख उठाना पड़ा है, तो हमने नीति सीखना निरर्थक समझा ।

रावण—जब कोई वीर रण में मारा जाता है, तो वह जल तर्पण से सन्तुष्ट न होकर, वरन् घातक के रक्त तर्पण से सुखी होता है, सो तुम्हारा पिता ऐसेही तर्पण की आशा में तुमको स्मरण कर रहा होगा ।

अंगद—यहीं भाव धारण किये हुए [रामचन्द्र अपने पूर्वजों* का वैर तुमसे लेने आये हैं, रहा वालि के लिये सो वह भी तुम भीमकाय शत्रु के रक्त से तृप्त हो जायगा।

रावण—तुम्हारे आगमन का क्या कारण है।

अंगद—दया।

रावण—कैसी।

अंगद—बलवान् की बलहीन पर जैसी।

रावण—मेरा भ्राता विभीषण, जो मेरा भेजा हुआ भेद लेने के लिये वहाँ गया है, उसको मन्त्री बनाया है, ऐसा कह रावण मुसकाने लगा।

अंगद—विभीषण आपका भ्राता नहीं था, वह राज प्रताप था और वह जहाँ से आया था वहाँ को चला गया, जैसे आसुरी यज्ञ में किंचित्मात्र विघ्न पड़ा तो राक्षस लोग यज्ञकर्ताही को मार डालते हैं, वैसेही आप कलुषित के मार डालने का कारण विभीषण ही होगा।

रावण—किस अपराध करने पर राम वनवासी बनाये गये ?

अंगद—ताड़का सुबाहु के साथ मारीच व तुमको न मार डालने से।

रावण—राम के पिता दशरथ कहाँ हैं ?

---

* अयोध्या के राजा अनरण्य को रावण ने मारडाला था।

अंगद—पुत्रको तुम्हारे मार डालने के लिये यहाँ भेजा है और वह स्वयं तुम्हें ताड़ना करने के लिये वहाँ गये हैं, जहाँ तुम शीघ्रही जाना चाहते हो विचार कर देखो, तुम्हारी कुशल कहीं नहीं है।

रावण—इन बैठे हुए योद्धाओं की ओर निहार और विचार कि इनमें से किसी एक के साथ तेरी सारी वानरी सेना लड़ने के योग्य है?

अंगद—जिनको तू योद्धा कहता है, उनके वक्षस्थलों में मुष्टि प्रहार रूपी खूंटी हनुमान गाड़ गये हैं जो सदा खटकती होगी। रे मंद पूंछ देख, ये उदरपालनाश्रित राक्षस, वानरों के संग संग्राम में कैसे ठहर सकेंगे?

रावण—राम कूट नीति से अनभिज्ञ हैं, जो राज्य छोड़ वनको आये, और इस में बलहीन होने का प्रधान कारण है कि जिनको एक कबंध से भय प्राप्त हुआ।

अंगद—कूटनीति में राम ऐसे अभिज्ञ हैं कि मारीच को विश्वामित्र की यज्ञशाला में न मार कर, तेरे मारने में कारण बनने को रख छोड़ा था—और इसी कारण वह बन को आये हैं कि तेरे सरिस चौदह सहस्र राक्षसों को दो घड़ी में मारडाला।

रावण—जिस पुरुष के साथ उसकी जाति वाले सहायता करने को न खड़े हुए, वह सब से निन्दित हो,

वानरों का साथ कर युद्ध करने आया है, रे नीच तू रण में कुशल नहीं है । राम को नक्षत्रसूची[1] की तरह साथ लेकर द्वार २ घूम ।

अंगद—रे अधम, रामचन्द्र सब के प्राणों के प्राण हैं तिनकी तू निन्दा करता है, तेरा सुकृत क्षीण हुआ, अपने प्रियकी निन्दा सुनि तेरे प्राण, इस तेरे पापी शरीर में बहुत दिन तक न बसेंगे, मैं अवश्य रामका दूत हूँ, बल परीक्षा के लिये वाम पग पृथ्वी पर रक्खे हूँ, यदि कोई राक्षस इसको हटादेवै, तो मैं संतुष्ट हो जाऊँगा कि तू वानरों को जीत लेगा-नहीं तो इस अबलारूपी सभा के साथ मेरी कठोरता हुई ।

ऐसा कहकर वीर बालि पुत्र अंगद क्रोधावेश में हो काल समान देख पड़ने लगा-जिस रूप को देखकर अन्य राक्षसों की कौन कहै, स्वयं रावण क्षोभ को प्राप्त हुआ तब धीर धर कर रावण बोला कि ऐ वीरो, इस वानर के पग को हटाकर अद्भुत मृगमांस के स्वाद को क्यों नहीं लेते हो । रावण के ऐसे वचन सुनि, निशिचर गण अंगद के पग हटाने में अनेक छल संयुक्त बल को करि, श्रमित तथा लज्जित हो, जेठ के मध्यान्ह काल में मार्ग थके हुए महिष के समान हांफते तथा स्वेद से पूर्ण अपने २ स्थानों पर

१ जो ज्योतिषी घर-घर नक्षत्र बतलाता फिरै ।

जा बैठे । इस कार्य्य में साधारण निशिचर न नियुक्त थे वरन् अकम्पन, विद्युज्जिह्व, प्रजंघ, नारांतक, कुंभ, निकुंभ, इन्द्रजित् आदि बड़े २ योद्धा थे । जैसे २ राक्षस लोग बल करते पग के हटाने का यत्न करते थे तैसे २ राघवको स्मरण करते अंगद मंद मंद मुसकाते थे, मानो स्मरण द्वारा रामचन्द्र से निवेदन कर रहे थे कि ये प्रसिद्ध राक्षस बलवान् न होकर बलहीन हैं । जब कोई राक्षस क्षुधित सिंह के समान अंगद के निकट न आया तब वहाँ पर खड़े ही खड़े अंगद हँसते हुए बोले "बस इनहीं योद्धाओंके ऊपर भरोसा रखकर रामसे बैर करने चले हो, धिक्कार है" इसको सुन कर रावण ऐसी ग्लानि पंक में धसा कि बड़ी देर तक शिर नीचे किये हुए शोक मुद्रा में मग्न रहा । फिर अंगद बोले, अभी कुशल है कि वैदेही को दे देओ, और अपने ऊपर बड़ी भारी आई हुई विपत्ति को दूर करो, नहीं तो अंध दशकन्ध, इस तेरे शरीर पर एक कंध न रह जायगा । ऐसा कहकर नीति कुशल अंगद वहाँ से चले आये और सुबेल पर्वत पर रामचन्द्रजी को आकर प्रणाम किया । तिनको देख रामचन्द्रजी हृदय में लगाकर रावण के पुर तथा उसके वृत्तान्त पूछने लगे । अंगद ने यथा रूप में वर्णन किया और निवेदन किया, कि जिस रावण ने अमित योद्धाओं को मार कर विजय लक्ष्मी अर्जित की है उसको

आप के वाण; उससे छीनकर आप को देना चाहते हैं, देखिये, त्रोण से वाण मत्स्य की नाईं ऊपर को उछलते हैं, यह विजय शकुन है इससे अब युद्ध का उद्योग करिये ।

युद्ध का उद्योग ।

रामचन्द्रजी ने युद्ध का उद्योग करना प्रारम्भ किया हनुमान को बहुतसी सेना के साथ, पश्चिम द्वार पर, उसी भाँति अंगद को दक्षिण द्वार पर, सुग्रीव को पूर्व द्वार पर, और लक्ष्मण तथा विभीषणजी को उत्तर द्वार पर नियत किया । रणदुर्मद रामचन्द्रजी ने संग्राम स्थान में योद्धा तथा सेना भेजने का ऐसा प्रवन्ध किया था, कि एक चौथाई सेना युद्ध करे, और एक चौथाई सजी रणस्थान जाने के लिये उद्यत रहे, शेष विश्राम करै । उस अपनी अगणित सेना के वीच महावीर्यवान् रामचन्द्रने सुखेण नाम मंत्री को सेना के स्वास्थ्य विभ ग का अध्यक्ष नियत किया था, द्विविद् नाम वानर वीररस के गीत गाने वालों का तथा मारू वाजा बजाने वालों का अधिकारी नियत किया गया था, क्योंकि इन वातों से सेना को द्विगुण उत्साह उत्पन्न होता है । जब सेनापति लोग अपने २ नियत स्थानों पर अपनी सेना के साथ पहुँच गये, तब निशाचरों की

ओरसे पत्तिपाल[1], गौल्मिक[2], शतानीक[3], अनुशतिक[4], सेनानी[5], पत्तिप[6], अपने २ सेनापतियों के साथ स्वगम[7], अन्यगम[8], दत्तास्त्र[9], स्ववाही[10], दत्तवाहन[11], सौजन्यसेन[12],स्वीय[13], आरण्यक[14], आदि अनेक प्रकार की सेना लंकागढ़ में टिकाकर वानरों के साथ युद्ध करने को उद्यत हुए-और फिर दोनों ओर से युद्ध होने लगा।

रणांगण में लक्ष्मण ।

तव संग्राम स्थान में जाने के लिये रावण ने इन्द्रजित की ओर देखा। पिता के मन की बात को जानकर वह इन्द्रजित संग्राम में जाने के लिये आज्ञा का प्रार्थी हुआ। राक्षसराज की आज्ञा प्राप्तकर जगत् प्रसिद्ध वीर वर युद्ध स्थल में आया, वहाँ देखता है कि एक महा सुन्दर गौर

नोट—१, पांच या छः सिपाहियों का अधिप,
२, ३० सिपाहियों का अधिप,
३, १०० सिपाहियों का अधिप,
४, यह भी सौ सिपाहियों का अधिप है परन्तु शतानीक से उत्तम
५, जो सिपाहियों को कार्य्य बतावे।
६, जो सिपाहियों की बदली करै।
७, पैदल, ८ सवार, ९ जिसको राजा ने अस्त्र दिये हों,
१०, जिसके पास अपनी सवारी हो, ११ जिसको राजाने सवारी दी हो
१२, जो सेना स्नेह से कार्य्य सिद्ध करै १३ जो नौकरी देकर पाली हो,
१४, भील आदि जो अपने तेज से स्वाधीन होते हैं उनकी सेना।

वर्ण सुकुमार पुरुष, एक हाथ से धनुष को थांमे हैं और दूसरे से शत्रु को सावधान करने के लिये एक वाण लिये युद्ध की प्रतीक्षा कररहा है। हँसकर मेघनाद बोला तुम्हारे हाथ में धनुषवाण आखेट के लिये शोभा देता है न कि मुझ ऐसे वीर के साथ युद्ध करने में। तुम्हारे सुकुमार रूप को देख मुझ दयाहीन के हृदय में दया उदित होकर ऐसा कहाती है कि तुम मेरे साथ युद्ध न करो। लक्ष्मण ने वीरता साने वचनों में उत्तर दिया "संग्राम वन में मैं अहेरी आज तेरा आखेट कर प्रसन्न हूँगा" ऐसा कहकर हाथ में लिये हुए वाण को धनुष से छोड़ा जो मेघनाद को साव-धान करता उसके दक्षिण कान के समीप में होकर निकल गया फिर लक्ष्मण जी वाण वर्षा करने लगे, परन्तु एक चौथाई मार्ग ही में मेघनाद ने अपने तीखे बाणों से काट डाले। और १०० वाण हनुमान के मारे। केसरीनन्दन की पीठ पर लक्ष्मण जी चढ़े थे इससे उन्होंने बाणों का आघात शांत रूप से सहनकर लिया, परन्तु लक्ष्मणजीने क्रोध में प्राप्त होकर एक वाण जो लक्ष वाण होकर शत्रु के लगे ऐसे अनेक मंत्रित वाणों से मेघनाद के रथ को मूंद लिया तिस से उसका सारथी तथा रथ तथा घोड़े सब नष्ट होगये, और मेघनाद भी व्यथित हुआ, लक्ष्मण के पुरुषार्थ से वह इतना भयातुर हुआ कि जिस ब्रह्मदत्त शक्ति को वड़े

कठिन समय के लिये रख छोड़ा था उसको लक्ष्मण के ऊपर फेंका, जिसने कुंवर को पृथ्वी पर गिरा दिया । तब जाम्बवान हनुमान से बोले कि अब इनको महाराज रामचन्द्र के निकट ले चलो और वहाँ औषधि उपचार शीघ्रही हो । फिर हनुमान निश्चेत लक्ष्मण को उठा लाये और रामचन्द्र के समीप केला के पत्तों पर पौढ़ा दिया ।

लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर व्याकुल राम ।

भाई की यह दशा देख रामचन्द्रजी मूर्छित होकर गिरपड़े बहुत देर के पश्चात् जब मूर्छा का अन्त हुआ, तब लक्ष्मण के मुख पर मुख धर बड़ा विलाप करने लगे, हे भ्राता क्या तुम्हारे आने का यही विशेष कारण था क्या मेरी सेवा करने का फल यही प्राप्त हुआ सदा धर्म मार्ग पर चलते हुए भी उससे भय रखने का फल मुझे भ्रातृ बियोग प्राप्त हुआ । हा तुम्हारे शरीर में जो अनेकों घाव होगये हैं, वे इस समय भी झरना की तरह रक्त बहारहे हैं, इनके सन्मुख मेरे नेत्रों के जलकण का पतन उपयुक्त नहीं है, जब हमको दुखित देखते थे, तब तुम हमारे प्रबोध के लिये शास्त्रों के अच्छे २ प्रमाण देकर हमको संतुष्ट करते थे । सो वही मैं तुम्हारा भाई अनाथ की नाईं विकल हो रोदन कर रहा हूँ सो अब तुम उठकर क्यों नहीं समझाते हो ।

फिर अकाश की ओर देखकर कहते हैं कि मैंने वेदांत में देखा है कि शरीर त्यागने के पश्चात् प्राणी अंतवाहक शरीर को प्राप्त हो वायु मंडल में विचरता रहता है, यदि तुम वहाँ हो तो हमको एक बार अपना रूप दिखादो, तुम्हारे निकट पहुँचने की त्वरा करैं। अरे प्राणो, अब इससे भी अधिक कोई दुःख देखना है जो इस शरीर को नहीं छोड़ते। देखो पिता का मरण, परिवार का बियोग, सीताहरण, और सब से बढ़कर घटना भ्रातृवियोग की तो होचुकी हा हन्त, क्या कुछ और बाकी है? केवल कहने ही के लिये मैं चक्रवर्ती का पुत्र हुआ, नहीं तो साधारण मनुष्य को जो दुःख नहीं मिलते, वे मुझको प्राप्त हुए हैं। सुग्रीव जो रामचन्द्र के निकट दुःखित बैठे थे, उन अपने मित्र को दोनों हाथों से पकड़ कर रामचन्द्र रोदन करने लगे, और सुग्रीवजी भी धीरज को न धरसक कर अश्रु-धारा छोड़ने लगे। इस प्रकार सब बानरकटक महाकरुणा को प्राप्त हुआ थोड़ी देर में रामचन्द्र धीरज धर कर बोले, हे मित्र सुग्रीव! नीति वालों ने सब स्थानों पर कहा है कि एक छलहीन मित्र में सकल सम्बन्धियों के पूर्णभाव दृढ़रूप से पाये जाते हैं। अस्तु जब मेरे प्राण शरीर से पयान कर जाँय तो मेरे लालके साथही मुझे दग्ध कर देना। मेरे प्रति रूप तुम विद्यमान हो, सो जब तक सामर्थ्य रहै युद्ध करते

रहना और यदि विजय को प्राप्त होना, तो ये विभीषण जो इस समय महाव्याकुल हैं, इनको लंका का राज्य सौंप देना । यह अंगद जो भुजा पकड़े मुझे थाँभे हैं सो इस पर बड़ा छोह रखना, यद्यपि आप मित्र हो तिस पर भी हम इसके लिये विनय करते हैं कि किसी प्रकार से इसको कष्ट न होने पावे। ये हनुमान् जो रोते हुए ताड़ के पत्ते से हमारे पवन कर रहे हैं इनको सदा प्रधान आमात्य बनाये रहना, क्योंकर कि तुम्हारे विपत्ति के दिनों में इन्होंने तुमको नहीं छोड़ा । हनुमान्जी की ओर देखकर बोले कि हे पुत्र ! जब हमारी दाहक्रिया कर होना तो एक बार फिर वैदेही से जाकर कह देना कि तुम्हारे लिये राम लंका तक आये, परन्तु लक्ष्मण के वियोग में उन्होंने प्राण छोड़ दिया । हा वैदेही ! तुमको न देख पाये, ऐसा कहते हुए रामचन्द्रजी मूर्च्छित हो गये फिर बहुत देर के पश्चात् नेत्र खोला तो विभीषण की ओर देखकर पृथ्वी में पड़े ही पड़े रामचन्द्र जी मंद स्वर में बोले, लंकेश ! मेरे साथ इतनाही शोक जाता है कि तुमको लंकाधीश्वररूप में अपने नेत्रों से न देख पाया, परन्तु विश्वास के साथ यह बात कहता हूँ कि सुग्रीव जो बड़े पराक्रमी हैं, वह रावण को मारकर आपको लंका का राज्य देंगे, हम इसको न करसके परन्तु हमारे मित्र का किया हुआ कार्य्य हमाराही होगा । इस प्रकार

विभीषण से बातें करते रामचन्द्रजी महाविषाद को प्राप्त हुए ।

व्याकुल रामके सम्मुख जाम्बवान् ।

महावृद्ध जाम्बवान् जो देवता तथा दैत्यों के अनेकों प्रकार के युद्ध देख चुके थे, और बड़े धीर तथा विचारवान् थे रामचन्द्र के सम्मुख आकर बोले, महाराज ! आप शोक न करें, लक्ष्मण मृतक नहीं हुए, देखो उनके मुख की कांति कैसी झलक रही है । औषध का उपचार शीघ्रही हो, क्यों कर मेघनाद को यह वरदान है कि इस शूल के प्रहार से एक रात्रि के अंत में षडानन भी मृत्यु को प्राप्त होंगे, फिर हनुमान् की ओर देखकर बोले कि जहां को सुषेणजी कहैं वहां जाकर औषध को शीघ्रही लाइये, फिर हनुमान् जी सुषेण से पूंछ कर उत्तर की ओर को चले, वहां पहुँच कर देखते हैं कि औषध की पहिचान जैसी सुषेणजी ने बताया था वैसी सब बनस्पतियों में देख पड़ती है, इससे उचित यही होगा कि इस पर्वतही को लेते चलैं, वहां सुषेण स्वयं पहिचान लेंगे, ऐसा विचार कर पर्वत को लेकर कपिनायक हनुमान् लंका को लौट आये फिर सुषेण ने औषध द्वारा लक्ष्मण को शीघ्रही पीड़ा-रहित करदिया ।

मेघनादबध ।

जब लक्ष्मण मूर्च्छा से विगत हुए तब उठकर रामचन्द्रजी को प्रणाम किया, राम भाई को गले में लगाकर बोले वत्स ! बड़ी आयु को प्राप्त हो, फिर लक्ष्मण ने प्रकट किया कि आज मेघनाद को अवश्य मारूंगा, विभीषण बोले कि इन्द्रजीत सुन चुका है कि आप मूर्च्छा रहित हो गये हैं सो वह भी आप से युद्ध करने के लिये देवी की पूजा करने की यत्न कर रहा है, सो आप शीघ्रही कुंभिला स्थान को चलैं ऐसा कहकर लक्ष्मण, हनुमान्, विभीषण, अंगद, जाम्बवान् तथा सुग्रीव उस स्थान को गये, जहां देखते हैं कि मेघनाद एकाग्रचित्त देवी की पूजा कर रहा है, सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान् आदि तो यज्ञ भंग करने लगे और लक्ष्मण तथा हनुमान् को लेकर विभीषण उस वृक्ष के नीचे खड़े हुए, जहां से मेघनाद अन्तर्धान होता था। जब वानर यज्ञ विध्वंस करने लगे तो मेघनाद ऐसे अपमान को न सहसककर युद्ध करने के लिये होंठ चबाता उक्त वृक्ष की ओर चला, परन्तु वहां पर विभीषणादिकों को खड़े देखता है तब मेघनाद विभीषण से बोला "रे दुष्ट ! तू लंका में अनेक प्रकार के सुख करके मेरे मराने में तत्पर है, रे कृतघ्न ! तू गृह में बसा हुआ सर्प हुआ" ऐसा कहकर एक

परिघ विभीषण के मारा, परन्तु लक्ष्मण ने उसको बीच ही में काटडाला, फिर मेघनाद लक्ष्मण से बोला, रे दुर्बुद्धि ! दैव को मैं क्या करूं कि तू मरकर फिर जीवित होगया । अच्छा, आज तुझको ऐसे मार्ग का पथिक बनाऊँगा कि लौटकर फिर न आवेगा, ऐसा कहकर बाण वर्षा करने लगा । लक्ष्मण ने अपनी हस्तलाघवता से इतने बाण चलाये कि उसके चार रथ, सारथी तथा घोड़ मार डाले, मेघनाद को भी इतना व्याकुल किया कि जब २ वह चाहता कि पुर से अन्य रथ को लेआऊं, तब २ लक्ष्मण ऐसी बाणवर्षा करते कि वह जाने का अवसर न पाता—जब उसने जानलिया कि अब रथ का लाना दुस्तर है तो पृथ्वी पर खड़ा होकर युद्ध करने लगा, और लक्ष्मण भी हनुमान् की पीठ से उतर कर युद्ध करने लगे, दोनों वीरों के बीच अनेकों प्रकार का युद्ध होता रहा, अंत में लक्ष्मण ने रामचन्द्र को स्मरण कर एक ऐसा बाण मारा कि उसने मेघनाद के शिर को काट डाला तब वह राक्षसराज पृथ्वी में गिरकर मृतक होगया, उसके मरने पर देवतों ने नगारे बजाये प्रसन्नतासूचक मंद २ पवन चलने लगा, मेघ मंद २ गरज कर बरसने लगे । अप्सरा नाचने लगीं और हनुमान् लक्ष्मण को पीठ पर चढ़ाकर विभीषणादिकों के साथ जयघोष करते सुवेल को लौट आये ।

कुम्भकर्ण तथा रावण संवाद।

मेघनाद के मरने से रावण को बड़ा दुःख हुआ फिर कुम्भकर्ण को जगाया, उसने रावण से अकालसमय में जगाने का कारण पूँछा, रावण ने सीताहरण, लंकादहन, मेघनादबध आदि वृत्तान्त वर्णन किया–तब कुम्भकर्ण बोला, भ्राता! आप ज्येष्ठ होने से पिता सदृश हैं, वेद तथा शास्त्रों में आप की अच्छी गति है नीतिशास्त्र के पण्डित हो, लोक तथा परलोक विषयों में एक योग्य जानकार हौ। परन्तु एक स्त्री के कहने में आकर आपने राक्षसकुलरूप वन को नाश करने के लिये सीतारूपी अग्नि को लंका में लाये, इस शूर्पणखा ने खरदूषणादिकों का नाश कराया, फिर आपका नाश देखने के लिये यह प्रकाण्ड रचा। मैंने कहीं नहीं सुना कि स्त्रियों की बातों में विश्वास किया जाय, फिर मेरे तपस्या करने के समय में नारद जी ने जो बात कही थी वह आप को सुनाता हूँ, ऋषिराज ने कहा था कि जब पापभार से क्षमा रूपी पृथ्वी व्याकुल होगी तब विष्णु भगवान् नरअवतार धरकर पृथ्वी का भार उतारैंगे मैं अपने अर्जित सुकृत से अनुमान करता हूँ कि राम विष्णु का अवतार हैं। इसपर आप भी विचार करसक्ते हो कि जिस मेघनाद ने सुरेस को सहजही बाँध

लिया था वही वीर क्षुद्र मनुष्य द्वारा मारा जाय, जिस प्रकार राख के भीतरही भीतर अग्नि सुलगा करती है परन्तु ऊपर से देखने में नहीं आती, यदि कोई उसके ऊपर पैर रखदेता है तो वह जलजाता है उसी प्रकार नर शरीर धारण किये हुये राम, विष्णु हैं इनसे विजय की आशा करना असम्भव है, देखो इन्हीं विष्णु ने हम लोगों से अधिक बलवान् माली सुमाली आदि मातामहों को मारडाला। फिर जो जीव इस मृत्युलोक में आता है उसके साथ दो सहचरी चलती हैं, एक का नाम आयु और दूसरी का नाम मृत्यु है, एक आगे और एक पीछे चलती है, प्रथम आयु नाम सहचरी जीव के आगे चलती है, इस के आगे चलने से जीव पथिक को बड़ा भारी मैदान देख पड़ता है परन्तु जब जीव मार्ग में पापरूपी विचित्र वस्तुयें बटोरने लगता है, तो वह चपला सम चमकआगे न चलकर पीछे चली जाती है, तब मृत्यु सहचरी शीघ्र आगे आकर जीव पथिक का मार्ग रोक लेती है और तब जीव मार्ग में बटोरी हुई वस्तुवों की ओर देखता ज्यों का त्यों रहजाता है और फिर वहीं उस की यात्रा समाप्त होती है। सो हे भ्राता! जब हम इस लोक में उत्पन्न हुए हैं तो अवश्य मृत्यु को प्राप्त होंगे, क्योंकर कि आयु और मृत्यु का अपृथक साथ है। जस योनि में जो प्राणी उत्पन्न होता है, उसी योनि की

रीति अनुसार उसके माता पिता द्वारा उसकी प्रकृति होती है। यदि वह उक्त रीति अनुसार न चला तो उस को कष्ट होता है। जैसे तृणाहारी पशु पहिले अपने आहार को पेट में लेजाते हैं और फिर पागुर कर उसको पचाते हैं। यदि उनमें से कोई ऐसा न करे तो वह रोग को प्राप्त होता है, हम दोनों भाई पौलस्त्य के पौत्र होकर वेद तथा शास्त्रों का उल्लंघन कर इस अधम बुद्धिको प्राप्त हुए हैं सो अब अधिक पाप करने की चेष्टा न करिये जिस शरीरमंदिर के किनारे पापरूपी घोर नदी बहती है उसका बहुत शीघ्र नाश कर डालतीहै फिर जब ऐसा समय आता है तो प्रकृति दृढ़ता से हठ को गहे रहती है, तब वह मनुष्य किसी की बात को आदर नहीं देता, मैं देखता हूं कि ये सब लक्षण आप में विद्यमान हैं, अनेक प्रकार के पापों से आप की बुद्धि पर बड़ा भारी भार लदा है जिससे वह हठ नहीं छोड़ती, बरन जिस ओर वह भार दबाता है उसी ओर ढुर जाती है, सो यदि हम कहैं कि वैदेही को देकर रामचन्द्र के साथ सन्धि करलो, तो मेरे ऐसे वचनरूपी मेघ आपकी प्रचण्ड वायुरूपी हठ द्वारा आप के हृदयाकाश से अलग कर दिये जायँगे, जैसे विभीषण के वचन निरादरित किये गये। अस्तु आपके द्वारा इस शरीर ने बहुत सुख भोगा है, अब वह आपकी सेवा करने के लिये उद्यत है,

उसको आज्ञा दीजिये वह क्या करै। इतनी बातें सुन कर रावण बोला, प्रकृति अपने कईएक रूपोंमें विभाजित है और वे एक दूसरे से विरुद्ध हैं, किसी को एक कार्य्य अच्छा लगता है और वही दूसरे की दृष्टि में तुच्छ देख पड़ता है, मैंने जो कुछ किया उसका उत्तर यही है। वैदेही के लौटाल देने की सलाह हरलाने के दिन तक थी। मैं दशशीश, जिसने जगत् को रुवाने से "रावण" नाम पाया है सो अब अपनी ओर से जानकी को कैसे देऊं। मुझे लंकादहन तथा बड़े २ योद्धाओं के मारे जाने का यहां तक कि मेघनाद के मरने का शोक नहीं है, शोक हुआ तो यही कि तुमने भी जानकी देनेको कहा चाहे राम विष्णु हों अथवा मेरे इष्ट महेश हों परन्तु* जिसने अपने प्रताप की माला अप्सराओं से सरस राग रूपी सूत में गुथा कर देवतों को पहिनाया वह जानकी को कैसे देवै। यदि तुम में भ्रातृस्नेह है तो जाकर युद्ध करो ऐसा कह कर मदिरा से छलकते हुए अनेकों कुम्भ कुम्भकर्ण के पीने के लिए मँगाया, फिर अजादिकों को खाकर भाई के प्रसन्न करने के लिये युद्ध करने चला।

* देवतों की सभा में अप्सरागण रावण के प्रताप को गाती थीं।

संग्रामस्थान में कुम्भकर्ण।

वानरों ने महाभीमकाय को आता देख सब के सब चिल्ला उठे कि यह कालरूप कौन आ रहा है, फिर सब जहां के तहां भागने लगे, कोई तो पर्वतों के कन्दरों में घुसे कोई सेतु द्वारा समुद्र के उत्तरतट को भाग आये इस प्रकार से वानरी सेना कुम्भकर्ण को देखकर भाग गई परन्तु हनुमान्, अंगद, नल, नील, द्विविद, मयंद, गज, गवाक्ष, जाम्बवान्, सुषेण, सुग्रीव तथा अन्य बड़े २ सेना पति उक्त राक्षस के साथ युद्ध करने को उद्यत हुए, जब वह संग्राम स्थान में आया तो अंगद ने एक बड़ी भारी शिला उसकी ग्रीवा पर मारी परन्तु कुम्भकर्ण ने उसको आक की बोंदी समझ कर हँस दिया, फिर अंगद सहस्रों वृक्षों तथा बड़ी २ शिलाओं से उसको मारने लगे तब वह बोला, "रे बाल वानर! कष्ट न कर" ऐसा कहता अंगद को पकड़ निकट पड़ी हुई शिला पर पटक दिया तिसके आघात से अंगद मूर्च्छित होगये फिर हनुमान् युद्ध करने लगे परन्तु कुम्भकर्ण ने एक ऐसी गदा मारी कि वह भी मूर्च्छित होगये; इसीप्रकार नल, नीलादिकों को घायल कर दिया। फिर वानरराज सुग्रीव से युद्ध होने लगा, सुग्रीव उसके विशाल शरीर पर चढ़कर ऐसी लाघवता से गदाप्रहार करने लगे कि वह जिस ओर

पकड़ने को हाथ लपकावे उस ओर से छिटक कर दूसरे स्थान पर हो रहैं, एक वार उसने सुग्रीव को पकड़ही लिया और नगर को लौट चला परन्तु सुग्रीव उसकी बगल से सटक कर उसके नाक तथा कानों को काटकर अपने दल में आमिले।

कुम्भकर्णबध ।

उस ओर कुम्भकर्ण अपना को शत्रु से छला देख तथा नाक कान कटजाने से लज्जा को प्राप्त हो रणस्थल की ओर लौटा, इसवार कुम्भकर्ण बड़े वेग से चला जाता था, होंठों को चबाता तथा अपने क्रोध से तीनों लोकों को कँपाता था। नाक तथा कान कटजाने से उसके शरीर पर रक्तकी धारा वह रही थी माने केतुग्रह के ऊपर मंगलग्रह की छाया पड़ती है, उस ओर रामचन्द्रजी ने उसको आता देख धनुष तथा वाण को हाथ में लेकर स्वयं खड़े हुए। इनको देखते ही कुम्भकर्ण बड़े घोर शब्दों में बोला परन्तु नाक तथा कान के कटजाने से स्वर नीचा होगया माने सुग्रीव अपने पिता को उसके रवकारी शब्द से अभय कर दिया "मैं अन्य निशाचरों की तरह नहीं हूँ मैं मेघनाद नहीं हूँ मैं अकम्पन नहीं हूँ मैं कुम्भकर्ण हूँ आज तुझको मार कर इसी रणस्थल में सुख से सोऊंगा" रामचन्द्रजी बोले,

हे धूम समूह पर्वतराज राक्षस ! "पौरुषहीन पुरुष कर्म के करने के प्रथम फल का संकल्प कर अपने चित्त को उद्विग्न करते हैं और पौरुषसम्पन्न पुरुष केवल कर्म के साधनों पर मन लगाते हैं।" इतना सुनते ही एक बड़ी भारी चार मुखवाली शूल को रामचन्द्र पर फेंका परन्तु रघुवंशमणि ने बीच ही में काट डाला, फिर दोनों वीरों के बीच बड़ी देर तक लोमहर्षण युद्ध होता रहा, इसी बीच में रामचन्द्रजी ने एक ऐसा बाण मारा कि उसका दहिना हाथ कटकर पृथ्वी पर गिरपड़ा और इसी तरह बाम हाथ को भी काट डाला बिना हाथों का कुम्भकर्ण रामचन्द्र की ओर मुख खोलकर दौड़ा, तिसको देख देवतों ने हाहाकार मचाया परन्तु रण धीर राघवेन्द्र ने बाणों से उसके शिर को काटडाला जैसे कुम्हार चक्र पर चढ़ी मिट्टी को किसी पात्र के आकार में करके काट लेता है, फिर कबन्ध चारों ओर घूमने लगा परन्तु विजयी राम ने उसको पृथ्वी पर गिरा दिया जिसके गिरने से पृथ्वी कांप उठी, सागर का जल बड़े ऊंचे उछल उठा, अनेकों वृक्ष गिर पड़े, पर्वतों ने शिखरों को गिरा दिया इस प्रकार कुम्भकर्ण के मरने पर सृष्टि व्याकुल हुई ।

——:*:——

दुःख में रावण के विचार ।

जब रावण को कुम्भकर्ण के मारे जाने का समाचार मिला तो सुनते ही मूर्च्छित होगया कुछ समय के पश्चात् मूर्च्छा से जागा तो मन में कहने लगा कि जिनके बल मैंने तीनों लोकों को जीता वे मुझको छोड़ नहीं जानते कहां चले गये, अरे यह राम कौन है काल है, यम है अथवा विष्णु हैं परन्तु ये कोई मेरे सम्मुख नहीं खड़े होते थे मैं मैं विचार करता हूँ तो जान पड़ता है कि मनुष्य के कर्म ही सुख दुःख भुगाते हैं जब तक मनुष्य को दुःख नहीं होता तबतक वह उसका अनुभव नहीं करता आज मैं चारोंओर से दुःख से घिराहूँ, एकतो शत्रु घेरे हैं दूसरे मेरे बान्धवगण मर गये हैं सो आज मैंने जाना है कि स्वकुटुम्ब विछोह का दुःख इस प्रकार का होता है । जिन स्त्रियों को उनके माता पिता तथा भ्राताओं से बरजोरी छीन लाया था और वे आने के समय महाआर्त्तिनाद से अपने बान्धवों की ओर देखती तथा उनको पुकारती रोती थीं और उनके कुटुम्बी महा व्याकुल हो जलवर्षा के समान अश्रुधारा छोड़ते थे परन्तु मुझको उनकी दशा पर दया न आती थी । आज उन सबका दुःख एकत्र हो मुझको व्याकुल कर रहा है, हा उन्नति अवस्था में भविष्य नहीं देख पड़ता । यदि कहूं कि

अब युद्ध न करूं, परन्तु मैंने पराधीनता शब्द लेखनी तक से भी नहीं लिखा सो अब उसको कैसे स्वीकार करूं अस्तु यह निश्चय करता हूँ कि युद्ध करूँगा इस प्रकार युद्ध करने को निर्धारित कर सेनापति को सेना तय्यारकरने की आज्ञादी, और फिर बड़ीभारी सेना के साथ गायों के बीच सांड़ बैल की तरह युद्धस्थल को चला, रावण का आज आगमन सुन वानरभी युद्ध के लिये उत्साहितहो राहनिरख रहे हैं इतने में धूरि से मूंदी राक्षसों की चमू देख पड़ी तिसके बीच दीर्घरथ देखपड़ा जिसमें युद्ध कुशल अश्व नहे हैं और वह सारथी रथ हाँक रहा है जिसने मातलि नाम इन्द्र के सारथी से विजय पाया है, ऐसे सुसज्जित रथ पर बैठा हुआ रावण देख पड़ा ।

रथहीन राम ।

विभीषणजी दशानन को रथारूढ़ तथा रामचन्द्रजी को रथहीन देख महा दुःख को प्राप्त हुए, और अकुलाकर रामचन्द्र से बोले "इस महापराक्रमी रावण के साथ आप बिना रथ युद्ध कैसे करेंगे ?" तब रामचन्द्रजी मुसकाते हुए बोले, "सखा यह सत्य है कि जब योद्धा चार प्रकार से सज्जित होता है तभी वह विजय पाने की आशा कर सक्ता है ।" प्रथम बल, दूसरे परीक्षित अस्त्र शस्त्र, तीसरे रथ,

चौथे चतुर सारथी, परन्तु जिसके हृदयरूपी गढ़ में क्षमा-रूपी कुलिश समान पत्थर लगे हैं तथा सन्तोष नगर प्राकार है जो समता रूपी जल खांवां से घिरा है, धीरज रूपी सघन वन जिसके चारों ओर लगा है उसको संसार भी नहीं जीत सका तो भला प्राकृतिक शत्रु कैसे जीत सकेंगे, इस प्रकार रामचन्द्रजी विभीषण से बातें कर रहे थे कि इतने में मातलि नाम इन्द्र का सारथी रथ से उतर कर युद्धस्थल में निःशंक खड़े हुए वीर शिरोमणि रामचन्द्र के सम्मुख हाथ जोड़ कर बोला "मैं मातलि, इन्द्र का सारथी हूँ; इस पर चढ़कर शत्रु के साथ युद्ध कीजिये" रामचन्द्रजी बोले, मातलि ! यह अच्छा हुआ कि तुम आगये, अब अश्वों को सावधान करो, शत्रु संग्राम भूमि में आपहुँचा है, ऐसा कह कर तथा रथ को प्रणाम कर गणेश का नाम लेते हुए रामचन्द्रजी रथारूढ़ हुए। तब देवतों ने पुष्प बर्षाये, सिद्ध चारणादिकों ने जयघोष किया ।

युद्ध स्थान में रावण ।

इतने में अपने रथ के चाकों से पृथ्वी को कँपाता वीर रावण संग्राम भूमि के केन्द्र स्थान में रथ को खड़ा किया । फिर रथ पर चढ़े ही चढ़े रामचन्द्र की ओर देख बाम हाथ से संकेत कर कहने लगा कि वरुण, इन्द्र, यम, कुबेर आदि

लोकपालों के विजय करने में इतना परिश्रम नहीं करना पड़ा, जितना तुझ एक निरादृरित वनवासी के साथ युद्ध करने में कष्ट उठाना पड़ा है । परन्तु अव अपनी श्वासों को गिनता रह, न जाने रावण का वाण तेरी कौनसी श्वास की गति को सदा के लिये हरले । खरदूषण, मेघनाद तथा कुम्भकर्ण आदिकों के मृतक होने का कारण तूही है, ऐसा जान कर मेरे हृदय में क्रोध की ज्वाला उठती है, सो इस घन रूपी तेरे शरीर को प्राणहीन कर उनको शांत करूंगा । रामचन्द्र जी बोले, निलज, कादर ! आज तक तेरे ऐसे कर्म देखने में नहीं आये, कि जैसी तू जल्पना करता है । हमको तेरे साथ युद्ध करना है, नीति तथा धर्मकी मीमांसा करनी अनावश्यक है । अस्तु हम तुझे सावधान करते हैं युद्ध करने को उद्यत हो ।

राम रावण युद्ध ।

फिर दोनों वीरों के धनुषों से सर्पाकार वाण छूटे और वे एक दूसरे से भिड़ते भेड़ा की तरह अन्तरिक्ष में लड़ते रहे और फिर शांत हो पृथ्वी में गिर पड़े । रावण ने रामचन्द्र जी के मस्तक पर दश वाण, घोट्ठू पर पांच वाण तथा भुजा पर दश वाण मारा और रामचन्द्र ने एक ऐसा वाण मारा कि उससे अन्तरिक्ष में सहस्र वाण होगये और

रावण के रथ की ध्वजा को काट डाला और उसके घोड़ों के कानों में लग कर ऐसी शोभा देने लगे मानो बारासिंहे नहे हैं। रावण ने नागास्त्र छोंड़ा जिस से अनेकों सर्प उत्पन्न हो वानरों को काटने लगे, तव रामचन्द्र ने गरुड़ास्त्र छोड़ कर मयूरों से सर्पों को भक्षण करा लिया। फिर रावण ने मायापुंजास्त्र छोड़ महा अन्धकार कर दिया, तव राक्षस वानरों को पकड़ २ भक्षण करने लगे तब भगवान् रामचन्द्र ने सूर्य्यास्त्र छोड़ अन्धकार को हर लिया और उष्णता से निशाचर रण में न ठहर सके तव रावण ने मेघास्त्र छोड़ा जिस से घनघोर वर्षा होने लगी और उससे वानर वहुत व्याकुल हुए, तब रामचन्द्र ने पवनास्त्र छोड़ मेघों को छिन्न भिन्न कर दिया तब रावण ने अग्निबाण छोड़ा परन्तु धनुषविद्या के पूर्ण ज्ञाता राम ने उसको अपने एक वाण से अन्तरिक्षही में रोक दिया और वह अग्निबाण रावण ही के दल पर अग्नि बर्षाने लगा, ऐसा कौतुक देख देवगण हँसने लगे फिर रावण ने स्वयं अपने बाण को शांत किया। रामचन्द्र जी इतनी हस्तलाघवता से बाण चलाते थे कि सहस्र बाणों से रावण के बाणों को रोकते थे, सहस्र वाण से उसकी सेना को मारते थे, सौ सारथी के, सौ रथ के चाकों में तथा सौ बाण अश्वों के मारते थे, परन्तु महारथी रावण रामचन्द्र के एक २ बाण को अपने एक २ बाण

से काटता था एक बार रावण ने बीस बाणों को मन्त्रित कर छोड़ा वे अन्तरिक्ष में बीस लक्ष होकर विषधर सर्प के समान रामचन्द्र के रथ की ओर दौड़े, परन्तु रामने एक बाण से बीस लक्ष उत्पन्न कर शत्रु के सब बाणों को काट डाला, इतने में सन्ध्या हुई फिर दोनों दल अपने २ स्थानों को लौट गये ।

मन्दोदरी संवाद ।

जब रावण अन्तःभवन को गया तो मंदोदरी प्रणाम कर झारी में जल ले पति के चरणों को धोकर उस धोवन को पान किया, फिर उसको सुन्दर आसन पर बैठाय उस के पवन करनेलगी । जब रावणको सावधान देखा तब अन्य सब स्त्रियों को अलगकर पति से बोली, प्राणवल्लभ ! नीति तथा धर्म शास्त्रों ने स्त्रियों को अधिकार दे रक्खा है, कि जब किसी स्त्री का पति कुमार्ग पर निरत हो, तो उस स्त्री का कर्तव्य यही है कि अपने पति को भली भाँति समझा कर उक्त निंदनीय मार्ग से हटा लेवै । अस्तु मैं देखती हूँ कि आपके सम्मुख शीघ्रही महा अनर्थ आने वाला है, इसी से कहती हूँ कि रामचन्द्र के साथ युद्ध न कर जानकी को देदो । देखिये, किस योनि की कन्या जिनमें ब्रह्मा ने सुन्दरता दी है वह तुम्हारे यहां नहीं है, एक से एक सुन्दरी

नवयौवना अपनी चाह से तुमको भजने वाली वर्तमान हैं। अपने लिये कुछ भी विशेषण न लाकर अवसर बस कहती हैं कि जो सुन्दरता सब को प्रिय है सो वह स्वयं मेरा प्रेम करती है। सीता+ न हमारे बराबर सुन्दर है और न तुम-को प्रसन्न ही कर सक्ती है। फिर वह अपने पतिव्रतमें दृढ़ धीर है, एक तो तुम से कभी बोली नहीं, और जो बोली भी तो "तू दुष्ट" कहने के अतिरिक्त सौम्य शब्द भूले भी नहीं उच्चारण किया। तिस चतुर मृगी को अपनी अबूझ आशा जाल में डालना चाहते हो? ऐसा कदापि नहीं हो सक्ता। जब कोई वस्तु अगम होती है तो उसके पाने की इच्छा बुध जन नहीं करते। यदि सीता प्रति तुम्हारी काम वासना नहीं है वरन् भगिनी के अपमान तथा खरदूषणा-दिकों के नाश करने पर उसको हर लाये हो, तो पहिलेइस पर विचार करो कि भला इसमें रामका क्या दोष है, शूर्प-णखा राम को अपना पति बनाना चाहती थी, परन्तु अपना को निष्फल देख लज्जित हो जानकी को भक्षण करने दौड़ी, इस पर उनके छोटे भाई ने उसके नाक तथा कान काट डाले, यह बड़े अपराध में थोड़ा दंड है। खर-दूषणादि चौदह सहस्र अकेले राम के साथ अन्याय युद्ध

+यहाँ पर मन्दोदरी रावण के केवल हृदयस्थ भावों को उससे दूर करने के लिये ऐसा कह रही है।

करने गये थे। क्या इन दोनों घटनावों में राम अपराधी हैं? नीति शास्त्र कहता है कि संग्राम में अपनी पराजय देख योद्धा को युद्ध छल बल न विचार लगातार युद्धही न करते रहना चाहिये, वरन् देशकाल देख संधि कर लेना उचित है। आपके युद्ध के कारण अनेकों राक्षस नित्य मरते हैं, उनकी स्त्रियों के विलाप से सारा नगर शोक से भरा रहता है, सो अब संधिकर युद्ध को समाप्त कीजिये। यदि मोहवश यह विचारते हो कि मेघनाद, कुम्भकर्णादि वान्धव गण तो मर गये, अब हम जीकर ही क्या करेंगे। स्वामी आप वेदांत के एक श्रेष्ठ विद्वान हैं, जैसे सरिता में वहता हुआ तृण घाटों पर किनारे लग कर कुछ समय के लिये रुक जाता है और फिर आती हुई प्रचंड जल धारा उसको बहा ले जाती है उसी प्रकार जगत में पुत्र स्त्री भ्रातादिकों का साथ थोड़े समय के लिये होता है फिर वे अपनी २ राह लेने में विवश हैं इस से इन वातों पर मनको न टिका कर सीता को देकर संधि कर लीजिये। प्राणनाथ! इस संसार में नियत समय ही तक रहना है ऐसा कह गद्गदकंठ हो पति के चरणों में पड़ कर अंचलसे अश्रु पोंछने लगी। तब वीसभुजावाला रावण अपनी चतुर भार्य्या को निज अंक में बैठाकर बोला "प्रिये! तुम प्रेम वश हो इतना शोच क्यों करती हो, इतना तो मैं भी जानता हूं कि जन्म

मरण का अपृथक साथ है, जिसको "जन्म" शत्रु बन कर जगत् में घसीटलाता है, उसको मृत्यु मित्र रूप में हो यहाँ से ले जाती है। जब यह व्यवसाय दृढ़ है, तो किस बात का लोभकर सीता को देकर राम के साथ संधि करूं तथा उनसे क्यों भय करूं?" प्रिये! कभी २ मैंने चाहा कि संधि करलूं, परन्तु मेरा मन जिसने सदैव के लिये स्वतन्त्रता को अपने अधीन कर लिया है, उसने मनाये पर भी संधि की ओट पराधीनता स्वीकार नहीं की, इससे इस कार्य्य करने में मैं पूर्णतया अवश हूँ।

संग्राम में वीर रावण।

प्रातःकाल होते ही दशानन संग्राम भूमि में जाकर विषधर सर्प के समान बाणों की वर्षा करने लगा, किसी वानर का शिर कन्दुक समान गिर पड़ा है किसी की भुजा बाणों में नथी पृथ्वी में पड़ी है, किसी के पग कटगये हैं, किसी का कवन्ध अन्धे सर्प के समान इधर उधर टटोल रहा है, वानर अपने हाथों में शिला तथा वृक्ष मारने के लिये लाते हैं परन्तु रावण के बाणों के आघात से जहां के तहां गिरकर मृतक हो जाते हैं, इतने में हनुमान्‌जी सम्मुख आकर युद्ध करने लगे परन्तु रावण के साथ अधिक समय तक युद्ध न कर सके। दशग्रीव ने हनुमान् को मूर्च्छित कर

रथ को आगे बढ़ाया, फिर अंगद सुग्रीव जाम्बवान् आदिकों को रावण ने मूर्च्छित कर दिया, तब विभीषण युद्ध करने लगा परन्तु वह भी लोक विजयी रावण की गदा के प्रहार से गिर कर मूर्च्छित होगया, विभीषण को मूर्च्छित देख लक्ष्मण ने ललकारा रे नीच, दुर्मति ! सावधान हो, ऐसा कहकर लक्ष्मण ने पांच बाण पंचमुखे सर्प के समान मारा तिससे रावण का एक शिर कट गया, तब रावण दांत पीसता बोला रे पुत्र घातकी ! उसी क्षण तक तेरी कुशल थी, जब तक तू मेरे सम्मुख नहीं आया, तू हाथ में धनुप लियेही महानिद्रा को प्राप्त होगा, इस जटाधारी शिर के विभाग करने में गृध्रगण परस्पर लड़ेंगे, मेरे प्रचंड बाणरूपी हाथी इस तेरे कमल बन रूपी शरीर को विदीर्ण करेंगे और तब अवध तड़ाग शोक को प्राप्त होगा। ऐसा कहते हुये रावण ने लक्ष्मण के एक शूल मारा जिसके लगने से लक्ष्मणजी गिर पड़े—फिर थोड़ी देर में चेत हुआ तो देखते हैं कि रावण रामचन्द्र से युद्ध कर रहा है।

रावण बध।

रामचन्द्र को देखते ही रावण परीक्षित अस्त्रों को चलाने लगा, उधर वानर तथा राक्षसों के बीच महायुद्ध होने लगा। रावण के बाणों ने रामचन्द्र के रथ को इस

प्रकार मूंद लिया जैसे टीड़ीदल वृक्ष को मूंद लेता है, रामचन्द्र के शरीर में कोई ऐसा स्थान न था जहां रावण के वाण न लगे हों, उसी प्रकार मातलि तथा घोड़ों की दशा थी । रावण ! तुम्हारी वीरता को धन्य है आज तुम उसके साथ युद्ध कर रहे जो पलक भांजते सृष्टि का संहार कर सक्ता है, ऐसे अजेय "पुरुष" के साथ युद्ध करना क्या सब का काम है ? जब रामचन्द्र ने देखा कि शत्रु के बाणों से घोड़े एक पग भी नहीं उठा सके तब वाणवर्षा करने लगे और शत्रु के वाणों को दूर कर दिया, तब बानरों को रामचन्द्रजी देख पड़े और फिर मातलि ने रथ को आगे बढ़ाया रामचन्द्र रावण के शिरों को काटने लगे और वह भी रामचन्द्र पर तीक्ष्ण वाण चलाने लगा इतने में रावण बोला "आज तू जाकर दशरथ को प्रणाम करना, आज यमराज तेरा मार्ग देखते होंगे तेरे पीछे यमदूत खड़े मुझको तेरे मारने के लिये ललकार रहे हैं, वह देख मृत्यु भी सामने खड़ी बड़ी भारी जिह्वा लपलपा रही है, बस, अब महायात्रा को उद्यत हो" रामचन्द्र ने उत्तर दिया कि जिसको जगत् घृणा कर अपना में रखना नहीं चाहता उसी को मृत्यु तथा यमदूत देख पड़ते हैं सुतरां तुझको वे देख पड़े हैं तो अब उनके अतिरिक्त दूसरों को तू नहीं देख सक्ता । अच्छा अब सावधान हो ऐसा कह कर रामचन्द्र ने अगस्त्य के दिये हुए धनुष

को हाथ में ले तथा उस पर बाण को चढ़ाकर छोड़ा जिस से अन्तरिक्ष में कई बाण उत्पन्न होकर रावण के शिरों को काट डाला तब रावण पृथ्वी में गिर कर मृतक होगया ।

मंदोदरी बिलाप ।

जब रावण के मारे जाने के समाचार मंदोदरी आदि रावण की स्त्रियों को मिले, तब वे सब रावण की शव को घेर कर विलाप करने लगीं, मंदोदरी पति को निश्चेत पृथ्वी में पड़ा देख करुणा भरे वचनों में बोली, प्राणवल्लभ ! आज नेत्र क्यों मूंदे हो, आज तुम कहां पड़े हो, यह तुम्हारा शरीर जो सविधि रचित सुन्दरी सेज पर कसमसाता था सो आज यह रेता में पड़ा है, जिन बहुशिरों से दशानन कहे जाते थे सो धड़ से अलग दुरिआये हुए बालक की तरह अलग पड़े हैं, हा शोक ! संयोग का परिणाम वियोग होता है फिर रावण के एक शिर को धड़ में जोड़ कर बोली, प्राणनाथ ! तुम जहां गये हो वहाँ को मुझे भी ले चलिये यदि सुरलोक गये हो तो वहाँ अभी इन्द्र आपसे निर्भय न होंगे ब्रह्मलोक में ब्रह्मा जी भी आपके प्रताप का स्मरण करैंगे, वैकुंठ में हो, तो वह स्थान कृपासदन विष्णु का है वहां भी आपको कोई संकोच नहीं है, जब स्वर्ग में देवगण अपनी २ युवतियों के संग चैत्ररथ में निकलैंगे, तब

मेरे न होने से आपको शोक कष्ट देगा फिर रामचन्द्र का नाम लेकर बोली, राम! तुमने मेरे प्राण नाथ को अकेले भेजा है यह न्यायकर्म नहीं हुआ जिस अपनी स्त्री सीता के पाने के निमित्त हमारे प्राण जीवन को मारा है तब तुमको यह उचित नहीं है कि मुझे मेरे सहज स्नेही से दूर करदो, वरन् अपने शत्रु के अवशिष्ट अर्ध अंग 'मुझ' को भी नाश करो, फिर अपने आभूषणों की ओर देखकर बोली, हे आभूपणो! हमारा तुम्हारा साथ इसी स्थान तक था, अब आगे साथ रखने में अवश हैं, ऐसा कह रावण की भार्य्या मंदोदरी ने अमूल्य आभूषणों को निकाल कर फेंक दिया, ऐ वेणी! जहां प्राण सदन गये हैं वह मार्ग बड़ा अटपट है मैं तुमको वहाँ नहीं लेजा सक्ती, अस्तु तुम भी बिदा हो। हे षोडश श्रृंगारो! तुम्हारा भी घाट उतरने का आ गया है उतर जावो ऐसा कहती विकट वेष को प्राप्त हुई फिर विलाप करती बोली आज जगत् की दृष्टि में मैं रुई से भी हलकी हो गई, आज कोई आश्वासन का करने वाला नहीं है, आज संसार सुहृद्हीन देख पड़ता है, आज प्राण अजीर्ण हैं, आज जग कारागार देख पड़ रहा है, आज शत्रु मित्र के भाव हृदय में सम्पुटित हैं, आज मुझ से ऊबकर सुख भाग गया, आज विशाल मंदिर तथा भीट में अन्तर नहीं देख पड़ता, आज चेतन तथा जड़ में भेद नहीं देख पड़ता, आज

प्रलय देख पड़ती है, आज प्राण रहते हुए भी मृत्यु देख पड़ती है, आज चक्रधारी विष्णु के कहे में दया नहीं है, आज लोकपालों के हृदयों की बड़ी भारी सांग निकल गई, आज तत्त्वों का सम्मेलन वीर शरीर से इधर उधर छितर गया, आज लंकानगरी अपने नाहर को खोकर विधवा हुई, आज मैं दुखिया अगणित शवों के बीच मृतापति को लिये हुए चिता रचने की आशा में बैठी पति को देख देख रो रही हूँ-हा ! अब सधवा होने के चिह्नों के स्थान पर वैधव्य के चिह्न आसन ग्रहण करेंगे ऐसा विलाप करते महारानी मंदोदरी मूर्च्छित होगई ।

विभीषण विलाप ।

जब विभीषण ने यह जाना कि मंदोदरी आदि स्त्रियां शोक समुद्र में मग्न रावण की शव के समीप पड़ी हैं । तब वहां जाकर देखा कि रावण महादीन दशा में मृत पड़ा है, तिसके निकट स्त्रियां चारों ओर बैठी हरिणी के समान रो रही हैं, उस समय विभीषण का धीरज रूपी बांध टूट गया और करुणाजल के प्रवाह ने हृदय को डुबा दिया और तब विलाप करने लगे, हे भ्राता ! मुझ पापी ही के कारण तुम्हारी ऐसी दशा हुई है आपने सदा पालन पोषण किया और मैं एक लात के प्रहार पर आपकी मृत्यु का कारण

चन गया, ऐसी कृतघ्नता को धिकार है तथा मेरे स्वार्थ को धिकार है और मेरी कुटिल बुद्धि को धिकार है । संसार में आज तक कोई ऐसा नहीं हुआ कि अपने ऐसे प्रताप तथा दीर्घदर्शी भ्राता को मरवा डाले, मुझको शासन विभाग का काम कुछ कम नहीं दे रक्खा था, यहां तक कि मेघनाद आदि वीर मेरी आज्ञा प्राप्त कर युद्ध करने जाते थे परन्तु इन सब बातों की ओर न ध्यान कर आप को मरवा डाला जब संग्राम में मैं आप से युद्ध करता था, तो जब मेरी गदा छूटकर पृथ्वी में गिर पड़ी थी, यदि उसी बीच में आप चाहते तो मुझे मार डालते । परन्तु आपने ऐसे कठिन समय में भी अपने चित्त से स्नेह नहीं हटाया, उस भ्राता को कुलिश हृदय विभीषण ने मरवा डाला । जिसके प्रताप मार्त्तण्ड से सुरेश आदि लोकपाल भयरूपी उष्णता से व्याकुल हो मेरी ओट में शांत होते थे, ऐसे कहने पर चलने वाले बंधु को एक विश्वास घाती ने मरवा डाला । जिसके साथ विमानों पर बैठा अलका अमरावती ब्रह्मपुरी आदि स्थानों में सानन्द घूमता तथा वहां के वासियों से पूजित होता था, वह मुझ पापी करके मारा गया । इस तुच्छ अनित्य संसार में क्षुद्र ऐश्वर्य्य के पीछे ऐसा घोर अनर्थ करके अब दम्भयुक्त हो विलाप कर रहा हूँ । धिकार है, अरे । यह शरीर जो भोगरूपी मंदिर से कभी बाहर नहीं

निकला था सो वही आज इस रक्तसानी मेदिनी में पड़ा है और फिर थोड़े समय में यह भी न देख पड़ेगा हा ! हन्त !! कहते विभीषण मूर्च्छित होगये ।

लङ्केश विभीषण ।

जब रामचन्द्र ने सुना कि विभीषण जी रावण की शव के निकट पड़े विलाप कर रहे हैं, तब सुग्रीव को भेजकर बुला भेजा, और बोले कि अब रावण की शव को दग्ध करो, फिर चिता बनाकर रावण की शव को उस पर रख कर अग्नि लगादी । तब विभीषण अग्नि की लपकों की ओर देखते रोते हुये बोले कि जो गति ऋषि तथा मुनि लोगों को होती है वही गति भ्राता ! तुम को प्राप्त हो । जो गति ज्ञानी तथा भक्त लोगों को होती है वही गति भ्राता ! तुम को प्राप्त हो । जो गति ब्रह्मवादियों को होती है वही गति भ्राता ! तुमको प्राप्त हो । इस प्रकार विलाप करते रावण को दग्धकर तथा उसके अन्त्येष्टि कर्म से निवृत्त हो रामचन्द्र के निकट लौट आये, फिर रामचन्द्र ने लक्ष्मण के साथ सब वानरों को लंका को भेजकर विभीषण का राजतिलक कराया ।

—:०:—

जानकी मिलाप।

फिर रामचन्द्रजी ने हनुमान् को भेजकर वैदेही को बुलाया विभीषणजी वैदेही को पालकी में बैठाकर स्वयं नंगे पावों पालकी के साथ चले, तिसके पीछे सहस्रों राक्षसी राम जानकी की जय बोलती चलीं, यहां पर कहना पड़ता है कि केवल समय ही मनुष्य का शत्रु मित्र बनता है जो राक्षसी सीता को पीड़ा देती थीं सो वेही आज उनकी सेवकिनी बनी जय बोल रही हैं, जब पालकी रामचन्द्र के निकट उतारी गई तो सीता उतर कर नीचे मुख किये हुये रामचन्द्र के निकट पहुँची और प्रणाम कर हाथ जोड़े सम्मुख खड़ी रहीं, इतने में रामचन्द्र का रूप रुद्र के समान होगया, और उनकी ओर कोई न देख सका, तब रामचन्द्र सीता प्रति बोले "वैदेही! वीर पुरुषों का धर्म है कि जिस कार्य्यरूपी राहु द्वारा उनका प्रतापरूपी सूर्य्य ग्रसित होता हो तो उसको पराक्रम द्वारा नष्ट करें। अस्तु तुम्हारे हरेजाने के कारण मुझमें अल्प पराक्रम दोष आता था, इसलिये इतनी दूर आकर रावण को मारकर तुमको मुक्त किया। इतने दिन तक तुम उसके यहां रही हो इससे मैं तुमको पुनः अंगीकार नहीं कर सका और मैं तुमको स्वतन्त्र करता हूँ कि तुम कहीं जावो" ऐसे वचनों से सीता

का हृदय तथा शरीर कांपने लगा और नीचे मुख किये हुये ही बोलीं "यह सब मेरे कर्मों का फल है कि आप स्वामी अन्तर्यामी होते हुये भी ऐसा कहते हैं, अच्छा, मैं आपकी आज्ञा ही में अपना हित समझती हूँ" फिर लक्ष्मण से बोलीं कि प्राण वल्लभ की आज्ञा शिरसे धारण कर मैं अग्नि में प्रवेश करूंगी तुम चिता बनादो, फिर लक्ष्मण ने राम के रुख को देख अश्रुजल छोड़ते हुये लकड़ी एकत्र करदी। तब सीता रामचन्द्रको बारंबार प्रणाम कर अग्नि में प्रवेश होगईं; फिर थोड़ी देर में अग्नि देव सीता को साथ लिये हुये रामचन्द्र के निकट आकर बोले "रामचन्द्र! यह सीता सदा पवित्र वृत्त में टिकी केवल तुम में अपने मनको लगाये रही है, जैसे सूर्य्य के सम्मुख अंधकार नहीं आसक्ता वैसेही इसके महापातिव्रत के सामने पाप नहीं आसक्ता हम देवता हैं सब के गुप्त प्रकट पापों को जाना करते हैं, सो सीता सदैव से पवित्र तथा पाप रहित है अब आप इसको स्वीकार करें" तब रामचन्द्र ने सीता के हाथ को पकड़ कर अपने वाम भाग में बैठालिया इस सुख को देख पिछले दुःख को भूलकर राक्षस तथा बानर जयघोष करने लगे। अधम जीवों की क्या सामर्थ्य है कि जो प्रभु के चरित्रों के भावों को जान सकें जब ब्रह्मा इन्द्रादि ब्रह्मवादी भी नहीं जान सके।

अवध लौटने की बातें।

फिर विभीषण हाथ जोड़े हुये बोले "सेवक चाहता है कि सरकार कुछ दिन लंका में रहैं, महाराज के सम्मुख अधिक बोलने में वाणी संकोच करती है" तब रामचन्द्रजी भरत के कठिन व्रत को सुनाकर अवध लौटने का आग्रह करने लगे, इतने में इन्द्र आकर हाथ जोड़े हुये बोले हम देवतों को जब भीड़ पड़ी है तब आप करुणामय ने रक्षा की है अब इस समय मेरी कुछ सेवा स्वीकार की जाय, तब कौशल किशोर मुसकाकर इन्द्र से बोले "सुरेश! मृतक ऋक्ष वानरों को अपनी अमृतवर्षा से जीवित कर दीजिये और जहां ये रहैं वहां सदैव फल फूल जल से सुकाल बना रहै" तब सुरपति तथास्तु कहकर अमृतवर्षा करने लगे उससे मृतक वानर तथा ऋक्ष जीवित होगये, फिर विभीषण ने वानरादिकों के लिये पाटाम्बरादि वस्त्र बर्षाया फिर विभीषण जी रामचन्द्र से बोले कि यदि प्रभु यहां नहीं ठहरना चाहते तो किंकर अवध को साथही चलेगा-विभीषण के प्रेम भरे शब्दों को सुनकर रघुवंशमणि मुसकाकर बोले ऐसा करने में मैं बड़ा प्रसन्न हूँ फिर विभीषण ने पुष्पक विमान को लाकर खड़ा कर दिया।

अवध गमन ।

फिर सब बानरादिकों के सहित रामचन्द्रजी सीता तथा लक्ष्मण सहित बैठे फिर वह विमान अन्तरिक्षमार्ग हो चला, तब रामचन्द्रजी हाथ से संकेत करते हुये जानकी से भिन्न २ स्थानों का परिचय देने लगे "यही संग्राम भूमि है" इस स्थान पर लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा था, वह जो राख का भीट देख पड़ता है यह कुम्भकर्ण की चिता है। देखो इस स्थान पर गृध्रगण आंतों के विभाग करने में परस्पर लड़ रहे हैं और सड़े मांस की दुर्गंधि इतने ऊंचे तक आरही है। यह चिता रावण की है इससे अभी धूम निकल रहा है, यह सेतु का दक्षणीय किनारा है इसको इन नल नील बानरों ने निर्माण किया था। यह समुद्र है जो अहंकारी मनुष्य की तरह उमड़ रहा है, वह देखो समुद्र की सतह पर जल बउन्डर[1] खम्भा सा खड़ा है जैसे पंचतत्त्व के सम्मेलन से आधिभौतिक शरीर की रचना होती है। उसी प्रकार वायु तथा लहरों के बेग द्वारा यह जल बउन्डर उत्पन्न होता है। समुद्र के उत्तरीय तटपर मेरा स्थापित किया हुआ यह रामेश्वर नाम शिव का लिंग (मूर्त्ति) है।

---

[1] जलबउन्डर समुद्र में उसी प्रकार उठते हैं जैसे ग्रीष्मकाल में धूरि पूरित बवन्डर गोलाकार स्थल में उठते हैं।

जब विमान किष्किन्धा के निकट पहुँचा तो अपने देश के आस पास की भूमि तथा ग्रामों को देख, सुग्रीव हाथ जोड़ कर रामचन्द्रजी से बोले "आज्ञा हो तो तारा आदि स्त्रियाँ मैथिली से भेंट करलें" तब रामचन्द्रजी की आज्ञा प्राप्तकर किष्किन्धा में पुष्पक उतारा गया और तारादिकों से भेंट कर सीताजी ने उनको अपने साथ बैठा लिया, फिर विमान आकाश को उड़ा, और अपनी पूर्व की गति में प्राप्त होकर चला। रामचन्द्रजी बोले, प्रिये! इस ऋषि मूक पर्वत पर वर्षा के चार मास चार कल्प के समान बिताये थे। इसी वनमें हनुमान् से भेंट हुई थी, तब वहाँ पर सीताजी ने पुष्प डालकर "कल्याण हो" ऐसा शब्द कहकर कपिशार्दूल हनुमान् की ओर निहारा। देखो जिसके चारों ओर सघन हरित वृक्ष लगे हैं वह पम्पासर नाम तड़ाग है, यहाँ पर ब्रह्मवेत्ता मुनिलोग रहते हैं। इसी स्थान पर जटायु तथा रावण का युद्ध हुवा था, सीताजी पुष्प तथा जल छोड़कर बोलीं "हे स्थान! तुमको अग्नि आदि की कोई बाधा न हो और सदा फल फूल से संयुक्त रहो" यह पंचवटी है उस वट और पनस वृक्ष के बीच में दृष्टि करके देखो तो वह हमारी पर्णकुटी देख पड़ती है, जिसके ऊपर का कुछ तृण वायु के झोंकों द्वारा उड़गया है। यह अगस्त्यजी का प्राचीन आश्रम है, इस स्थान पर उतरकर मुनियों से भेंट करेंगे। फिर

अगस्त्य आदि ऋषियों से भेंट किया, चलने के समय अगस्त्यजी बोले "इस समय आप शीघ्रता में हैं इससे आप चलिये, आपका मार्ग कल्याण हो, हम लोग भी पीछे से आते हैं" फिर विमान आकाश मार्ग होकर उत्तर को चला, जब विमान चित्रकूट के ऊपर आया तो रामचन्द्रजी बोले "हम तीनों जनों ने बहुत काल तक इसी स्थान पर वास किया था" तब वैदेही विमान को आकाशही में खड़ा कराके उसके एक शिखर पर पुष्प फल छोड़कर बोलीं, हे शांतिदाता; स्थान! यहाँपर जो कोई आकर भजन करैगा उसका मन सदैव के लिये शांत होगा इतने में गंगा यमुना का संगम देख पड़ा, फिर तीर्थराज प्रयाग में भरद्वाज के स्थानपर विमान उतरा, तब रामचन्द्रजीने भरद्वाज से मिल कर हनुमान को अयोध्या भेजा कि जाकर भरत से कहो कि हम अयोध्या प्रातः पहुँचैंगे। और मार्ग में हमारे सखा निषाद को भी हमारे लौटने की सूचना दे देना।

व्याकुल भरत।

हनुमान्‌जी शृंगवेरपुर में निषाद से रामागमन के समाचार कहकर नन्दिग्राम में पहुँचकर देखते हैं कि भरत जी के मनको किसी बड़े भारी शोक ने दबा रक्खा है, जिससे चेष्टा उदास प्रतीत होती है। जब मन की व्यथा

इतनी बढ़गई कि उसको मन न संम्हार सका, तब प्रकट में एक वार बोल उठे "रघुवंशमणि ! आज आप के वनवास के चौदह वर्ष की अवधि पूर्ण होती है उसके साथ मेरे प्राणों के वास की अवधि भी पूर्ण होती है, आप सत्यवक्ता प्रभु ने अवधि बीत जाने के प्रथम दिन ही में लौटने को कहा था, परन्तु प्रभु के समाचार न मिलने से मुझ में टिके हुये प्रभु के वचन भी विचलित होगये हैं, यह चातक शरीर ग्रीष्म अवधि बीतने पर पावस रूपी प्रभु के आगमन समय में विना आप घनश्याम के दर्शन पाये पतन होता है। प्राणो ! उद्यत रहो, सन्ध्या होगई है, तुम्हारी यात्रा के लिये कुछ प्रहर शेष रह गये हैं, नहीं तो जैसे स्त्री चिता से उतरने पर निन्दापात्र वनती है उससे शतगुण अधिक अपयश तुमको संसार में मिलेगा" ऐसा कहते भरतजी मूर्च्छित होगये ।

प्रफुल्लचित्त भरत ।

तब हनुमान् जी निकट जाकर मधुर शब्दों में बोले "श्रीरामचन्द्रजी वैदेही तथा लक्ष्मण के साथ अयोध्या को लौट रहे हैं, आज महाराज का वास प्रयाग में है प्रातःकाल निषाद से भेंट कर यहां पहुँच जायँगे । ऐसे अमृत साने वचनों से भरत की मूर्च्छा का उग्रह हुआ तो उक्त कहे हुए शब्दों को दुहराने के लिये संकेत किया, जब हनुमान् ने

रामचन्द्रजी के आगमन का समाचार विचरणरूप से वर्णन किया तो भरतजी आह्लादित हो बोले, "भला आप शिवजी तो नहीं हैं ? भला आप देवतों के ईश इन्द्र तो नहीं हैं ? भला सकल जगत् के पालन करने वाले विष्णु तो आप नहीं हैं ? सत्य कहिये आप कौन हैं जो इस समय मेरे प्राणों के आधार बने हैं" तब हनुमान्जी हाथ जोड़े हुए बोले "मैं हनुमान् नाम प्रभु का दूत हूँ, सरकार ने अपने आगमन के समाचारों के साथ मुझे भेजा है" तब भरतजी ने हनुमान् को हृदय में लगा लिया तथा पुर में वशिष्ठ के निकट रामागमन के समाचार भेजकर उत्साह की तैयारी कराने लगे, शत्रुघ्न को बुलाकर कहा कि महाराज के बनवास होने से पुरी पति के परदेश में रहने से मलीन स्त्री के समान होगई है। इससे उसको तोरण ध्वजा पताकादि से भूषित करो, प्रत्येक पुरवासी के द्वार पर बन्दनवार और केला तथा कलशादि मांगलिक पदार्थ रक्खे जावें। और मार्गों को स्वच्छ कराकर उनके दोनों किनारों पर पुष्पबेलि लतादि लगाई जावें तब शत्रुघ्नजी ने अयोध्यापुरी को भलीभांति से सजाया, उस समय अयोध्यापुरी ऐसी शोभा संयुक्त थी, जैसे शृंगारसम्पन्न प्रमदा द्वार पर खड़ी पति का मार्ग देखती हो।

—:*:—

अयोध्या में राम ।

उस ओर रामचन्द्र भरद्वाज से विदा हो तथा शृंग-वेरपुर में निषाद को साथ लेकर सुग्रीवादि वानरों को मार्ग के वन वृक्ष दिखाते हुए बोले देखो हमारी पुरी के ऊंचे धवरहरों के ऊपरी भाग झलक रहे हैं, जैसे पक्षी अपने थलकुर को देख प्रसन्न होता है वैसेही मेरा मन अवधपुरी को देख कर प्रफुल्लित है जन्मभूमि भाषा, आकृति, प्राकृति तीन सहेलियों को साथ लिए हुए अपने पुत्र का साथ कभी नहीं छोड़ती। ऐसी जननी को बारम्बार नमस्कार है इधर भरत जी वशिष्ट तथा माताओं और सकल पुरवासियों के साथ दक्षिण की ओर विमान को देख रहे हैं, इतने में सब लोगों से विमान देखा गया तब सब लोग एक साथ ही बोल उठे देखो वे हमारे प्राण दाता आ रहे हैं, एक दूसरे पर गिरते ऊपर को उछलते रामचन्द्र के देखने की लालसा प्रकट करने लगे, इतने में विमान ने अपनी चाल नीचे को की और फिर पृथ्वी में आकर स्थित हुआ, तब रामचन्द्र भरत को हृदय में लिपटाये हुए उनके बदन पर हाथ फेरने लगे तथा उनके शिर पर जटा देख रामचन्द्र के नेत्रों से जलकण गिर पड़े फिर वशिष्ठ से

और माताओं से तथा हर एक पुरवासी से अलग २ मिल कर सानन्द नगर को चले ।

दोहा ।

राम विजय देवैं विजय, सब काजन में मीत ।
पढ़ौ गुनौ धारण करहु, रहै न भव रिपु भीत ॥

इति विपिनकाण्डम् ।

उत्तर काण्ड ।

अभिषेक की तय्यारी ।

फिर रामचन्द्र जी अपने मंदिर में जाकर विराजमान हुए । जब रात्रि चहर पहर में गाते बजाते दिन के समान व्यतीत हुई । तब अरुण शिखा बोलने लगे, जिन २ वृक्षों में पक्षी गणों ने रात्रि को वास किया था, उनको अपने चुह-चुह शब्दों से गुंजायमान करने लगे तथा अपने परों के वेग से उनके पत्रों को कँपाने लगे, जैसे सूक्ष्म कटिवाली स्त्री बलवान् पति से व्याकुल की जाती है । प्राची दिशा अरुण रंग से पूरित होगई, मानो रामचन्द्र के अभिषेक उत्साह में अबीर छोड़ती है । मंद मंद पवन चलने लगा, मानो चौदह वर्ष से नींद के दुःखी अवधवासियों को अपने सुहावन झोकों से शयन कराना चाहता है । सदा सचेत रहने वाला चातक पक्षी अपनी विरह बोली बोलता है, परन्तु कोकिला अपने कलरव को करती आनन्द सूचक शब्दों में उसको डाटती है "रे नीच चातक ! अब आज अवध विरही नहीं है । घनश्याम रामचन्द्र जी बन से लौट

आये हैं । आज उनका अभिषेक है" पुरवासी सरयू में स्नान करने जाते हैं, और वह श्वेत धारा युक्त बहरही है । मानो रामचन्द्र जी का अभिषेक सुन कर हँसती है । जिस दिन भरत तथा हनुमान जी की भेंट हुई थी । उसी दिन शत्रुघ्न जी ने चारों दिशाओं में रामाभिषेक का निमन्त्रण भेज दिया था । सो पृथ्वी मण्डल के चारों ओर से आये हुए राजा लोगों से बारह योजन की अवधपुरी तथा उसके बाहर की भूमि भरी थी । उनके लिये श्वेत, अरुण वसंती नील तथा विचित्र रंगों के वितानादि छाये गये थे । १ भद्र २ मंद्र ३ मृग ४ मिश्र जाति के हाथियों के झुंड के झुंड झूम रहे थे और ५ धारा ६ आस्कंदित ७ रेचित ८ धौरितक ९ प्लुत १० वल्गित आदि गतियों में प्रवीण घोड़े बंधे

१—जिसके दांत मधु के समान, बलवान, तथा अंग सम हों ।

२—कोखस्थल, सिंह के समान दृष्टि, गला तथा शुंड बड़ा अग मध्यम भद्र से एक हाथ कम ।

३—कण्ठ, दांत, कान, शुँड सब पतले, नेत्र बड़े, हृदय, तथा ओष्ठ छोटे, भद्र से एक हाथ कम ।

४—जिसमें इन सब गजों के चिह्न मिलें उसे मिश्र कहते हैं ।

५—जो अत्यन्त वेग से हो ।

६—किंचित् सिकुड़े हुये अगले पैरों से जो खोद २ कर चलै ।

७—किंचित् कूदकर जो अखंड गति से चलै ।

८—इस गति में प्रवीण घोड़ा रथ के ले चलने में उत्तम होता है ।

९—इसमें कुशल, घोड़ा मृग के समान चारों पैरों से कूदता चलता है ।

१०—इसमें आधे शरीर को हिंडोला के समान उठाकर चलता है ।

शब्द कर रहे थे। मन्दिरों के कलश सूर्य्य की किरणों के लगने से चमक रहे थे, वायु के झोकों से पताके सर्प की जिह्वा के समान फहराय रहे थे, वन्दनवार कलश तथा कदली वृक्षों से प्रत्येक गृह सजाये गये थे, हर एक गृह में युवति गण प्रमुदित रामाभिषेक गा रही थीं, इस प्रकार अयोध्या में पूर्णरूप से आनन्द छा रहा था।

सिंहासनारूढ़ राम।

जब रामचन्द्र के अभिषेक के मुहूर्त का एक प्रहर शेष रहगया, तो भरतजीने सर्वत्र सूचना करा दी कि सब लोग सभामंडप में चलने की तैयारी करें, तब सब राजालोग तथा पुरवासी और प्रजा पुष्प, फल, चन्दन, अरगजा, लावा, आदि मांगलिक पदार्थों को लेकर यथास्थान में विराजमान हुये, वहां पर एक अनुपम सिंहासन धरा था, जिस पर बैठकर इक्ष्वाकु से लेकर सब सूर्य्यबंशी राजालोग अभिषेकित हुये थे, उस पर सीता सहित रामचन्द्र विराजमान हुये, तब एक ओर लक्ष्मण और दूसरी ओर भरत भ्रातृस्नेहरूपी चँवर लेकर खड़े हुये, और हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, जाम्बवान् पृष्ठभाग पर खड़े हुए। यद्यपि बड़े २ महाराजादिकोंने सेवकरूप में खड़े होने को निवेदन किया, परन्तु यह प्रतिष्ठित पद सुग्रीवादि वानरों ही का

दिया गया । जब सभा मुनि, ऋषि, तापसी, योगी, महाराजा, राजा, नट, मागध, वंदीजन, मंगलामुखी, विदूषक, प्रजा आदिकों से पूर्ण होगई । तब एक वंदीजन खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठाये हुये बोला ! "सार्वभौम श्रीदशरथजी इन रामचन्द्र को युवराजपदवी देते थे, किन्तु जो विघ्न उपस्थित हुआ था वह इस भादों की घोर घहराती नदी के समान सभा से छिपा नहीं है । उत्तम प्रकृतिवाले रामचन्द्रने उक्त विघ्न को नष्ट करडाला । सुतरां अब वृद्ध महाराज दशरथ जी नहीं हैं सो यह चक्रवर्ति-छत्र जो बहुत दिन तक किसी के ऊपर नहीं लगा था, आज रामचन्द्र के ऊपर लगकर उनको चक्रवर्ती कहलावेगा, इस पद के योग्य रामचन्द्र हैं इस बात को उन वीर्य्यवान् के कर्म ही सब को उत्तर देसक्ते हैं, अब आप सभा की क्या सम्पति है" । इतना कहकर वह चतुर वंदी चुप हो गया । तब सभा में एक साथ ही "साधु साधु" शब्द गुञ्जायमान होगया । फिर वशिष्ठजी, अंगिरा, अगस्त्य, विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि, कश्यप, पुलस्त्य, गौतम, नारद, मार्कण्डेय, शाण्डिल्य, देवल, गालव, च्यवन, मैत्रेय आदि ऋषियों को साथ लेकर रामचन्द्रजी का अभिषेक करने को चले, उस समय मधुर स्वरों से युवतिगण मंगल गीत गाने लगीं, अप्सरा नाचने लगीं, गंधर्वगाने लगे, देवगण नन्दन बनके

पुष्प बरसाने लगे, सखाओं के आनन्दाश्रु बहने लगे, मातावों की दूधवाहनी नाड़ियों की चाल तीव्र होने लगी, मुनि तथा ऋषि गण एक स्वर में साम् का गान करने लगे, राजा लोग हाथों को जोड़े खड़े रामचन्द्र की आधीनताई स्वीकार करने लगे, तब वशिष्टजी ने रामचन्द्र के तिलक किया, तथा कल्याण हेतु दम्पती के ऊपर अक्षत छोड़े, फिर सब ऋषि तथा मुनियों ने तिलक किया। जब अभिषेक होगया तब भरतजी ने कई लक्ष गौवें तथा विपुल धन ब्राह्मणों को दान किया।

राम के सम्मुख ब्रह्मा।

कुछ समय के पश्चात् देवतों समेत ब्रह्मा जी आकर रामचन्द्र की स्तुति करने लगे, "हे अशरण शरण! इस अल्प ब्रह्माण्ड का अधिनायक मैं आप अनेक ब्रह्माण्डाधिपति को बारम्बार नमस्कार करता हूँ। जैसा संकल्प प्राणी आपमें करते हैं उसी रूपमें आप उनको देख पड़तेहो। आप जगत्पिता को अभिमानी रावणने शत्रु माना था—अस्तु, आप उसको उसी रूप में प्राप्त हुये। विचित्र सृष्टि रचने की दक्षता मुझ क्षुद्र जीव को दी है ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड रचने वाले प्रभु को बारम्बार नमस्कार है। जब क्षमारूपी पृथ्वी पाप भार से दलमलित हो जाती है और आपके

भक्त क्लेश पाने लगते हैं तब आप नर अवतार धारण कर दुःख दूर करते हो, ऐसे दीनबन्धु को बारम्बार नमस्कार है। जब आपके जन किसी कार्य्यवश आपको स्मरण नहीं कर पाते और भजन न कर पाने से स्वयं अपनी निंदा करने लगते हैं, तब आप उससमय को जिसमें भक्तने स्मरण नहीं किया, उसे भजन में ही गणना करलेते हो, ऐसे आप शील संकोची प्रभु को बारम्बार नमस्कार है । आपके कोई २ जन आपका स्मरण करते हुये संसारी भोगों की भी इच्छा रखते हैं तो आप उनके मनोरथों को पूर्ण कर उन्हें अपनी ओर अधिक खींच लेते हो, ऐसे जन की इच्छा पूर्ण करने वाले प्रभु को बारम्बार नमस्कार है ।

इन्द्र ।

फिर इन्द्र स्तुति करने लगे। सदा विषय में लिप्त दूसरे के ऐश्वर्य्य को न देख सकने वाला, सदा मान पाने के विचारों में लीन, महापाप से चिह्नाङ्कित मैं इन्द्र नमस्कार करता हूँ ।

हे सुलभस्वरूप, कोशलाधीश ! जिसके निकट पहुँचने की कौन कहे, उसके ब्रह्मादिकों की रचना में ही बुद्धि क्षुभित होती है, उस अविनाशी रूप आप भगवान् को बारंबार नमस्कार है। सृष्टि रचना में एक २ वस्तु को कोटि

रूपों में कर और उन हरएक को शत कोटि भिन्न भेदों में करने वाले अनाम अगाध प्रभु को वारंवार नमस्कार है ।

महेश ।

इसके पश्चात् महादेवजी स्तुति करने लगे "प्राकृतिक बाल-लीला करने वाले आप प्रभु को वारंवार नमस्कार है । तपस्या तथा सुकृत ऐश्वर्य्य में मदान्ध मुनि तथा सुरगण आदि अज्ञानी प्राणियों को शाप दे देकर तिर्य्यगादि निकृष्ट योनियों में गिराये थे, उन सब प्राणियों को दुर्लभ गति देने वाले प्रभु को वारंवार नमस्कार है । सांसारिक सुख को घृणित दृष्टि से देखने वाले विदेह जनक को अपने व्याह चरित से उस (सांसारिक सुख) को उन (जनक) से से आदर दिलाने वाले कौतुकी प्रभु को वारंवार नमस्कार है, चक्रवर्ती राजा होने में तथा वनके दुस्सह दुःखोंके सहने में किंचित् न अंतर देखने वाले परमहंस प्रभु को वारंवार नमस्कार है । जिस वचन पर राजा दशरथ ने शरीर त्याग किया, उस सूक्ष्म सूत (वचन) को प्रेम रूपी बल से सम्पन्न भरत के हाथों में देनेवाले तथा अपने कठिन प्रण को छोड़ खुले अपमान सहने में तत्पर, परन्तु भक्त भरत को किंचित् मात्र क्लेश में न देख सकने वाले भक्तवत्सल प्रभु को वारंवार नमस्कार है, हम सब लोकपाल अपनी २ स्तुति तथा विनय

सुनकर प्राणियों को मनमाना वरदान दे देते हैं, और वे लोग अभिमान अन्धकार में पड़कर सृष्टि का संहार करने लगते हैं। तिनके वेग को सम्हारने वाले अजेय प्रभु को बारम्बार नमस्कार है। मेरे मन को मानस बनाकर, तिसमें स्वयं हंस बन अविचल बसनेवाला, सब को सुगम, सब के मनोरथों को पूर्ण करने वाला भक्ति, भुक्ति तथा मुक्तिदाता इस सिंहासनासीन प्रभु रूप को बारम्बार नमस्कार है इस प्रकार सब देवगण स्तुति करके अपने २ लोकों को चले गये ।

रामराज्य ।

रामचन्द्र के राज्य में वर्षा ठीक समय पर होती थी, और उसकी न्यूनाधिक्यता कृषक गणों पर निर्भर थी, वृक्षों ने फलदान से कभी विराम नहीं लिया, पर्वतगण मूल्यवान् धातुवों तथा रत्नों को अपने भीतर से निकाल कर बाहर फेंक देते थे। सागर अपनी श्वासरूपी लहर को निष्फल नहीं जाने देते थे, वरन प्रबाल मोती आदि रत्नों को किनारे डाल जाते थे। भूकम्प से कभी किसी की क्षति नहीं हुई, किसी को त्रितापें नहीं ब्यापी, वायु ने बड़े बेग में चलकर वृक्षों को नहीं उखाड़ा, वज्र किसी पर नहीं गिरा, मनुष्य रोगग्रसित न थे, आयुर्वेद में रोगों के केवल नाम सुनते थे

अंगहीन कोई न था, कुरूपता किसी में न थी, सहज सुन्दर मनुष्य थे, सब लोग विद्वान थे, छल कपट दम्भ से लोग मूर्ख थे, विवाद में विद्याविवाद होता था, राजा प्रजा एक दूसरे का भला विचारते थे, कोई ऋणी न था, लोग व्योपार में झूठ न बोलते थे, मनुष्य एक दूसरे की बातों पर विश्वास करते थे, परोपकार प्रथम कार्य्य समझा जाता था, परस्वार्थ के सम्मुख स्वार्थ की छाया न देख पड़ती थी, स्त्रियाँ परपति में रत न थीं, वरन अपने पति को भगवत् रूप समझ कर सेवा करती थीं, विद्या तथा शिल्पकला में कुशल होती हुई भी पति का अनादर नहीं करती थीं, मनुष्यों में मिलाप था, कोई किसी की निन्दा नहीं करता था, लोग परोसी को अपना आत्मीय समझते थे, वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपाल करते थे, यह कभी नहीं हुआ कि शूद्र वैश्य के कर्म और वैश्य क्षत्रिय के कर्म तथा क्षत्रिय ब्राह्मण के कर्म करें, क्योंकि ब्रह्माने उनकी प्रकृति भिन्न भिन्न कार्य्यों के योग्य बनाई है, जैसे मधुर में खट्टा रस मिल जाने से यह उसके स्वादु को हर लेता है वैसेही एक वर्ण दूसरे वर्ण के कर्म करने में योग्यता का संपादन नहीं कर पाता । कोई वाचाल न था, जितनी बात कहते उतना करते थे, ओछे, छलहुला, नास्तिक, विषयी, असत्यभाषी, निंदक, ईर्षारत, निरुद्यमी, मादक वस्तुवों के खाने वाले, कपटी, विश्वास-

घाती मनुष्य रामचन्द्र की राज्य में न थे। सुशील, दम्भ-रहित, शुद्ध हृदय, इन्द्रियजित्, शमदम में परायण, वेदों तथा शास्त्रों के ज्ञाता तथा उनके विधानों को कर्म द्वारा प्रकट करनेवाले लोग थे, वरकन्या का विवाह धन देख कर न किया जाता था, वरन् उनके स्वभाव तथा गुणों को देख कर वर का पिता दहेज़ के लिये कन्यापक्षवालों को वचन-बद्ध नहीं करता था। लोग धर्मभीरु थे अपने वचनों का पालन करते थे।

अगस्त्य तथा राम संवाद।

एक दिन रामचन्द्र जी मन्त्रियों के सहित सभा में बैठे थे, इतने में द्वारपाल आकर हाथ जोड़े हुए बोला कि अगस्त्यजी मुनिमण्डली सहित द्वार पर खड़े हैं, महातपोधन का आगमन सुनकर रामचन्द्रने स्वयं द्वार पर आकर स्वागत किया, और फिर भीतर ले जाकर सब मुनियों को विशाल आसनों पर बैठाया, तब रामचन्द्रजी बोले "जैसे पृथ्वी पर जल वर्षा होने से चर अचर को आनन्द होता है" वैसेही आप महात्मावों के आगमन से हम संसारी जीवों की ग्रीष्मतपनिरूपी चित्तपीड़ा दूर हो जाती है, हम तो यही समझते हैं कि आप ईश्वर से भी बड़े हो, क्योंकि वह तो मख; होम, व्रतादि करने से रीझता है और आप सन्त

जन स्वयं आकर अपने सदुपदेशों से पाप नाश कर अन्तः-करण शुद्ध कर देते हैं, यह अन्तःकरण गर्त समान है, उसमें विषय काई पड़ी है, पूजा व्रत योग शमदम रूपी करोंसे उस काई को हटाते हैं, परन्तु हाथ के अलग करते ही वह उस को फिर आच्छादित कर लेती है। आप सन्त लोग शिशिर ऋतु हैं उसे नाश कर डालते हैं तब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। आज हमारा अहो भाग्य है, कि जिन सांसारिक कुरोगों से बचने के लिये आप निर्जन बन में बसते हैं, उन संक्रामक रोगों की अधिकता हम में जानकर भी यहाँ आ कर दर्शन दिया, ऐसा कह कर रामचन्द्र चुप हो गये। तब अगस्त्यजी बोले, हे राम ! यदि ऐसे वचन आप के मुख से न निकलें तो इनका प्रसार जगत् में कैसे हो, फिर रामचन्द्र जी बोले कि महाराज मन में अनेक तरहकी वासनायें फुरा करती हैं और उनसे एक प्रकार की बड़ी भारी चित्त पीड़ा उत्पन्न होती है। अगस्त्य जी बोले, कि अनेक जन्मों के कर्मों का ढेर है उसीसे ये वासनायें स्वयं उत्पन्न हुआ करती हैं, मैं एक दिन की घटना सुनाता हूँ कि सुतीक्ष्ण ने मुझसे एक प्रश्न किया—मैं उस पर विचार करने लगा परन्तु जैसे नदी के किनारे छोटी २ मछलियाँ आया जाया करती हैं उसी प्रकार उस समय मेरे हृदय में अनेक फुरनायें उठीं, जिनसे उक्त प्रश्न से कोई सम्बन्ध न था, तो जैसे कोई जल

में डूबता हुआ ऊब उठै, वैसेही मैं ऊब उठा कुछ समय के पश्चात् जब हृदय शांत हुआ तो दिव्य दृष्टि द्वारा उन कुर-नावों के विकाश होने का कारण ढूंढने लगा, अन्त में यह ज्ञात हुआ कि इस जन्म से सौ जन्म पीछे एक जन्म में मैं प्रचण्ड विषयी था, सो उस जन्म की वासनायें उक्त समय तक घेरे रहीं, हे राम ! जैसे बताशा जल में पिघल जाताहै, वैसेही वासनावश होने से जीव अनेकों जन्मों तक दुःख पाता है । जैसे मूषक भीतर ही भीतर गृह को खोद २ कर पोला कर डालते हैं वैसेही वासना पात्र रूपी अंतःकरण को झांझर कर डालती है, तब उसमें वैराग्यरूपी जल नहीं ठहरता । जबतक कर्मों को ज्ञानरूपी अग्नि में न दग्ध कर डालो, तबतक वासना से छुट्टी नहीं मिलती, तब रामचन्द्र जीने निवेदन किया कि आप के अमृतमय वचनों से वास्त-विक आनंद प्राप्त हुआ, अब कृपाकरके काम क्रोध मद मोह लोभ का पृथक् २ वर्णन कीजिये ।

मोह ।

अगस्त्य जी बोले मोहरूपी वृक्ष पर संसार रूपी वेलि चढ़ी है, रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द ये पांच कूपों से अज्ञानजल वासना घड़े में भर कर तृष्णारूपी रज्जु द्वारा मन माली खींचता है, इस वृक्ष को ग्रीष्मरूपी वैराग्य सहज

में वश नहीं कर पाता, जेठ की जलाकरूपी योगाभ्यास भी शीघ्रही ताप नहीं पहुँचा सकता, रामचन्द्रने पूंछा कि उस वृक्ष में पत्र पुष्पादि कैसे होंगे।

अगस्त्य जी बोले कि उस वृक्ष की अविवेक त्वचा है, प्रीति पत्र हैं, अधर्म पुष्प हैं, और शोक फल लगे हैं, जो प्राणी वृक्ष के नीचे जाता है वह त्वचा को स्पर्श करता है, स्पर्श के झोंके से पत्र स्वयं उसे छू लेते हैं फिर वह पुष्पों को तोड़ता है। फिर पुष्पों[1] के तोड़ने में उत्साहित हो वृक्ष पर चढ़ कर एक शाखा से दूसरी[2] शाखा में घूमता है औरफल तोड़ने में[3] वह फिसल कर गिर पड़ता है, तब उसके हाथ पाँव टूट जाते हैं। तब रामचन्द्रजी बोले कि महाराज! वह मनुष्य इस उन्माद से कैसे मुक्त हो सकता है। अगस्त्य जी फिर कहने लगे कि मधु, सुन्दरता, कोमल-कठोर, राग और सुगन्ध रूपी ईंटें तथा चूना से वे पाँचों कूप बने हैं। जब सन्तजन अपने सन्तोषरूपी फरुहाद्वारा उन ईंटादिकों को गिरा देते हैं तब वे कूप पट जाते हैं, फिर उनसे अज्ञान-जल नहीं निकलता तब वासनारूपी घड़ा तथा तृष्णा रूपी रस्सी निरर्थक हो जाती है और मन माली का व्यवसाय भी बन्द हो जाता है, जब वृक्षमें जल न पहुँचने लगा तो धीरे२ वह सूख जाता है। तब भजनरूपी कुठार से उस वृक्ष को

१ विविध प्रकार के मोह, स्त्री मोह, शरीर मोह, पुत्र मोह इत्यादि।
२ उन सब का वियोग। ३ वियोग से उत्पन्न पीड़ा।

काट डालते हैं और निष्काम अग्नि में उसे दग्ध कर डालते हैं। जब उक्त वृक्ष नष्ट होगया तो जैसे किसी मनुष्य का आत्मीय मर जाता है तो वह मृतक मनुष्य को शनैःशनैः भूल जाता है, उसी प्रकार वह वृक्ष प्रेमी मनुष्य भी वृक्ष को भूल जाता है और फिर आनन्द को प्राप्त होता है। हे राम, यह मोह बड़ा प्रवल है, लोग जिस घर में रहते हैं उसे बनाते हैं, यह वियोग गदा द्वारा उसे ढहाता है। एक दिन मैं समुद्र के तट पर बैठा सृष्टि रचना देख रहा था कि एक विचित्र रङ्ग की मत्स्य देख पड़ी और फिर वह गोता मार कर नीचे चली गई इतने में उसके प्रति मेरे हृदय में मोह उमड़ उठा, तब जैसे कोई वन में चारों ओर अग्नि लगने से व्याकुल हो उठे, उसी प्रकार मैं खिन्न-हृदय हुआ। पहिले तो यह विचार हुआ कि किसी मछुहा के पास चलकर उसके फँसाने को कहूँ। फिर बैठा विचारता रहा कि जैसे वह अभी सागर की सतह पर युवा स्त्री के समान अङ्गों को हिलाते ऊपर आई थी सम्भव है कि उसी प्रकार फिर ऊपर आवै। इतने में दुर्वासा ऋषि आते देख पड़े, उनका स्वागत कर निकट बैठाया और इस अपने हृदय को उनसे वर्णन किया, तब वे मुसकाकर बोले, हे अगस्त्य जी! इन मोहादिकों से बड़ा क्षोभ प्राप्त होता है। अब आपको एक "काम" का घटना सुनाता हूँ।

काम।

हिरण्यनगर में एक ब्राह्मण था, उसके पुत्र का नाम शिशुयुवा था, जब वह सात वर्षका हुआ तो स्त्रियोंके लज्जा-जनक अंगों की ओर ताकता रहे, वे इसको बालक जानकर डांट देती थीं। जब बारह वर्ष का हुआ तो गुप्त व्यभिचार कराने वाली स्त्रियों ने उसके भावों को द्विगुण कर दिया, कुछ दिन में उसका विवाह हुआ, स्त्री सुन्दर थी और अपने हाव भाव से उसकी काम शक्ति को अपने ही तक रखने में समर्थ थी, परन्तु जो श्वान दस घरों के मलमूत्र स्थान पर पड़ा उच्छिष्ट खानेवाला है, वह एक स्थान पर कैसे तृप्त हो सक्ता है। सो वह दिन रात स्त्रियों के फ़िराक़ में घूमा करता था, दुष्ट स्त्रियों को तो वह एक प्रकार का सुख देख पड़ता था, किन्तु पतिव्रतायें उसको यमराज के समान डरती थीं। जब वह दिनोरात भोग में पड़ा रहा करै, तो उसके शरीररूपी वाटिका में इन्द्रियगणरूपी वृक्ष तीव्र भोग ग्रीष्म से सूखने लगे, यहाँतक कि शिशुयुवा अपनी बीस वर्ष की आयु में अस्सी वर्ष वृद्ध की दशा का ज्ञान करने लगा और वहीं उसकी जीवनयात्रा समाप्त हुई। हे अगस्त्य जी! यह काम अपने नियतस्थान युवाअवस्था के अतिरिक्त बाल व वृद्धावस्था में भी घूमता है। मनुष्य के शरीर रूपी

स्वर्ण को भस्म करने के लिये यह प्रचण्ड अग्नि है। सांसारिक लोगों को तो मनमाना नचायाही करता है, और सूखे काष्ठ के समान सन्त लोगों में भी अपने अलौकिक यत्नों द्वारा बिलास-वासनारूपी जल पहुँचा कर उनको विषय रूपी पल्लव युक्त कर देता है । ऐसी दशा उन्हीं सन्तों की होती है जिनके सूक्ष्मरूप में भी किंचित् वासनारूपी आर्द्रता शेष है। हे अगस्त्य जी! जैसे खिझाया हुआ महिष चारों ओर पृथ्वी खोदता फिरै, उसी प्रकार यह काम, धर्म, सन्तोष, लज्जा विवेक आदि दृढ़ परिखाओं को विध्वंस कर डालता है। यह मुझे अनुभव सिद्ध है कि जैसे एक प्रकार का तृण नरई ताल में उत्पन्न होता है । उसी प्रकार यह विषयवार्ता से उत्पन्न होता है । जब मनुष्य के मन के गर्भ में आवे तो रामनामरूपी अग्नि अंगार को जिह्वारूपी कलछुले में भर उसके (मन) ऊपर डाले; और एकान्त वास को त्याग कर वृद्ध पुरुषों में बैठे, व शास्त्रों में कहे हुये अन्य उपचारों को करै तो सम्भव है कि वह उसके घेरे से बच जाय।

लोभ ।

यमुनाके उत्तर तटपर एक मलिंदपुरनगर है उसमें एक वेश्या रहती थी। वह धनवानों के लड़कों को सदा फुस-

लाया करती थी । उसी ग्राम में पुरुषोत्तम वनिया रहता था । उसके पुत्र का नाम कंचनदास था । कंचनदास पिता की चोरी में वेश्या के घर आता जाता था, व उसको धन भी दिया करता था । एक दिन वेश्या ने विचारा कि यदि इससे परदेश चलने को कहा जाय तो यह अधिकतर धन लेकर प्रवास करने निकलेगा । जब वह धन मेरे अधिकार में आजायगा तो फिर घर लौट आऊँगी, सो ऐसा मन में निर्धारित कर कंचनदास के कंधे पर हाथ धरकर मधुर वचनों में बोली "यहाँ घर में रहने से आप व मुझको एक प्रकार संकोच रखना पड़ता है इसी से आनन्दरूपी कमल कली ही में रहता है" कंचनदास बोला कि मुझको भी प्रवास भाता है, सो अब प्रातःकालही यात्रा करना चाहिये। पिता से कह दूँगा कि अमुकदेश व्यापार के लिये जाताहूँ । निदान दोनों परदेश को निकले । मार्ग में एक ग्राम पड़ा, सो वेश्या की चाल ढाल देख और कंचनदास की चौकन्नी चेष्टा देखकर उस ग्राम के प्रधान-मनुष्य ने उन दोनों को रोका और राजा के अधिकारी के निकट उपस्थित किया। तब उसने उन दोनों से प्रश्न करना आरम्भ किया ।

अधिकारी—तुम कौन जाति हो ?

कंचनदास—इस समय इस प्रश्न के उत्तर देने के लिये मेरा चित्त तैयार नहीं है ।

अधिकारी—यह स्त्री कौन है ?

कंचनदास—इसका उत्तर वही दे सक्ती है ।

अधिकारी—१ अपने कार्य साधने के लिये भिक्षावृत्ति से कालक्षेप करना ठीक है ।

कंचनदास—कदापि नहीं ।

अधिकारी—२ युद्ध में क्रोध को प्राप्त होकर शरीर का प्रेम रखना चाहिये कि नहीं ?

कंचनदास—क्रोध से हानि होती है इसके वश न होना चाहिये ।

अधिकारी—३ धन किस भाँति संचय करना चाहिये ?

कंचनदास—तन मन संयुक्त ।

अधिकारी—प्रतिष्ठा तथा धन इन दोनों में किसको आदर देना चाहिये ?

कंचनदास—धन से प्रतिष्ठा होती है, अस्तु धन आदर देने के योग्य है ।

अधिकारी—प्रतिष्ठा भंग हो परन्तु धन न व्यय हो अथवा धन व्यय हो प्रतिष्ठा न भंग हो इन दोनों में से कौन कार्य करना उचित है ?

कंचनदास—जैसे टूटे हुए पदार्थ फिर जुड़ जाते हैं, वैसेही प्रतिष्ठा भंग होकर फिर सुधर

१ ब्राह्मणजाति, २ क्षत्रियजाति, ३ वैश्यजाति ।

जायगी । परन्तु जो धन व्यय हो जाताहै, वह नदी के प्रवाह में तृण बहने की भाँति फिर लौटकर नहीं आता । अस्तु प्रतिष्ठा भंग हो परन्तु धन न व्यय हो ।

अधिकारी—१ श्रेष्ठ लोगों के मधुरवचन सुनते ही कार्य करने को उठना चाहिये अथवा जब तक वे बलपूर्वक ताड़न न करें ?

कंचनदास—श्रेष्ठ लोगों के वचनों को सुनतेही कार्य करना चाहिये । फिर अधिकारी ने उस वेश्या से प्रश्न करना आरम्भ किया ।

अधिकारी—तुम कौन हो ?

वेश्या—जिसके साथ हूँ उसकी वशवर्तिनी ।

अधिकारी—कहाँ जाती हो ?

वेश्या—अपने निश्चय किये हुये मार्ग पर ।

अधिकारी—ऐसे निश्चय का क्या कारण है ?

वेश्या—कारण विधाता जाने, जिसने क्षण प्रति क्षण के विचारों के परिवर्तन करने की शक्ति इस शरीर नायक को दी है ।

अधिकारी—इस समय भी तुम्हारे हृदय में किसी विचार का परिवर्तन होता है ?

---

१ शूद्रजाति ।

वेश्या—हां, कि अब आपको उत्तर न दूं।

अधिकारी—इसका भी परिवर्तन हुवा?

इसपर वेश्या ने किसी प्रकार का उत्तर न दिया, तब अधिकारी बड़े विस्मय को प्राप्त हुवा कि इसके साथ के मनुष्य का तो परिचय मिल गया। परन्तु इस स्त्रीके वचनों को सुनकर बुद्धि को आश्चर्य होता है। ऐसी तर्कणा करके फिर प्रश्न करना आरम्भ किया।

अधिकारी—पुरुष तथा स्त्री इन दोनों जातियों में से कौन जाति तुम्हारी बुद्धि से आदर पाती है?

वेश्या—एक जाति से अनभिज्ञ हूँ अस्तु इसके उत्तर देने में असमर्थ हूँ।

अधिकारी—स्त्री को शृंगार कब करना चाहिये?

वेश्या—जब उसका पति वर्तमान हो।

अधिकारी—स्त्री को ठट्ठा मार कर हँसना चाहिये?

वेश्या—जैसे बादाम पत्थर के भारी टुकड़े से फोरने में चूर २ होकर नष्ट हो जाता है। वैसे ही ठट्ठा मार कर हँसने में प्रेमरस फट जाता है।

अधिकारी—कौन २ उपायों से पति को प्रसन्न करना चाहिये?

वेश्या—मधुर बचनों से तथा शृंगार से।

अधिकारी—१ शृंगार में शुभ सूचक वस्तु कौन है ?
वेश्या—आभूषण तथा सुन्दर वस्त्र ।
अधिकारी—२ स्त्री के स्वभाव में प्रधान वस्तु क्या है ?
वेश्या—सरस सरल वचन ।
अधिकारी—३ स्त्री बारम्बार किसका स्मरण करतीहै?
वेश्या—आभूषणों को ।
अधिकारी—४ विवाह मंडप में स्त्री किस वस्तु की अभिलाषिणी रहती है ?
वेश्या—"चारों ओर देख तथा कुछ रुककर बोली" भाँवरि फेरने की ।

जब चतुर अधिकारी उन दोनों से प्रश्न कर चुका तब वह सभा में बैठे हुए सभासदों से बोला कि मैं दृढ़ अनुमान करता हूँ कि यह पुरुष तो वैश्य है, क्योंकि इसने धन की बड़ी प्रशंसा की है और वह स्त्री जाति की वेश्या है, इसके पिछले चारों उत्तरों से इसका परिचय मिलता है, और दूसरे इसके वचन चातुर्य्यतापूर्ण तथा लज्जारहित हैं । अस्तु इन दोनों को धन प्रिय है सो इनको धन हरण किया जाय और इनको भिन्न २ दिशाओं की ओर जाने को मेरी आज्ञा सुनाई जाय क्योंकि आगे चलकर इस स्त्री का साथ उक्त मनुष्य को कष्टप्रद होगा । फिर उनके साथ वैसाही

(यथार्थ उत्तर) १ महावर, २ लज्जा, ३ पति, ४ बरतुल देखने को ।

किया गया। वह गणिका फ़िर वहाँ से चलकर अनूपदेश में पहुँची सुन्दरता तथा चातुर्य्यता ने इसका पूर्णरूप से साथ दे रक्खा था-सो उस देश के राजा के यहाँ इसका बड़ा सम्मान हुआ जब राजा ने बहुत सा धन देकर इसको विदा किया तो वह विचारने लगी कि जितना धन उस बनिये के लड़के से मिलना था यह तो उतनाही है । अब इतनी दूर आई हूँ तो कुछ थोड़ा और कमालूं ऐसाविचार कर नर्मदाके किनारे वैवस्वतपुर में पहुँची वहाँ का राजा विष्णु भक्त था, इसने विचारा कि रूप आदि की कटिया लगाने से यहाँ काम न चलैगा तब वह राजा के सम्मुख जाकर भगवत् रसमें भरे भजन गाने लगी; इसके राग में भगवत् चरित्र सुनकर राजा को आनन्द प्राप्त हुआ। तब राजाने आज्ञा दी कि भगवान् के मन्दिर के निकट सन्ध्या को भजन गाया कर वह बहुत दिन तक वहाँ रहती रही नियत वेतन के अतिरिक्त अधिक कुछ न पाती थी, तब कुटनी द्वारा अपने सुन्दरतारूपी दीपक में राजा के पतंग रूपी पुत्र को फँसाया, और बनिया के पुत्र की तरह इसको भी धन लेकर चलने को हठ किया—तदनन्तर वहाँसे राजा के पुत्र के साथ चली-राजकुमार कभी पैदल चला न था, सो वह थक गया-और वेश्या से बोला कि अब मुझसे चला नहीं जाता, और आगे सघन वन है सो मैं इस महा

विकट वनके अंचल पर शयन करता हूँ जब स्वस्थ होऊँगा तब चलूंगा। इतना कहकर वह सोगया पाप से भरी वेश्या अधिक पाप करने को उद्यत हुई। कि जो खड्ग राजकुमार का पास धरा था उसको हाथ में लेकर धन के लिये राज कुमार को मारना चाहती थी, इतने में एक दल भीलों का उसी मार्ग होकर आ निकला, उन लोगों ने जाना कि यह खड्ग मेरे मारने के लिये निकाल रही है सो उन लोगों ने इस पर आक्रमण कर इसको मारडाला, और उसका सब धन ले लिया, इतने में राजा के सेवक गण राजकुमार को ढूंढते २ आ निकले, तब उनको देखकर भील वन में घुस गये और वे राजकुमार को सोता पड़ा देख प्रसन्न हो उसे घर लेगये। हे राम! इस प्रकार का लोभ दुःखदायक है, लोभ के आने पर धर्म अधर्म का ज्ञान नहीं रहता, यदि कोई मनुष्य धर्मवान् है तो यह (लोभ) हृदय के भीतर धर्म अधर्म में अभेद बतलाता हुआ बड़ा वाद विवाद करता है- यह उन मनुष्यों को उदाहरण में लेता है कि जो मनुष्य धनी हैं और जोर देता है कि धनवान् होने के लये धर्म अधर्म का ज्ञान न करो। जैसे अमृत का एक बूंद मृत्यु से बचा कर अमरता देता है, उसी प्रकार हृदय क्षेत्र में, निस्प्रहरूपी वृक्ष के लगाने से, शालिरूपी लोभ, तृष्णारूपी सूर्य्य की किरणों द्वारा पालित

न होने से फलहीन होजाता है, और फिर राजसरूपी कृषक उस क्षेत्र में ऐसे अन्नादिक (लोभ) बोने की इच्छा नहीं करता । हे राम ! जैसे उष्णकाल में प्रातःकाल श्वान इधर उधर दौड़ते फिरते हैं उसी प्रकार हृदयमें रजोगुण के प्रकाश होनेपर लोभ संकल्प रखता है सो उस समय मन जिस बस्तु की आवश्यकता बतावे उसको अनावश्यक समझकर न करना चाहिये ।

अभिमान ।

अगस्त्य जी बोले अन्तःकरण के चार नाम हैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जैसे एक वृक्ष होता है परन्तु शाखा भिन्न २ दिशाओं को जाती हैं सो उनकी दिशाओं के नाम लेकर उनका बोध किया जाता है, जैसे दक्षिण दिशा की शाखा इसी प्रकार इन चारों के पृथक् २ कार्य्य हैं, अहंकार से इच्छा उठती है, और चित्त धारण करता है, मन उसका संकल्प विकल्प करता है और बुद्धि उसका निश्चय करती है । हे राम ! उसी प्रकार जिस मनुष्य में अभिमान अधिक होता है उसका मन अधिक चंचल होजाता है और बुद्धि निश्चेत होजाती है-जैसे पतले काग़ज़ पर जिस ओर लिखा जाता है उस ओर सुघर होता है और पृष्ठ पर स्याही फूटआने से वह नष्ट होजाता है वैसेही

अभिमानी को सदा मान की चाह रहती है, वह यह नहीं देखता कि यह श्रेष्ठ है इसको मान मुझ से पाना चाहिये। अभिमानी अपनी समझ में मुँह के लटकाने में गौरव समझता है परन्तु बुद्धिमान् लोग उसको देखकर लवा पक्षी की झोंझ श्रेष्ठ बतलाते हैं क्योंकि वह वायु के झोंकों से हिलती है, परन्तु हास्यरूपी संसी के खोलने पर भी अभिमानी के वज्र किवाररूपी ओष्ठ नहीं खुलते-जैसे आश्विन मास में खेतों में शालितृण (पयाल) के ढेर के ढेर लगे रहते हैं वैसेही उसके हृदय में कुविचारों के पुंज के पुंज सड़ा करते हैं जैसे नावदान का बिना पग का कीड़ा आंगन के ऊपरी भाग में चढ़ने को करता है परन्तु शक्ति न होने से नहीं चढ़पाता। वैसेही अभिमानी पुरुष सज्जन लोगों द्वारा मान चाहता है, परन्तु नहीं पाता, वह शरीर मोही होता है चटक मटक वाले वस्त्रों को धारणकर बाजार हाट में घूमता है-अपनी बात श्रेष्ठ रखने के लिये झूंठ बहुत बोलता है। हे राम ! ऐसा मनुष्य संसार का प्रतिनिधि है, यदि सुरेश समान भी हो तब भी इसका सहवास करना उचित नहीं है।

क्रोध।

जिसके हृदय में अभिमान होता है निश्चय है कि उसमें क्रोधरूपी सर्प भी वास करता है-जब क्रोधाग्नि हृदय में उठती है तो शरीररूपी वृक्ष में लगे हुए पत्ररूपी वचन ज्वाला की लपकों से गिड़गिड़ाते हैं मानो हिलते हैं और अग्नि की प्रावल्यता अधिक होने से शरीररूपी वृक्ष जर जाता है। हे राम! क्रोध दो प्रकार का होता है एक तो नालों के समान होता है जो जल के बरसने से उमड़ कर बहने लगते हैं और फिर शुष्क होजाते हैं, अर्थात् कुछ मनुष्यों के क्रोध तो आता है परन्तु कुछ समय के पश्चात् वह नष्ट हो जाता है और कुछ लोगों में ज्वालामुखी पर्वत् की तरह सदा भीतर ही तपा करता है, और समय पाकर अपने पूर्ण वेग को ऊपर निकालता है और जिस की ओर ढुरता है उसको नाश करदेता है सो क्रोध के वश होने से इन लोगों में सहनशीलता लेशमात्र भी नहीं होती है जिसके नेत्र नहीं हैं वह अपना पराया कैसे पहिचान सकता है-अस्तु क्रोधी लोग माता पिता तथा सुहृदजनों को भी मार डालते हैं इनसे दूर रहना चाहिये।

संसार सत्य है या असत्य।

अगस्त्य जी बोले कि कुछ लोग संसार को सत्य कहते हैं, कुछ लोग असत्य कहते हैं जो लोग इसको सत्य कहते हैं सो इस न्याय पर कि कितने ही जीव मृतक होते हैं, कितने वन कटजाते हैं, कितनी बाग वाटिका नाश होती हैं, कितने विशालभवन गिर पड़ते हैं, कितने पक्षी हिम उपलादिकों से मरते हैं, कितने दुकाल पड़ते हैं, कितनी पृथ्वी तथा सरितायें समुद्र में मिल जाती हैं, परन्तु संसार का रोम गिरने तकका भी ज्ञान नहीं होता है, यह सदा हरा भरा रहता है जैसे हरे वृक्ष तथा सस्यपूर्ण पृथ्वी, धवरहर, मन्दिर, पण्डित, महाजन, जलचर, थलचर आदि इस समय वर्तमान हैं, वैसेही इस समय के पूर्व थे और पश्चात् में रहेंगे। जो लोग असत्य कहते हैं वे यह विचार करते हैं कि इसी संसार में सतयुग था परन्तु न रहा-हरिश्चन्द्र, मांधाता, बलि, हिरण्यकशिपु आदि प्रतापी लोग हमारी ही तरह स्त्री पुत्र कुटुम्ब धन राज्यादिक के संयुक्त थे परन्तु वे लोग न रहे, वृक्ष सूख जाते हैं मन्दिर धवरहर आदि गिर पड़ते हैं, नदी थल और थल नदी होजाती हैं-पर्वत नष्ट होजाते हैं जो मनुष्य आज संसार में देख पड़ता है वह एक दिन यहां से चला जाता है मनुष्य एक प्रकार नहीं

रहने पाता-कभी बाल्यावस्था, कभी युवाअवस्था, कभी वृद्धावस्था नटिनी की तरह स्वांग करती एक चढ़ती एक उतरती है-फिर मनुष्य जिनका संग करता है उनका वियोग होजाता है आज जिसको प्राणसमान जानो और जिससे प्रत्येक दिन कई वार भेंट करो वह एक दिन स्मरण में भी नहीं आता-इसकी गति एकरस नहीं पाई जाती कभी धर्म होता है, कभी पाप की वृद्धि होती है, कभी शूर लोग उत्पन्न होते हैं, कभी कादरों से पृथ्वी पूर्ण होजाती है, कभी विद्वान घर घर देख पड़ते हैं, कभी मूर्खों के मेला लगते हैं, कभी लोग पाप से भय करते तथा धर्म का प्रतिपाल करते हैं, कभी लोग धर्म को कुछ न समझ पाप में अपना हित देखते हैं, कभी पृथ्वी कन्द फल अन्नादिक पदार्थ देती है, कभी मनुष्यों से बीजरूप में पाये हुये को भी हर लेती है, कभी मनुष्योंमें रोग ढूंढ़नेको नहीं मिलता, कभी प्रति व्यक्ति में दस २ रोग पाये जाते हैं, आज कोई स्थान रम्यरूप में है वही एक दिन श्मशान की तरह भयानक देख पड़ता है, आज एक स्थान पर बड़ाभारी नगर बसा है वही एक दिन ईंट तथा मिट्टी का भीट देख पड़ता है, आज यह भूमि भयानक है एक दिन यह धवरहरों के दीपकों से शोभा को प्राप्त होती है जो लोग एक दिन धनी थे वे दरिद्री के द्वार पर भिक्षा मांगते हैं, जिनके नाम के

आगे महाराजा राजा आदि ऐश्वर्य्यसूचक शब्द लगते थे वे वनों के सूखे पत्तों में कालक्षेप करते हैं जिनकी परिवार-बेलि गृहरूपी वृक्ष पर नहीं समाती थी, वह नहीं जानते कहाँ चली गई और वृक्षरूपी घर वैसे ही खड़ा है । जिस मन्दिर की सजावट की चिन्ता स्वप्न में भी चिन्ता कराती थी, उसको वरवश छोड़कर जीव को महायात्रा करनी पड़ती है-जिसने स्त्री, कुटुम्ब तथा मित्रों का साथ कभी नहीं छोड़ा वह अकेले निपट दुर्गम मार्ग में भागता चला जाता है-घृत क्षीर आदि स्वादिष्ट पदार्थोंसे जिसको पाला है-तैलादिक से त्वचा को कोमल रक्खा है, केशों को बड़े मनोहर रूप में गूँथा है, नेत्रों को द्विगुण सुन्दर होने के लिये अंजन लगाया है, जिसको परम शोभा स्थान बनाने के लिये अमूल्य आभूषण तथा वस्त्र पहिनाया है, उस शरीर रूपी गृह से बरजोरी निकल जाना पड़ता है, सो यहसंसार कैसे सत्य समझा जा सकता है—जैसे पावस में ऊपर भूमि में जल भरजाने से दूर से एक गहिरा तड़ाग ज्ञात होता है परन्तु उसके निकट जाने से संकल्प मिथ्या देख पड़ता है उसी प्रकार जब तक विचार न करो संसार सत्य जान पड़ता है और जब विवेक संयुक्त देखो तो वह मिथ्या देख पड़ता है हम तो इसको सत्य असत्य से मिश्रित कहते हैं ।

——:※:——

प्रभुका परिहास।

एक दिन नारद जी अयोध्या में आये तब रामचन्द्रजी ने सानुराग मुनिजी की विधिवत् पूजा की फिर बोले कि क्या आप महादेवजी के यहाँ कैलास को चलेंगे? नारदने कहा हमें तो विचरना ही है, उसी ओर चले चलेंगे, फिर पुष्पक पर चढ़कर रामचन्द्रजी तथा नारदजी कैलास में पहुँचे। वहाँ देखते हैं कि सदाशिव समाधि में स्थित हैं, और पार्वती जी खड़ी शिवजी के चँवर डुला रही हैं, श्री-मातेश्वरी ने देखा कि श्रीरामचन्द्रजी तथा श्रीनारदजी आये हैं, सो शिवजी के समाधिभंग होने के भय से नेत्रों द्वारा संकेत करके दोनों अतिथियों को आसन दिया, और मनद्वारा अर्घपाद्य देकर कुशल पूँछी। अन्तर्यामी रामचन्द्र जी, पार्वतीजी के भाव को देख बड़े प्रसन्न हुए। और महा देवजी के मानस में अपने रूपके साथ, जिसको शिवजी ध्यान कर रहे थे, नारद को भी सम्मिलित करलिया तब शंकरजी मनही मन बड़े विस्मय को प्राप्त हुए, फिर समाधि ही में देखा कि पार्वती जी उन दोनों अतिथियों को अर्घपाद्य देरही हैं, तब नेत्रों को उघारकर देखा तो वही हृदय का दृश्य बाहर साक्षात् विराजमान है। फिर उठकर शिवजी ने प्रणाम किया तथा हाथजोड़े हुए बोले कि आज

मेरे अहो भाग्य हैं कि स्वामी स्वयं दर्शन देने आये हैं, रामचन्द्र जी मुसकाते हुए बोले "हां कभी दर्शन लेता हूँ और कभी दर्शन देता हूँ" तव पार्वती जी आर्घपाद्य देने लगीं, इतने में राघव बोले कि अतिथिको एक वार अर्घपाद्य दिया जाता है यह पुनर्वार क्यों देती हो ? । पार्वतीजो ने उत्तर दिया कि पूर्व समय में कभी चूक पड़ी हो तो उसकी कमी यहाँ पूर्ण करती हूँ । फिर महादेवजी नारद से पूँछने लगे कि नारदजी कहाँ से आते हो ? नारदजी उत्तर देने को थे बीच में रामचन्द्रजी बोल उठे "नारदजी आपकी फिरयादी आये हैं" किसी समय कामने इनको सताया था, सो उसके नाश करने के लिये आपसे आग्रह करते हैं, इसबातको सुन कर नारदजी रामचन्द्रजी का मुख निहारने लगे, और रघुनाथजी दूसरी ओरको मुख फेर हँसनेलगे । फिर रामचन्द्र जी बोले शिवजी, मस्तक शीतल रखनेके लिये चन्द्रमा तथा गंगा दो शीतलकारियोंको क्यों धारण कियेहो, जान पड़ता है कि पिछले के धारण करने से श्वशुरकुल से प्रीति है ।

महादेव—गंगा प्रभुके चरणों का धोवन हैं और चन्द्रमा प्रभुका मन है शरीर को गंगा से और मनको प्रभु के मन से पवित्र रखता हूँ ।

रामचन्द्र—बहुत दिन हो चुके बरात करने का सुख नहीं मिला ।

महादेव—महाराज! नारदजी का विवाह रम्भा के साथ हो; क्योंकि वह इन पर मोहित है और तब बरात करने का सुख मिलेगा।

रामचन्द्र—विचवानी कौन बनेगा?

महादेव—पार्वती जी विचवानी होंगी, जिनका विवाह नारदजी ने कराया है, प्रत्युपकार करने का अवसर बड़ी भाग्य से मिलता है, तब मुस्काती हुई पार्वतीजी ने शिर नीचे करलिया।

रामचन्द्र—कन्यापक्ष की ओर से समधी कौन होगा?

महादेव—पितामहजीही दोनों ओरसे समधी बनजायँगे

नारद—शिवजी! क्या मोहनीरूप का स्मरणकर इतनी बातें कर रहे हो?

महादेव—नहीं-विश्वमोहनी राजकन्याकी सुधिकरके।

नारद—जब सर्प, मयूर तथा सिंह बैल आदिकों की एक दूसरे प्रति शत्रुता है तो इनको अपने यहाँ किस लिये रख छोड़ा है?

महादेव—जिसमें आप को आने का कष्ट न हो।

नारद—क्या मैं लड़ाई कराता हूँ?

महादेव—लड़ाई तक कुशल थी, आपही की कृपा का कारण है कि ब्रह्मा विष्णु और मुझको अनसूयाजी ने बालक बना डाला था।

रामचन्द्र—शिवजी ! जान पड़ता है कि कुबेरजी के साथ मित्रता इसी लिये किये हो कि उनसे धन लेकर अपने भक्तों को देवो !

महादेव—जब प्रभु का काम घरही में (लक्ष्मीजी से) निकल जाता है तो दास को भी कोई यत्न करनी ही चाहिये—फिर रामचन्द्र जी बोले कि वैदेही आप दम्पती के दर्शन करना चाहती हैं सो इसके लिये मुझ से बारंबार निवेदन किया है, सो अब आप लोग मेरे साथ चलने की कृपा करें, फिर परिहास करते हुये महादेवजी पार्वती जी के साथ पुष्पक पर बैठे और नारदजी तथा रामचन्द्रजी भी जाकर विराजमान हुये तब शीघ्रगामी विमान अन्तरिक्ष मार्ग हो अवध को चला और बातें करते ही अयोध्या में पहुँच गया, तब जानकीजी ने श्रीमहादेव तथा पार्वती तथा नारद तथा रघुनाथजी को अलग २ अर्घपाद्य दिया फिर पार्वतीजी के निकट बैठकर बातें करने लगीं, और रामचन्द्रजी महादेवजी तथा नारदजी के साथ आनन्ददायिनी वार्त्ता करने लगे ।

दोहा ।

मन तू जनि करु तर्क अब, भ्रमसि न मूढ़ अजान ।
राघव को प्रिय जानि ले, मायापति भगवान ॥१॥
तासु चरित में मग्न ह्वै, दूरि करहु मद काम ।
मधुर मूर्त्ति रघुनाथ की, निरखहु आठो याम ॥२॥
नहिं मांगहि मँगतान सों, मांगु राम के द्वार ।
उनहीं इन सबको दियो, समुझसि क्यों न गँवार ॥३॥
एक बार भजु राम को, धरि धीरज विश्वास ।
देखहि सुख प्रभु भजनको, परहि न फिरि यमफांस॥४॥

इति उत्तरकाण्डम् ।